बिहारी सतसई

(महाकवि बिहारी रचित बिहारी-सतसई की सर्वांगसम्पूर्ण व्याख्या)

लेखक
प्रो० विराज एम० ए०

प्रकाशक
अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली—६

प्रकाशक
जगदीश चन्द्र गुप्त
अशोक प्रकाशन
नई सडक, दिल्ली

प्रथम संस्करण . १९६२
मूल्य . ४००
पृष्ठ . ३५२

मुद्रक .
डिलाइट प्रेस,
चूडीवालान,
चावडी बाजार, दिल्ली

भूमिका

'बिहारी-सतसई' का हिन्दी साहित्य में अपना एक निराला ही स्थान है। 'रामचरितमानस' का प्रचार जितना उसकी भक्ति भावना के कारण हुआ है, उतना साहित्यिक सौन्दर्य के कारण नहीं। 'बिहारी-सतसई' का जितना भी प्रचार हुआ है, वह पूर्णतया उसके काव्य चमत्कार के कारण ही हुआ है और हिन्दी में 'रामचरितमानस' के सिवाय इतना प्रचार अन्य किसी काव्य ग्रन्थ का नहीं हुआ।

'बिहारी सतसई' रसपूर्ण और चमत्कारपूर्ण उक्तियों का सागर है। उसके छोटे-छोटे दोहे जगमगाते हुए बहुमूल्य हीरक-कणों के समान हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखने पर अलग ही प्रकार प्रभा फूटती दिखाई पड़ती है। तीन शताब्दी से भी अधिक समय से रसिक जन इन रत्नों को निहार कर उनकी दमक की प्रशंसा करते थके नहीं हैं।

'बिहारी सतसई' पर अनगिनत टीकाएँ लिखी गई हैं; गद्य में भी और पद्य में भी। दोहों का कुडलियों में रूपान्तरण किया गया है। सस्कृत श्लोको में भी इनका अनुवाद हो चुका है। इसलिए नये टीकाकार का काम बहुत सरल हो जाता है।

अपेक्षाकृत आधुनिक टीकाओं में प० पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन और प० जगन्नाथदास रत्नाकर कृत टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुई हैं। परन्तु अनेक स्थानों पर दोहों के प्रसग और अर्थ के सम्बन्ध में इन मर्मज्ञ विद्वानों में भी मतभेद है। ऐसी दशा में नये टीकाकार का काम केवल इतना ही रह जाता है कि वह इन विभिन्न टीकाओं में से उस अर्थ को चुन ले, जो उसे सबसे अधिक विश्वासोत्पादक लगता है। यह काम भी पाठक की दृष्टि से कम महत्व का नहीं है।

दो-एक दोहे ऐसे भी हैं जिनका पिछले टीकाकारों द्वारा किया गया कोई भी अर्थ सन्तोषजनक प्रतीत नहीं हुआ। वहाँ उन टीकाकारों के अर्थ के साथ-

साथ अपनी समझ के अनुसार नया अर्थ भी दे दिया गया है और यह निर्णय पाठक के लिए छोड़ दिया गया है कि उसे कौन-सा अर्थ विश्वासोत्पादक प्रतीत होता है।

आशा है कि यह पुस्तक साहित्य-रसिकों और विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

—लेखक

विषयानुक्रम

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण

प्रसग—इस दोहे मे कवि ने मगलाचरण करते हुए राधा और कृष्ण का स्मरण किया है और साथ ही अपने काव्य के नायक और नायिका की झलक भी दे दी है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परे स्याम हरित दुति होय ॥१॥

भवबाधा=ससार मे रहने का कष्ट। झाई=छाया। नागरि=नगर की रहने वाली, सुसस्कृत।

अर्थ—वह नगर वाला राधा मेरे इस ससार के कष्टो को दूर करें, जिनके शरीर की छाया पड़ते ही श्याम अर्थात् कृष्ण प्रसन्न हो उठते है।

श्याम का अर्थ नीला होता है, इस दृष्टि से श्लेष अलकार के कारण इस दोहे का अर्थ यह भी होगा कि वह राधा मेरे दु:ख दूर करें, जिनके शरीर की छाया पडने से नीला रग हरा पड जाता है। नीले रग मे पीला रग मिलने मे हरा बनता है। इससे यह व्यजना होती है कि नायिका राधा का रग कुन्दन के समान पीला है।

अलंकार—श्लेष और काव्यलिग।

प्रसंग—कृष्ण से विनय करते हुए कवि कह रहा है—

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारीलाल ॥२॥

काछनी=धोती। बानिक=रूप।

अर्थ—सिर पर मुकुट सजा है, कमर मे धोती बधी है, हाथ मे बांसुरी है और वक्षस्थल पर माला पडी हुई है। हे कृष्ण! तुम इसी रूप मे सदा मेरे मन मे निवास करते रहो।

इस दोहे मे शृंगार रस के नायक का रूप व्यजित किया गया है। मुकुट

गौरव का चिह्न है, धोती सुसंस्कार का, मुरली कला-प्रेम का और माला विलास का।

अलंकार—स्वभावोक्ति, छेकानुप्रास।

प्रसंग—एक सखी विनोद में दूसरी सखी से कह रही है—

> चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गम्भीर।
> को घटि, ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥३॥

वृषभानुजा=वृषभानु की बेटी या वृषभ की अनुजा अर्थात् बैल की बहिन। हलधर के बीर=हलधर, बलराम के भाई या हलधर, बैल के भाई।

अर्थ—यह जोड़ी चिरजीवी हो। राधा और कृष्ण में क्यों न खूब गहरा प्रेम हो, क्योंकि इन दोनों में से कम कौन है। ये वृषभानु की बेटी हैं, तो वे बलराम के भाई हैं। परन्तु श्लेष से अर्थ यह है कि ये बैल की बहिन हैं और वे बैल के भाई हैं।

अलंकार—नम और श्लेष।

प्रसंग—कवि राधा-कृष्ण के विषय में कह रहा है—

> नित प्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक।
> चहियत युगल किशोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥४॥

एकत=एकत्र। बैस=वयस, अवस्था। बरन=जाति, या नाम के अक्षर।

अर्थ—किशोर युगल राधा और कृष्ण नित्यप्रति एक साथ रहते हैं। उनकी आयु एकसी है, जाति एकसी है (दोनों के नाम के अक्षर भी एक ही है। कृष्ण को श्याम और राधा को श्यामा कहा जाता है), दोनों के मन मिलकर एक हो गये हैं। इन दोनों की शोभा ऐसी अद्भुत है कि इसे देखने के लिए एक नहीं, आँखों के अनेक जोड़े चाहिएँ। अर्थात् एक जोड़ा आँखों से उन्हें देखते-देखते जी नहीं भरता।

प्रसंग—कृष्ण के मोहक रूप के विषय में कवि ने उत्प्रेक्षा की है—

> मोर मुकुट की चन्द्रिकनि यों राजत नन्दनन्द।
> मनु ससिसेखर के अकस किय सेखर सत चन्द ॥५॥

चन्द्रिकनि—चन्द्रिकाओं से, मोरपंख के अन्तिम भाग में जो चन्द्रमा के

से चिह्न बने होते है, उनसे । ससिसेखर=महादेव । अकस=विरोधी, शत्रु । सेखर=चोटी ।

अर्थ—सिर पर मोर के पखो का मुकुट धारण किये हुए नन्दनन्दन कृष्ण मोरपखो की चन्द्रिकाओ के कारण ऐसे सुन्दर दिखाई पड रहे है, मानो महादेव के विरोधी कामदेव ने सिर पर सौ चन्द्रमा धारण कर लिये हो । अभिप्राय यह है कि महादेव जी के सिर पर एक चन्द्रमा है । उनको नीचा दिखाने के लिए कामदेव ने सौ चन्द्रमा सिर पर धारण किये है, और कृष्ण इस समय उसके समान सुन्दर दिखाई पड रहे हैं ।

अलकार—उत्प्रेक्षा, अनुप्रास ।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी के सामने कृष्ण की शोभा बखान रही है—

सोहत ओढे पीत पट स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमणि सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात ॥६॥

आतप=धूप । सलोने=सुन्दर ।

अर्थ—पीत वस्त्र धारण किये हुए सुन्दर शरीर वाले कृष्ण की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो नीलम के पहाड पर प्रात काल की धूप खिल रही हो ।

अलकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—कवि ने उत्प्रेक्षा की है—

मकराकृति गोपाल के कुडल सोहत कान ।
धस्यो समर हिय गढ़ मनो, ड्योढ़ी लसत निसान ॥७॥

मकराकृति=मकर, मगरमच्छ या मछली की आकृति के । धस्यो=अन्दर चला गया है । समर=स्मर, कामदेव । निसान=झण्डा ।

अर्थ—श्रीकृष्ण ने कानो मे मकर की आकृति के कुडल पहने हुए हैं । वे बहुत सुन्दर दिखाई पडते है । ऐसा लगता है मानो कामदेव स्वय तो हृदय रूपी दुर्ग मे घुस गया है और उसका झण्डा बाहर ड्योढी पर फहरा रहा है ।

यह दोहा इस दृष्टि से कुछ घटिया कोटि का है कि इसमे उत्प्रेक्षा को सार्थक बनाने के लिए पहले यह कल्पना करनी पडी है कि कृष्ण ने कानो मे मकराकृति कुडल पहने हुए है, जोकि पहले से लोक प्रसिद्ध नही है ।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—एक गोपी दूसरी गोपी से कह रही है—

सखि सोहति गोपाल के उर गुजन की माल।
बाहर लसति मनो पिये दावानल की ज्वाल ॥८॥

सोहति=शोभा देती है। गुजन की=रत्तियो की। लसति=शोभा देती है। पिये=पिये हुए।

अर्थ—सखी कृष्ण की छाती पर रत्तियो की माला बहुत सुन्दर दिखाई पडती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उन्होने जो दावानल (जगल की आग) को पी लिया था, उसी की लपटें बाहर चमक रही है।

अलकार—उत्प्रेक्षा और छेकानुप्रास।

वय: सन्धि में स्थित नायिका का वर्णन

प्रसग—एक सखि कृष्ण के सामने नायिका के रूप का वर्णन कर रही है। यह नायिका वय सन्धि की अवस्था मे है—

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोवन अग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रग ॥९॥

सिसुता=बचपन। दीपति=चमक। दिपति=चमकता है। ताफता=एक प्रकार का रेशमी कपडा, जिसे धूप-छाँह भी कहते हैं।

अर्थ—बचपन की झलक अभी उससे दूर नही हुई और जवानी उसके शरीर मे छाने लगी है। बचपन और जवानी इन दोनो के मिलन मे उसके शरीर की चमक ताफता या धूप छाँह नामक रेशमी कपडे की भाँति दिखाई पडती है।

धूप-छाँह कपडा इस तरह का बना होता है कि उसमे से दो रग दिखाई पडते हैं।

अलकार—उपमा और वृत्यनुप्रास।

प्रसग—सखी नवयौवना नायिका का वर्णन नायक से कर रही है।

ललन अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति।
आज कालि में देखियतु, उर उकसौंहीं भाँति ॥१०॥

ललन=लाल अर्थात् कृष्ण। लरिकई=लडकपन। सिहाति=ईर्ष्या करती है। कालि=कल। देखियतु=दिखाई पड़ता है। उकसौंही भाँति=उभरता हुआ सा।

अर्थ—हे ललन अर्थात् कृष्ण! उसका लडकपन (अल्हडपन) ऐसा अद्भुत है कि उसे देख देख कर उसकी सखियाँ भी उससे ईर्ष्या करने लगी है। ऐसा दिखाई पड़ता है कि आजकल मे ही उसकी छाती में कुछ उभार सा आने वाला है।

यौवन के आगमन के कारण नायिका का शरीर इतना सुन्दर हो उठा है कि उसकी सखियाँ भी उससे ईर्ष्या करती हैं।

अलकार—वृत्यनुप्रास और अनुमान।

प्रसंग—नायिका की सखी आकर नायक से कह रही है। यहाँ नायिका ज्ञात यौवना है—

भावक उभरौंहौं हियो, कछुक पर्‌यौ भरु आय।
सीप-हरा के मिस हियो निसि दिन देखत जाय ॥११॥

भावक=थोडा-थोड़ा। उभरौंहौं=उभरने वाला है। कछुक=थोडा सा। भरु=भार। सीप-हरा=मोती का हार। मिस=बहाने से।

अर्थ—उस नायिका का वक्षस्थल पर थोडा-थोडा उभर सा आया है। और उसके ऊपर कुछ भार आ गया लगता है। इस कारण वह रात-दिन मोती के हार को देखने के बहाने अपनी छाती को ही देखती रहती है।

अलकार—पर्यायोक्ति।

प्रसंग—अविकसित कली पर मुग्ध भ्रमर के प्रति कवि की उक्ति—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिकाल।
अली कली ही सो बध्यो, आगे कौन हवाल ॥१२॥

पराग=फूल के बीच मे लगी पीली-पीली धूल। विकास=खिलना। अली=भ्रमर। हवाल=हालत।

अर्थ—हे भ्रमर ! अभी तो इसमे न पुष्प रज है, न मीठा मधु है और न यह इसके खिलने का ही समय है। यदि तू अभी से इस कली से इतना बंध गया है, तो आगे चलकर तेरा क्या हाल होगा, जब यह कली खिल कर अपने पूर्ण रूप मे विकसित होगी।

किसी मुग्धा नायिका पर आसक्त नायक के प्रति यह अन्योक्ति भी है। किंवदन्ती तो यहाँ तक है कि इसी दोहे से प्रसन्न होकर राजा जयसिंह ने विहारी को अपने यहाँ राजकवि नियुक्त किया था।

अलकार—अन्योक्ति।

नायिका का नख-शिख वर्णन

केशपाश

प्रसग—नायक नायिका के बालो के विषय मे कह रहा है—

सहज सुचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि बिथरे सुथरे बार ॥१३॥

सहज=स्वभावत। सुचिक्कन=खूब चिकने। स्याम रुचि=काले। सुचि=पवित्र। सुकुमार=कोमल। पथ अपथ=उचित-अनुचित, राह-कुराह। बिथरे=बिखरे हुए। सुथरे=स्वच्छ।

अर्थ—वे बाल स्वभावत अर्थात् बिना कुछ लगाये इतने चिकने, काले, पवित्र, सुगन्धित और कोमल है कि उन बिखरे हुए स्वच्छ बालो को देखकर मेरा मन उचित-अनुचित की परवाह नही करता। वह उन बालो मे जाकर उलझ ही जाता है।

अलकार—अनुप्रास।

प्रसग—कवि नायिका के बालो के विषय मे कहता है—

छुटे छुटायें जगत तें, सटकारे सुकुमार।
मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार ॥१४॥

सटकारे=लम्बे। नील=काले। छबीले=सुन्दर। वार=बाल।

अर्थ—वे लम्बे और कोमल बाल जब खुले रहते हैं, उस समय वे दर्शक के मन को ससार से छुड़ा देते हे अर्थात् देखने वाला उनकी ओर इतना आकृष्ट हो जाता है कि उसे ससार की अन्य किसी बात का ध्यान नही रहता। और जब वे नीले सुन्दर बाल बेणी के रूप मे बधे होते है, तब वे मन को भी अपने साथ ही बाँध लेते हैं।

ध्वनि यह है कि वे बाल चाहे खुले हो, चाहे बधे हो, दर्शक के मन को मुग्ध कर ही लेते है।

अलकार—व्याजस्तुति और अनुप्रास।

प्रसग—नायक-नायिका को बाल सवारते देख कर कह रहा है—

कच समेटि, कर भुज उलटि, खए सीस पट डारि।
काको मन बाँधै न यह, जुड़ा बाँधन हारि ॥१५॥

कच=बाल। खए=कधे। कर=हाथ।

अर्थ—हाथो से बालो को समेट कर और बाँहो को मोड कर सिर पर के कपडे को कधो पर डाल कर यह जूडा बाँधने वाली किसके मन को नही बाँध लेती?

नायिका बालो को हाथो से समेट कर इस अदा से जूडा बाँध रही है कि देखने वाले का मन भी जूडे के साथ ही जुडा जा रहा है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—सखी अलको के कारण बढी हुई नायिका के मुख की शोभा के विषय मे कह रही है—

कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढिगो इतो उदोत।
बंक बिकारी देत ज्यो दाम रुपइया होत ॥१६॥

कुटिल=टेढी। अलक=बालो की लट। इतो=इतना। उदोत=चमक। बक=टेढी। बिकारी=लकीर। दाम=दमडी।

अर्थ—बालो की एक टेढी लट छूट कर मुख पर आ पडने से उसके मुख की चमक इतनी बढ गई है, जैसे टेढी लकीर लगा देने से दमडी का मूल्य रुपया हो जाता है।

हिसाब लिखने की महाजनी शैली मे रुपये, आने और पाई इस प्रकार लिखे जाते है कि टेढी लकीर से पहले जो राशि होती है, वह रुपया समझी जाती है और टेढी लकीर के बाद लिखी हुई राशि दमडी समझी जाती है। राशि के बाद टेढी लकीर लगा देने से दमडी का मूल्य भी रुपये जितना हो जाता है। इस टेढी लकीर का उपयोग बिहारी ने टेढी अलक से उपमा देने के लिए किया है।

अलकार—प्रतिवस्तूपमा।

प्रसग—नायक नायिका के लिए कह रहा है—

ताहि देखि मन तीरथनि, बिकटनि जाय बलाय।
जा मृगनैनी के सदा, बेनी परसत पाय ॥१७॥

तीरथनि=तीर्थों को। बिकटनि=भयकर। जाय बलाय=मेरी बला जाये, अर्थात् मुझे परवाह नही है। मृगनैनी=हिरणो के समान सुन्दर आँखो वाली। बेनी=चोटी या त्रिवेणी। परसत=छूती है।

अर्थ—हिरणो के समान सुन्दर आँखो वाली उस नायिका को देखने के बाद, जिसके पैरो को वेणी छूती रहती है या त्रिवेणी भी जिसके पैरो को छूती है, विकट तीर्थों की यात्रा करने के लिए मेरी बला जाये।

नायिका की वेणी उसके पैरो तक को छूती है। श्लेष अलकार द्वारा कवि इसका अर्थ निकालता है कि त्रिवेणी उसके पैरो को छूती है। इसलिए नायक की दृष्टि मे वह नायिका विकट तीर्थों की अपेक्षा कही अधिक स्पृहणीय है।

अलकार—काव्यलिंग, श्लेष और व्याजस्तुति।

प्रसग—सखी नायिका को सिखा रही है—

सोरठा—चितवनि, भौंह कमानि, गढ रचना, बरुनी, अलक।
तरुनि, तुरगम, तानि, आघु बकाई ही बढै ॥१८॥

बरुनी=पलक। अलक=बालो की लट। तरुनि=स्त्री। तुरगम=घोडा। आघु=मूल्य। बकाई=टेढापन। तानि=राग का अलाप।

अर्थ—चितवन अर्थात् दृष्टि, भौंह, धनुष, दुर्ग की रचना, पलक, अलक, युवती, घोडा और सगीत की तान, इन सबका मूल्य टेढे होने से ही अधिक होता है।

भाव यह है कि इस सोरठे मे गिनाई हुई वस्तुएँ अगर टेढी हो तो अधिक मूल्यवान समझी जाती है। सखी नायिका को यह समझाना चाहती है कि इसलिए बहुत सीधा-सादा होना अच्छा नही, जरा बाँकपन से रहना चाहिए।

अलकार—दीपक और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायक नायिका के माथे पर लगे टीके की शोभा के विषय मे कह रहा है—

> नीको लसत ललाट पर टीको जटित जराय।
> छबिहि बढ़ावत रबि मनो ससि मडल में आय ॥१६॥

टीको=एक आभूषण जो माथे पर पहना जाता है। जटित=जडाऊ। जराय=जडाऊ या रत्नजटित।

अर्थ—नायिका के माथे पर रत्नो से जडा हुआ टीका नामक आभूषण ऐसा अच्छा लगता है, मानो शशि मडल मे आकर सूर्य उसकी सुन्दरता बढा रहा हो।

नायिका का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है और रत्न जटित टीका सूर्य की भाँति देदीप्यमान है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—कवि नायिका की बिन्दी के विषय मे कह रहा है—

> सबै सोहाये ई लगैं बसत सोहाये ठाम।
> गोरे मुख बेंदी लसे अरुन, पीत, सित, स्याम ॥२०॥

सोहाये=सुन्दर या अच्छे। ठाम=स्थान। सित=सफेद।

अर्थ—अच्छे स्थान पर रखी होने पर सभी वस्तुएँ सुहावनी लगा करती हैं। गोरे मुख पर लगाने से लाल, पीली, सफेद और काली सभी तरह की बिन्दियाँ सुन्दर लगती हैं।

लाल बिन्दी रोली की होती है, पीली बिन्दी केसर की, सफेद बिन्दी चन्दन की और काली बिन्दी कस्तूरी की होती है।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

प्रसग—नायक नायिका की बिन्दी के विषय मे सोच रहा है—

कहत सबै बेंदी दिये आक दसगुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये अगनित बढत उदोत ॥२१॥

आक=अंक, गिनती। तिय=स्त्री। लिलार=माथा। उदोत=प्रकाश, सुन्दरता।

अर्थ—सब लोग यह कहते है कि यदि किसी अंक के आगे बिन्दी लगा दी जाये, तो उसका मूल्य दस गुना हो जाता है। परन्तु स्त्री के माथे पर बिन्दी लगाने से तो उसकी सुन्दरता अनगिनत गुनी बढ जाती है।

बिन्दी गणित मे शून्य को कहते है। अंक के आगे शून्य लगा देने से अंक का मूल्य दस गुना हो जाता है।

अलंकार—व्यतिरेक और यमक।

प्रसंग—नायिका के बिन्दी लगे माथे और खुले बालो को देखकर नायक कह रहा है—

भाल लाल बेंदी दिये, छुटे बार छवि देत।
गह्यो राहु अति आह करि मनु ससि सूर समेत ॥२२॥

छुटे=धुले हुए। गह्यो=पकड लिया। आह करि=हिम्मत करके। सूर=सूर्य।

अर्थ—उसने माथे पर लाल बिन्दी लगाई हुई है। उसके ऊपर खुले हुये बाल बहुत ही सुन्दर जान पडते है। ऐसा लगता है मानो राहु ने बहुत साहस करके सूर्य सहित चन्द्रमा को ग्रस लिया हो।

राहु काला है, काले बालो की उपमा राहु से दी गई है। बिन्दी को सूर्य कहा गया है और मुख का चन्द्रमा। वैसे तो राहु अकेले चन्द्रमा को ही ग्रसता है, परन्तु इस समय ऐसा लगता है कि उसने बडी हिम्मत करके चन्द्रमा और सूर्य दोनो को एक साथ ग्रस लिया हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नायिका की सखी नायक के सम्मुख नायिका की बिन्दी की सुन्दरता का वर्णन कर रही है—

भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि।
इन्दु कला कुज में बसी, मनो राहु भय भाजि ॥२३॥

ललन=लाल, प्रिय। आपत=चावल, अक्षत। कुज=मगल। भाजि= भागकर।

अर्थ—हे लाल! अर्थात् कृष्ण, उसके माथे पर लाल बिन्दी के बीच मे चावल सुशोभित है। वे देखने मे ऐसे सुन्दर लग रहे है, मानो चन्द्र कला राहु के भय से भाग कर मंगल मे जाकर रहने लगी हो।

यहाँ चावलो को चन्द्र कला और रोली की बिन्दी को मगल बतलाया गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नायिका की सखी नायक के सम्मुख बिन्दी का सौन्दर्य वर्णन कर रही है—

मिली चन्दन बेंदी रही, गोरे मुख न लखाय।
ज्यो ज्यो मद लाली चढे, त्यो त्यो उघरति जाय॥२४॥

मद=नशा, शराब। उघरती जाय=प्रकट होती है।

अर्थ—गोरे मुख पर लगी हुई चन्दन की बिन्दी शरीर के रग से ऐसी मिल गई है कि दिखाई ही नही पडती। परन्तु ज्यो-ज्यो शराब के नशे की लाली चेहरे पर छाती जाती है, त्यो-त्यो चन्दन की सफेद बिन्दी स्पष्ट और प्रकट होती जाती है।

अलंकार—मीलित और उन्मीलित।

प्रसंग—नायिका की सखी नायक के सम्मुख हीरा जडी बिन्दी की सुन्दरता का वर्णन कर रही है—

तिय मुख लखि हीरा जरी बेंदी बढै विनोद।
सुत सनेह मानो लियो बिधु पूरन बुध गोद॥२५॥

जरी=जडी हुई। विनोद=आनन्द। बिधु=चन्द्रमा। बुध=एक ग्रह जो चन्द्रमा का पुत्र माना जाता है।

अर्थ—उस नायिका के मुख पर हीरक जटित बिन्दी को देख कर मन में बहुत आनन्द होता है। ऐसा प्रतीत है कि मानो पूर्ण चन्द्र ने पुत्र स्नेह के वशीभूत होकर बुध ग्रह को अपनी गोद मे उठा लिया हो।

ज्योतिष शास्त्र मे बुध ग्रह का रंग हरा माना गया है, परन्तु अन्य कवियो

ने भी मोती जैसी सफेद वस्तु की बुध से उपमा दी है। इस सम्बन्ध मे केशवदास का पद

"मानो गोद चन्द ही की खेले सुत चन्द कौं"

उद्धृत किया जा सकता है। केशवदास ने नाक के मोती की उपमा बुध से दी है जबकि बिहारी ने हीरक जटित बिन्दी की तुलना बुध से की है।

अलकार—उत्प्रेक्षा और छेकानुप्रास।

प्रसग—नायक नायिका के माथे पर लगी बिन्दी को देख कर कह रहा है—

सोरठा—मगल बिन्दु सुरग, मुख ससि, केसर आड गुरु।
इक नारी लहि सग, रसमय किय लोचन जगत ॥२६॥

सुरग=अच्छे रग वाली, लाल। बिन्दु=बिन्दी। केसर आड=केसर का आडा तिलक। मगल=ग्रह का नाम। गुरु=बृहस्पति ग्रह। नारी=१ स्त्री, २ राशि। रस=१ शृगार रस, २ जल।

अर्थ—लाल रग की बिन्दी मानो मगल ग्रह है, मुख मानो चन्द्रमा है और केसर का आडा तिलक मानो बृहस्पति है। इन तीनो ने एक राशि को एक साथ पाकर लोचन रूपी जगत् को जलमय कर दिया है।

दूसरा अर्थ है कि लाल बिन्दी, चन्द्रमा के समान मुख और केसर के बडे तिलक ने एक नारी शरीर मे स्थान पाकर आँखो को आनन्दित कर दिया है।

ज्योतिष मे यह बताया गया है कि यदि मगल, चन्द्रमा और बृहस्पति एक राशि मे आ जायें, तो भीषण वर्षा का योग होता है। यहाँ इन तीनो के एक राशि मे आ जाने से लोचनो के जगत् मे वर्षा का योग दिखाया गया है अर्थात् जब तक नायिका दीखती है तब तक आँखो मे आनन्द के अश्रु बहते हैं और जब वह दीखनी बन्द हो जाती है तो दुःख के आँसू भरे रहते हैं।

अलकार—श्लेष और रूपक।

भौंह

प्रसग—नायक नायिका की सखी से बात करते हुये यह रहा है—

नासा मोरि, नचाय दृग, करि कका की सौंह।
काटे सी कसकति हिये वह कटीली भौंह ॥२७॥

नासा=नाक । मोरि=मोडकर। कका=काका, चाचा । सौह=शपथ । कसकति=कष्ट देती है, चुभती है । कटीली=काटेदार, चुभने वाली ।

अर्थ—उस नायिका ने नाक मोड कर, आँखें नचा कर जब चाचा की कसम खाई थी उस समय की उसकी वे कटीली भौहे अब भी मेरे हृदय मे काँटे-सी गडी हुई है ।

भाव यह है कि नायक ने कभी मौका पाकर नायिका से छेडखानी की होगी, तो नायिका ने कहा कि 'काका की सौह मुझे यह भला नही लगता ।' उस समय की वह मुद्रा नायक को बहुत ही प्रिय लगी जो उसे भुलाये नही भूलती ।

अलंकार—उपमा, स्मरण और वृत्त्यनुप्रास ।

प्रसंग—नायिका के त्यौरियाँ चढाने पर नायक नायिका की सखी से कहता है—

खौरि पनच, भृकुटि धनुष, बधिक समर तजि कानि । /२७/
हनत तरुन मृग तिलक सर, सुरकि भाल भरि तानि ।।२८।।

खौरि=माथे पर लगाया जाने वाला टेढा तिलक । पनच=धनुप की डोरी । समर=स्मर, कामदेव । कानि=लज्जा, मर्यादा । सर=तीर । सुरकि=तिलक का वह नोकिला भाग, जो नाक को छूता है । भाल=फलक ।

अर्थ—भौह धनुप है । उस पर खौरि की प्रत्यचा चढा कर हत्यारा कामदेव सब मर्यादाओ को त्याग कर सुरक रूपी फलक वाले, तिलक रूपी तीर को तान कर तरुण रूपी मृगो का शिकार करता है ।

भाव यह है कि नायिका का तिलक तीर की तरह है । उसकी सुरकी तीर के फलक की तरह है । भौहे धनुप और खौरि प्रत्यचा की भाँति है । इस धनुप बाण से शिकारी कामदेव युवको का शिकार करता है ।

अलकार—सागरूपक ।

नयन

प्रसंग—सखी नायिका के नेत्रो की सुन्दरता का वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

रस सिगार मजन किये, कजन भजन दैन ।

अजन रजन हू बिना खजन गजन नैन ॥२९॥

मजन किये=नहाये हुए। कजन=कमलो को। भजन=पराजय। दैन=देने वाले। अजन रजन=अजन लगाना। खजन गजन=खजन नामक पक्षियो का मान भग करना।

अर्थ—उस नायिका के कमलो को पराजित करने वाले नेत्र शृ गार रस मे नहाये हुए हैं। वे इतने सुन्दर हैं कि अजन लगाये बिना ही खजनो का मान मर्दन करते हैं।

सुन्दर आँखो की तुलना खजन नामक पक्षियो से की जाती है, जो काले और सफेद रग के होते हैं। आँखो की तुलना सुन्दरता मे कमलो से भी की जाती है। बिहारी कहते हैं कि नायिका के नयन बिना अजन के ही बहुत कजरारे हैं।

इस दोहे मे बिहारी शब्दो के फेर मे पड गये हैं, इसलिये अर्थ-सौन्दर्य की ओर उनका ध्यान पर्याप्त नही रहा।

अलकार—अनुप्रास और प्रतीप।

प्रसग—सखी नायिका से कह रही है—

खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार।

कानन चारी नैन मृग, नागर नरनि सिकार ॥३०॥

लि=सखी। अहेरी=शिकारी। मार=कामदेव। नागर नरनि=नगर निवासी पुरुषो को। कानन चारी= १ कानो तक फैले हुए, २ वन मे रहने वाले।

अर्थ—हे सखी! चतुर शिकारी रूपी कामदेव ने तेरे इन बडे-बडे नयन रूपी हिरणो को नगर निवासी पुरुषो का शिकार करना अच्छा सिखाया है।

सामान्यतया नगर निवासी पुरुष हिरणो का शिकार करते है, परन्तु यहाँ चतुर शिकारी ने ऐसा कौतुक रचा है कि हिरण पुरुषो का शिकार करने लगे हैं।

अलकार—श्लेष और रूपक।

प्रसग—सखी नायक के सम्मुख नायिका की प्रशसा करती हुई कह रही है—

अर तें टरत, न बर परे, दई मरुक मनु मैन।
होड़ा होडी वढ़ि चले, चित चतुराई नैन ॥३१॥

अर=हठ। बर परे=वलवान हो गये हैं। मनु=मानो। मरुक=बढावा। मैन=कामदेव, मदन।

अर्थ—उस नायिका के चित की चतुराई और नयन दोनो मे मानो आपस मे आगे वढने की होड लग गई है। दोनों को कामदेव ने प्रोत्साहन दे दिया है, इसलिए दोनो अपनी-अपनी हठ से नही टलते और अपनी-अपनी जगह दोनो वलवान पड गये हैं।

एक ओर नायिका के चित्त की चतुराई बढ रही है और दूसरी ओर उसके नयन वडे हो रहे हैं। नयनो की विशालता सूचित करने के लिए विहारी ने यह सुन्दर सूझ खोज निकाली है।

अलकार—हेतूत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायिका की सखी नायिका के नयनो की प्रशसा कर रही है—

सायक सम मायक नयन, रगे त्रिविध रग गात।
झखौ विलखि दुरि जात जल, लखि जल जात लजात ॥३२॥

सायक=सन्ध्याकाल। मायक=मायावी। त्रिविध=तीन प्रकार के। झखौ=मछलियाँ। दुरि जात=छिप जाती है। जल जात=कमल।

अर्थ—उस नायिका के मायावी नयन सायकाल के समान है। वे नयन तीन रगो में रगे हुए है। उन्हे देख कर मछलियाँ तो दुखी होकर पानी में नीचे छिप जाती है और कमल लज्जित हो जाते हैं।

कल्पना यह है कि श्वेत, श्याम और अरुण, इन तीन रगो से युक्त नायिका के नयन सन्ध्या के समान मनोहर हैं। सायकाल होने पर जैसे मछलियाँ पानी मे नीचे वैठ जाती है और कमल मुद जाते है, उसी प्रकार इन सुन्दर नयनो का स्वभाव भी ऐसा है कि इनकी तुलना मे अपने आपको हीन देख कर मछलियाँ शरमा कर पानी मे नीचे छिप जाती है और कमल लज्जित होकर मुकुलित हो जाते है। इस प्रकार नयनो को मछलियो और कमलो से अधिक सुन्दर वताया गया है।

अलकार—उपमा और यमक।

प्रसंग—नायिका के नैनों के सौन्दर्य को देखकर सखियाँ आपस में कहती हैं

जोगु जुगुति सिखिये सबै, मनो महामुनि मैन।
चाहत प्रिय अद्वैतता कानन सेवत नैन ॥३३॥

जोगु=योग। मैन=कामदेव। अद्वैतता=एक हो जाना। कानन=१ वन २ कानों तक।

अर्थ—ऐसा लगता है कि महा मुनि कामदेव ने योग की या प्रिय से संयोग की सब विधियाँ सिखा दी है। इसीलिए प्रिय के साथ अद्वैतता चाहने के कारण नयन काननचारी हो गये हैं (कानों का सेवन कर रहे हैं) अर्थात् कानों तक फैले हुए हैं।

जिस प्रकार ऋषि-मुनि भगवान से अद्वैतता स्थापित करने के लिये कानन में अर्थात् वन में जाकर योग साधना करते हैं, वैसे ही ये आँखें कानों का सेवन कर रही हैं। अर्थात् कानों तक फैली हुई हैं।

अलंकार—योग, अद्वैतता और कानन शब्दों में श्लेष अलंकार। उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—सखी नायिका के नयनों की सुन्दरता के विषय में नायक से कह रही है—

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें हरि नीके ये नैन ॥३४॥

बर=बलपूर्वक। मैन=कामदेव। नीके=अच्छे।

अर्थ—हे हरि अर्थात् कृष्ण! इसके नायिका के जैसे नयन मैंने कहीं नहीं देखे। इन्होंने कामदेव के बाणों को बलपूर्वक जीत लिया है, अर्थात् पराजित कर दिया है। ये नयन हिरणियों के नयनों से भी कहीं अधिक अच्छे हैं।

अलंकार—[illegible]।

प्रसंग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

संगति दोष लगै सबै, कहै जु सांचे बैन।
कुटिल बंक भ्रू संग तें, भये कुटिल गति नैन ॥३५॥

कुटिल—१. टेढ़ा २. [illegible]।

अर्थ—जिन्होने यह कहा है कि सगति का दोष सबको लगता ही है, उन्होने सत्य बात ही कही है। टेढी और बांकी भौहो के साथ रहने के कारण ये नयन भी टेढी चाल वाले अर्थात् तिरछे कटाक्ष करने वाले हो गये है।

नयनो के तिरछे कटाक्षो का कारण तिरछी भौहो की सगति को बताया गया है।

अलकार—अर्थान्तरन्यास।

प्रसग—सखी नायिका के नेत्रो की प्रशसा मे कह रही है—

चमचमात चचल नयन, बिच घूंघट पट भीन।
मानहु सुरसरिता बिमल, जल उछरत जुग मीन ॥३६॥

भीन=बारीक, पतला। जुग=युगल, दो।

अर्थ—बारीक घूंघट के वस्त्र मे से नायिका के चचल नयन इस प्रकार चमक रहे है, मानो गगा के स्वच्छ जल मे दो मछलियाँ उछल रही हो।

अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायक नायिका से कह रहा है—

सारी डारी नील की, ओट अचुक चूकै न।
मो मन मृग कर बर गहैं, अहे अहेरी नैन ॥३७॥

ओट=आड। बर=बलपूर्वक। अहेरी=शिकारी।

अर्थ—हे सुन्दरि! तेरे नयन बडे अचूक शिकारी है, जो कभी चूकते नही। ये नीली साडी की आड डाल कर मेरे मन रूपी हिरण को हाथो से ही झपट कर पकड लेते है।

अलकार—रूपक।

प्रसग—नायक नायिका के प्रति कह रहा है—

दृगन लगत बेधत हियो, बिकल करत अंग आन।
ये तेरे सबतें बिषम ईछन तीछन बान ॥३८॥

आन=अन्य, दूसरे। विषम=असाधारण, टेढे। ईछन=चितवन। तीछन=तीक्ष्ण।

अर्थ—हे सुन्दरि! ये तेरे तीक्ष्ण चितवन के तीर सबसे असाधारण है। ये आंखो मे लगते हैं और इनसे हृदय बिंध जाता है और ये अन्य सब अगो को बेचैन कर देते हैं

इस दोहे मे नयन-बाणो की विचित्रता यह बताई है कि ये लगते तो है आँखो मे जाकर और घायल करते हैं हृदय को और उसके कारण विकलता होती है शरीर के अन्य अगो मे। अर्थात् कारण कही है और कार्य कही।

अलकार—असगति और काव्यलिग।

प्रसग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

झूठे जानि न सग्रहै, मन मुह निकसे बैन।
याही ते मानों किये बातन को विधि नैन ॥३६॥

सग्रहै=भरोसा नही करता। बैन=वचन। विधि=विधाता।

अर्थ—मुह से निकले हुए वचनो को झूठा समझ कर मन उन पर भरोसा नही करता। ऐसा प्रतीत होता है कि इसीलिए विधाता ने बात करने के लिए नयन बनाये है।

वाणी से कही गई बात की अपेक्षा आँखो से जताया गया भाव अधिक विश्वास योग्य होता है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

नासिका

प्रसग—नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

बेधक अनियारे नयन, बेधत, कर न निषेध।
बरबस बेधत मो हियो, तो नासा को बेध ॥४०॥

वेधक=वेधने वाले। अनियारे=अनी नोक का कहते हैं, अनी वाले अर्थात् नुकीले। वेध=छेद।

अर्थ—हे सुन्दरि! तेरे नुकीले और बेधने वाले नेत्र मेरे चित्त को विद्ध कर रहे है। तू उन्हे रोक मत। अर्थात् उन्हे मेरे हृदय को वेधने दे। परन्तु विचित्र बात यह है कि तेरी नासिका का छेद भी मेरे हृदय को बलपूर्वक बेधे जा रहा है।

आँखें नुकीली है, अत यदि वे हृदय को वेधें, तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं है, परन्तु आश्चर्य इस बात मे है कि नासिका का छेद भी, जिसमे वेध पाने की क्षमता नही है, नायक के हृदय को वेध रहा है।

अलकार—विभावना ।

प्रसग—नायिका के शरीर मे यौवन के कारण एक विचित्र कान्ति निखर आई है, जिसके कारण नाक के आभूषण वेसर मे पहने हुए मोती का प्रतिविम्ब उसके होठो पर पड रहा है । नायिका यह समझती है कि शायद पान का चूना होठ पर लगा रह गया है । उसे पोछने का प्रयास करते देख कर सखी नायिका से कहती है—

बेसरि मोती दुति झलक, परी अधर पर आय ।
चुनो होय न चतुर तिय, क्यो पट पोंछो जाय ॥४१॥

वेसरि=नाक मे पहनने का आभूषण वेसर, जिसमे मोती जडे रहते है । दुति=चमक, शोभा । चुनो=चूना ।

अर्थ—वेसर मे जडे मोती की चमक तेरे ओठो पर प्रतिविम्बित हो रही है, जिसे तू चूना समझ रही है । हे सुन्दरि, वह चूना नही है, फिर वह कपडे से कैसे पुछ सकता है ? अर्थात् इसे पोछने का तेरा प्रयत्न व्यर्थ है ।

अलंकार—अपह्नुति ।

प्रसग—नायक नायिका की नथ को देख कर कहता है ।

इहि द्वै ही मोती सुगथ, तू नथ गरबि निसांक ।
जिहि पहिरे जगदृग ग्रसति, लसति हँसति सी नाक ॥४२॥

सुगथ=पूंजी । गरबि=गर्व कर ले । निसाक=निःशक । ग्रसति=वश मे करती है ।

अर्थ—हे नथ, तू इन दो मोतियो की पूजी पर ही निर्भय होकर अभिमान कर । क्योकि तू इतनी सुन्दर है कि तुझे पहनने पर नायिका की यह नाक हसती हुई सी प्रतीत होती है और इसलिये सारे ससार के नेत्रो को अपने वश मे कर लेती है । अर्थात् सब लोग लालसापूर्वक इसे देखने लगते हैं ।

अलकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—नायक नायिका के होठो को चूमने के लिए लालायित है । वह ओठो के ऊपर झूलते हुए वेसर से ईर्ष्या करते हुए कहता है—

बेसरि मोती, धन्य तू, को पूछे कुल जाति ।
पीबो करि तिय अधर को, रस निधरक दिनराति ॥४३॥

पीवो करि=पिया कर। निधरक=वेधड़क।

अर्थ—हे वेसर के मोती, तू भाग्यशाली है। यहाँ जाति और कुल कौन पूछता है। इसलिए तू वेधड़क नायिका के ओठो का रस दिन-रात पिया कर।

इस दोहे का प्रयोग वहाँ भी किया जा सकता है, जहाँ कोई गुणहीन और अपात्र व्यक्ति सयोगवश अनुचित सुविधाओ का लाभ उठा रहा हो।

अलकार—अन्योक्ति और व्याजस्तुति।

प्रसग—नायिका को देखकर नायक अपने मन मे कह रहा है—

जटित नीलमणि जगमगति, सींक सुहाई नाँक।
मनो अली चपककली, वसि रस लेत निसाक ॥४४॥

जटित=जडी हुई। जगमगति=जगमगा रही है। सीक=नाक मे पहनने का आभूषण, लोग। अली=भौंरा। निसाक=नि शक, निर्भय।

अर्थ—नायिका की नाक मे नीलमणि जडी हुई सीक ऐसी जगमगा रही है, मानो भौरा चपक की कली पर बैठ कर निर्भय होकर रस पी रहा हो।

ऐसा माना जाता है कि भौंरा चपा की कली पर नही बैठता। यहाँ भाव यह है कि नायिका की नाक का सौदर्य इतना असाधारण है कि उसके कारण भौंरा अपने स्वभाविक नियम को भुला बैठा और चपा की कली पर जा बैठा।

अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायिका रूठ कर मान करके बैठ गई। शठ नायक उसे मनाने के लिए कह रहा है—

जदपि लौंग ललितौ तऊ, तू न पहिरि इक आक।
सदा सक बढियै रहै, रहै चढी सी नाक ॥४५॥

जदपि=यद्यपि। लौंग=नाक मे पहनने की सीक और एक मसाले का नाम। ललितौ=सुन्दर। इक आक=निश्चय से, या बिल्कुल। सक=शका, डर।

अर्थ—यद्यपि यह लौग सुन्दर है, फिर भी तू इसे बिलकुल मत पहना कर। क्योकि इसके पहनने से तेरी नाक चढी सी रहती है, जिसके कारण मेरा

मन शकित रहता है कि कही तू रूठी तो नही हुई है।

यहाँ लौंग शब्द मे श्लेष से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि लौग चरपरी होने के कारण तेरे स्वभाव मे कुछ तीखापन ला देती है।

अलंकार—श्लेष।

प्रसग—नायक नायिका के कान और नाक के आभूषणो को देखकर स्वय मन ही मन कह रहा है—

> अजौं तर्यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवक इक अग।
> नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुकुतन के सग ॥४६॥

अजौं=आज भी। तर्यौना=१ कर्णफूल, २ तरा नही, पार नही पहुँचा। श्रुति=१ कान, २ वेद। इक अग=अनन्य भाव से। नाक=१ नासिका, २ स्वर्ग। बेसर=१ नाक का आभूषण, २ तुच्छ, या क्षुद्र। मुकुतन=१ मोती, २ जीवन मुक्त या पुण्यात्मा।

इस दोहे मे बिहारी ने श्लेष का चमत्कार दिखाया है।

अर्थ—(आभूषण पक्ष मे) अनन्य भाव से कान का सेवन करने वाला यह आभूषण अब भी तर्यौना कहलाता है, जबकि मोतियो के सग निवास करके बेसर ने नासिका मे अपना निवास स्थान बना लिया है।

(दूसरा अर्थ धर्म पक्ष मे) अनन्य भाव से वेदो का सेवन करने वाला व्यक्ति अब तक भी तर नही पाया, जबकि जीवन मुक्तो अर्थात् धर्मात्माओ के साथ रहने वाले क्षुद्र व्यक्ति को भी स्वर्ग का निवास प्राप्त हो गया। यहाँ पर वेदाध्ययन की अपेक्षा सत्सग की उत्कृष्टता बतायी गई है।

यहाँ प्रस्तुत अर्थ तो आभूषणो का वर्णन ही है, परन्तु श्लेष से दूसरा अप्रस्तुत अर्थ भी रोचक बन गया है।

अलंकार—श्लेष।

कान

प्रसंग—सखी नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कह रही है—

> लसत सेत सारी ढँप्यो, तरल तर्यौना कान।
> पर्यो मनो सुरसरि सलिल, रवि प्रतिबिम्ब विहान ॥४७॥

लसत=शोभा देता है। सेत=सफेद। सारी=साडी। तरल=चचल। तर्यौना=कर्णफूल। सुरसरि=गगा। विहान=प्रभात।

अर्थ—सफेद साडी से ढका हुआ कान मे पहना हुआ चचल कर्णफूल ऐसा सुन्दर दिखाई पडता है, मानो प्रभात काल मे गगा के पानी मे सूर्य का प्रतिविम्ब पड रहा हो।

कर्णफूल हिल रहा है, इस कारण उसकी छटा तरगो से कांपते हुए गगा जल मे पडते हुए सूर्य के प्रतिविम्ब की सी दीखती है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—सखी नायिका से कह रही है—

तरिवन कनक कपोल दुति, बिचु बिचही जु बिकान।
लाल लाल चमकत चुनी, चौकाचौंध समान ॥४८॥

तरिवन=कर्णफूल। विच विचुही जु विकान=मानो बीच मे ही विक गया। लाल=प्रियतम, नायक। चौकाचौंध=आगे के चारो दांतो की चमक। चुनी=कनियाँ, रत्नो के टुकडे।

अर्थ—नायक तो तेरे सुनहले कर्णफूलो और गालो की चमक के बीच मे ही विक गया अर्थात् अपने आपको भूल बैठा। वह तेरे सौन्दर्य को भलीभांति निहार भी न पाया, क्योकि कर्णफूलो मे जडी रत्नो की कनियाँ और आगे के चारो दांत देखने वाले की आँखो को चुंधिया देते है।

अलकार—उपमा।

प्रसग—नायक नायिका के विषय मे अपने आप कह रहा है—

सालति है नटसाल सो, क्यौं हू निकसति नाहि।
मनमथ नेजा नोक सी, खुभी खुभी मन माहि ॥४९॥

सालति=पीडा देती है। नटसाल=गासी, तीर का वह अश, जो टूट कर शरीर के अन्दर रह गया हो। मनमथ=कामदेव। नेजा=भाला। खुभी=कान मे पहनने का एक आभूषण, खुभी=गडी हुई।

अर्थ—उस नायिका की खुभी अर्थात् कर्णाभूषण मेरे मन मे कामदेव के भाले की नोक की तरह गडी हुई है और वह तीर के शरीर मे गडे हुए फलक के समान पीडा दे रही है।

अलंकार—उपमा और यमक।

प्रसग—सखी नायिका का वर्णन नायक के सामने कर रही है—

लसै मुरासा तिय स्रवन, यो मुक्तन दुति पाय।
मानो परस कपोल के, रहे सेदकन छाय ॥५०॥

मुरासा = कर्णफूल। स्रवन = कान। मुक्तन दुति = मोतियो की चमक। परस = स्पर्श। सेदकन = पसीने की बूदें।

अर्थ—मोतियो की चमक वाला कर्णफूल उस स्त्री के कानो मे ऐसा सुन्दर दिखाई पड रहा है, मानो गाल का स्पर्श हो जाने के कारण उस कर्ण-फूल पर पसीनें की बूदें झलक आई हो।

भाव यह है कि अचेतन कर्णफूल को भी नायिका के कपोल का स्पर्श करते ही सात्विक भाव के कारण पसीना आ गया है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

चिबुक

प्रसंग—नायिका की ठोडी पर गोदना बहुत सुन्दर दिखाई पड रहा है। उसी को लक्ष्य करके सखी नायक से कहती है—

ललित स्यामलीला ललन, चढी चिबुक छवि दून।
मधु छाक्यो मधुकर पर्‌यो, मनो गुलाब प्रसून ॥५१॥

स्यामलीला = गोदने का नीला निशान। ललन = यह सम्बोधन है, जो नायक के लिए किया गया है, हे भद्र! चिबुक = ठोडी। दून = दुगुनी। छाक्यो = तृप्त। मधुकर = भ्रमर।

अर्थ—हे भद्र! उस नायिका की ठोडी पर गोदने के निशान के कारण दुगुनी शोभा आ गई है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो गुलाब के फूल पर फूल के मधु से तृप्त हुआ कोई भौंरा पडा हुआ है।

त्वचा का रग गुलाब के समान लाल है। उस पर गोदने का नीला विन्दु भ्रमर सा जान पडता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायिका की ठोडी के गड्ढे की शोभा को देख कर नायक कह रहा है—

कुचगिरि चढि अति थकित ह्वै, चली डीठि मुख चाड।
फिरि न टरी परियै रही, परी चिबुक की गाड़ ॥५२॥

कुचगिरि=उरोज रूपी पर्वत । डीठि=दृष्टि । चाउ=चाह, लालसा, चाट । चिवुक=ठोडी । गाड=गड्ढा ।

अर्थ—मेरी दृष्टि नायिका के उरोज रूपी पर्वतो पर चढ कर बहुत थक गई । पर फिर भी मुख की सुन्दरता की चाह मे वह आगे बढ़ती गई । परन्तु आगे चल कर वह ठोडी के गड्ढे मे गिर पडी और फिर वही पडी रह गई । वहाँ से हिल ही न सकी ।

अलकार—रूपक ।

प्रसग—नायिका की शोभा को देख कर नायक मन ही मन कह रहा है—

डारे ठोडी गाड गहि, नैन बटोही मारि ।
चिलक चौंधि में रूप ठग, हासी फाँसी डारि ।।५३।।

ठोडी गाड=ठोडी का गड्ढा । गहि=पकड कर । बटोही=मुसाफिर । चिलक=कांति । चौंधि=आँखो का चुंधियाना । हासी=हँसी । फाँसी=फन्दा ।

अर्थ—इस नायिका के सौन्दर्य रूपी ठग ने अपनी कान्ति की चकाचौंध पैदा करके नयन रूपी बटोहियो को उनके गले मे हसी का फन्दा डालकर और उन्हे मार कर ठोडी के गड्ढे मे डाल दिया है ।

भावार्थ यह है कि जैसे ठग लोग यात्रियो की आँखो के सामने चकाचौंध पैदा करके उनके गले मे फन्दा डाल कर उन्हें मार डालते थे और किसी गड्ढे मे पटक देते थे, उसी प्रकार नायिका का सौन्दर्य नयन बटोहियो को हसी का फन्दा डाल कर मार डालता है । जो नायिका को हसते देख लेता है, वह आपा खो बैठता है ।

अलकार—सागरूपक और छेकानुप्रास ।

प्रसंग—नायक नायिका की ठोडी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर कह रहा है—

तो लखि मो मन जो लही, सो गति कही न जाति ।
ठोडी गाड गड्यो तऊ उड्यौ रहै दिन राति ।।५४।।

तो=तुझको । लही=प्राप्त की । गति=दशा । तऊ=फिर भी ।

अर्थ—तुझे देख कर मेरे मन की जो दशा हो गई है, वह किसी तरह कहते नही बनती । यह यद्यपि ठोडी के गड्ढे मे गडा हुआ है, फिर भी दिन

रात उड़ता फिरता है। अर्थात् पल भर भी शान्ति से नही बैठ पाता।

अलकार—विरोधाभास।

मुख

प्रसंग—सखी नायिका के विषय मे नायक से कह रही है—

छिप्यौ छबीलो मुख लसै, नीले आँचर चीर।
मनो कलानिधि झलमलै, कालिन्दी के नीर ॥५५॥

छिप्यौ=छिपा हुआ या ढका हुआ। छबीलो=सुन्दर। आँचर=आँचल चीर=वस्त्र। कलानिधि=चन्द्रमा। कालिन्दी=यमुना।

अर्थ—उस नायिका का नीले वस्त्र के अर्थात् साडी या ओढनी के आँचल मे छिपा हुआ सुन्दर मुख ऐसा शोभायमान होता है, मानो यमुना के पानी मे चन्द्रमा झिलमिला रहा हो।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नवयौवना नायिका के देह की सुकुमारता का वर्णन करते हुए सखी कह रही है—

बरन बास सुकुमारता, सब विधि रही समाय।
पंखुरी लगी गुलाब की, गाल न जानी जाय ॥५६॥

बरन=वर्ण, रग। बास=गन्ध।

अर्थ—नायिका के शरीर का रग ऐसा सुन्दर हो उठा है उसकी गन्ध इतनी मधुर है और उस देह मे इतनी सुकुमारता है कि उस नायिका के गाल पर चिपकी हुई गुलाब की पखुरी किसी तरह पहचानी ही नही जाती।

नायिका के शरीर का रग, गन्ध और सुकुमारता गुलाब की पखुरी मे इतनी मिलती-जुलती है कि दोनो मे भेद कर पाना सम्भव नही है, इसीलिए गाल पर लगी गुलाब की पखुरी शरीर से अलग दिखाई ही नही पडती।

अलकार=मीलित।

प्रसग—नायक डिठौना लगाये हुए नायिका को देख कर कहता है—

प्रिय तिय सो हँसि के कह्यौ, लखै डिठौना दीन।
चन्द्रमुखी मुखचद तैं, भलो चद सम कीन ॥५७॥

तिय=स्त्री, नायिका। लखै=देख कर। भलो=भला।

अर्थ—नायिका ने डिठौना लगाया है, यह देख कर नायक ने उससे हंस कर कहा "हे चन्द्रमा के समान मुख वाली, तूने अपने चन्द्रमा से अधिक अच्छे मुख को डिठौना लगा कर चन्द्रमा के समान कर लिया है।"

भावार्थ यह है कि चन्द्रमा मे तो कलक है और तेरा मुख निष्कलक है। इसलिए तेरा मुख चन्द्रमा से अधिक सुन्दर है। परन्तु अब डिठौना लगा कर तूने उसे चन्द्रमा जैसा बना लिया है।

अलकार—व्यतिरेक और व्याजनिन्दा।

प्रसग—नायिका के मुख पर डिठौना लगा है। उसके कारण उसकी शोभा और बढ गई है। इसे देख कर एक सखी दूसरी सखी से कहती है—

लोने मुख डीठि न लगै, यों कहि दीनौं ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दिये डिठौना दीठि ॥५८॥

लोने=लावण्ययुक्त, सुन्दर। दीठि=दृष्टि। ईठि=मित्र या सखी, इष्ट। दिठौना=नजर न लग जाये इस उद्देश्य से लगाया गया काजल का चिह्न।

अर्थ—सखी ने नायिका के मस्तक पर इसलिए डिठौना लगाया कि उस सुन्दर मुख को किसी की नजर न लगे। परन्तु डिठौना लगाने से मुख की सुन्दरता इतनी बढ गयी कि लोगो की दृष्टि उस पर दुगनी पडने लगी।

अलकार—विषम और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसंग—सखी नायक से नायिका के मुख की प्रशसा कर रही है—

सूर उदित हू मुदित मन, मुख सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुं ओर तें, निश्चल चखनि चकोर ॥५९॥

सूर=सूर्य। सुखमा=शोभा। चितै रहत=देखते रहते है। निश्चल=एक टक। चखनि=आंखों।

अर्थ—सूर्य के उदित हो जाने के बाद भी सब ओर से चकोर एकटक उसके मुख की शोभा को प्रसन्न मन से देखते रहते है।

चकोर चन्द्रमा का प्रेमी होता है, इसलिये वह रात मे चन्द्रमा को देखता है। प्रभात मे सूर्योदय होने पर चन्द्रमा की कान्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए

चकोर दिन मे चन्द्रमा को नही देखता। परन्तु नायिका का मुख चन्द्रमा से इतना मिलता जुलता है कि सूर्योदय होने पर भी चकोर उसको चन्द्रमा समझ कर देखा करते है।

अलंकार—भ्रान्ति।

प्रसंग—सखी नायक से कह रही है—

> पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहु पास।
> नितप्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास ॥६०॥

पत्रो=पचाग। तिथि=तारीख। पून्योई=पूर्णिमा ही। आनन=मुख। ओप=दमक। उजास=प्रभा।

अर्थ—उस नायिका के घर के आस पास चारो ओर तिथि का पता पचाग से ही चलता है। चन्द्रमा को देख कर तिथि का पता नही चलता, क्योकि उसके मुख की दमक की प्रभा के कारण वहाँ तो नित्य पूर्णमासी ही रहती है।

तिथि जानने के दो साधन है—पचाग और चन्द्रमा की कला। यहाँ चन्द्रमा की कला से तिथि का पता नही चलता, क्योकि नायिका का मुख नित्य पूर्ण चन्द्र है।

अलकार—काव्यलिग।

ग्रीवा

प्रसंग—नायिका के गौर वर्ण की प्रशंसा सखी नायक के सम्मुख कर रही है—

> खरी लसति गोरे गरे, धंसति पान की पीक।
> मनो गुलूबंद लाल की, लाल लाल दुति लीक ॥६१॥

गरे=गले मे। लीक=रेखा। लाल=रत्न।

अर्थ—उस नायिका के गोरे गले में नीचे की ओर धसती हुई पान की लाल पीक बहुत सुन्दर दिखाई पडती है। उसकी लाल लाल लकीर बाहर झलकती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानो गले मे बधे हुए गुलूबद के लाल रत्न की लकीर हो।

कल्पना यह की गई है कि नायिका का कठ पारदर्शक है और नीचे की ओर उतरता हुआ रस उसमे से वाहर झलकता है, जिनके कारण वह रत्न की आभा सा दिखाई पडता है। इस दोहे मे काव्य-सौन्दर्य तो न्यून और मौलिकता अधिक है तथा श्रृंगार पर वीभत्स रस हावी हो गया है।

अलकार—उत्प्रेक्षा और यमक।

उरोज

प्रसग—सखी नायिका के सौन्दर्य की प्रशसा करती हुई उसी से कह रही है—

> चलत न पावत निगम मग, जग उपजी अति त्रास।
> कुच उतग गिरिवर गह्यौ, मीना मैन मवास ॥६२॥

निगम मग=वेद शास्त्रोक्त मार्ग। त्रास=भय। उतग=ऊँचा। मवास=डेरा या गढ। मीना=एक लुटेरी जाति। मैन=मदन, कामदेव।

अर्थ—तेरे ऊँचे उरोजो के कारण वेद शास्त्रोक्त मार्ग अर्थात् परायी स्त्री पर बुरी दृष्टि न डालना इत्यादि वन्द हो गया है। उस पर कोई चल नही पाता। इससे ससार भर मे वहुत भय छा गया है, क्योकि ऊँचे उरोज रूपी पर्वतो पर काम रूपी मीना ने अपना गढ या डेरा वना लिया है।

अलकार—रूपक।

प्रसग—सखी नायक से नायिका के रूप का वर्णन कर रही है—

> दुरत न कुच बिच कचुकी, चुपरी सादी सेत।
> कवि अकन के अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत ॥६३॥

दुरत=छिपता है। कचुकी=अगिया। चुपरी=माड लगाई हुई। सेत=सफेद। अकन के=अक्षरो के। लौं=समान।

अर्थ—माड लगी हुई सादी सफेद अगिया के अन्दर अब उसके कुच अर्थात् उरोज छिपते नही है, अपितु कवि के शब्दो के अर्थ के समान वे स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

यहाँ ध्वनित अर्थ यह है कि नायिका के उरोज यद्यपि वडे नही है, परन्तु वढने शुरू हो गये है और अभी वे इतने ही वडे हुए है कि कचुकी पहने होने पर भी उसमे एक दम छिपे नही रहते।

अलकार—उपमा और विशेषोक्ति ।

प्रसंग—सखी नायक से नायिका के रूप का वर्णन करते हुए कह रही है—

भई जु तन छबि बसन मिलि, बरनि सके सु न बंन ।
अग ओप आगी दुरी, आंगी आग दुरै न ॥ ६४॥

बसन=कपडा । बरनि सके=वर्णन कर सकते है । सु न=वह, नही । ओप=आभा । आगी=अगिया । दुरी=छिपी । दुरै न=नही छिपती ।

अर्थ—नायिका ने चपई रग की अगिया पहनी है । उस वस्त्र के शरीर से छूने से उसके शरीर की जो शोभा हुई है, उसे वचनो द्वारा वर्णन नही कर सकते । अगिया पहनी तो इसलिए थी कि उससे शरीर ढक जाये, परन्तु उसके अगो की आभा के कारण अगिया ही छिप गई, और उसके अगो को नही छिपा पाई । अर्थात् अगिया पहने होने पर भी वह ऐसी दिखाई पडती है, मानो उसने अगिया पहनी ही हुई नही ।

अलकार—उपमा, मीलित और विशेषोक्ति ।

प्रसंग—सखी नायिका का रूप वर्णन करते हुए नायक से कहती है—

उर मानिक की उरबसी, डटत घटत दृग दाग ।
झलकत बाहिर भरि मनो, तिय हिय को अनुराग ॥ ६५ ॥

उर=छाती । मानिक=रत्न । उरबसी=एक आभूषण, जिसे चौकी भी कहते हैं । दृग दाग=आंखो की जलन । हिय=हृदय ।

अर्थ—उस नायिका के वक्षस्थल पर पडी हुई रत्न जटित उर्वशी अर्थात् चौकी को देखकर आंखो की जलन मिट जाती है । अर्थात् आंखें शीतल हो जाती हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो उस उर्वशी के रूप मे नायिका के हृदय के अन्दर भरा हुआ अनुराग बाहर छलक रहा है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—सखी नायक को नायिका की शोभा के सम्बन्ध मे बता रही है—

जरीकोर गोरे बदन, बरी खरी छवि देख ।
लसति मनो बिजुरी किये सारद ससि परिवेख ॥६६॥

जरीकोर=जरीदार किनारी । बरी=चमकती हुई । छवि=शोभा ।

विजुरी=विजली। सारद ससि=शरद ऋतु का चन्द्रमा। परिवेख=घेरा या मडल।

अर्थ—उस नायिका के गौर वर्ण मुख पर जरीदार साडी की किनारी से ऐसी विचित्र शोभा बढ जाती है कि ऐसा मालूम होता है, मानो शरद् पूर्णिमा के शशि ने अपने चारो ओर विद्युत् का मडल धारण कर लिया हो। (उस शोभा को तुम अवश्य देखो।)

अलकार—उत्प्रेक्षा और छेकानुप्रास।

अगुलियाँ

प्रसग—नायिका के हाथ की अगुली मे पहने हुए छल्ले को देखकर नायक मन ही मन कहता है—

गोरी छिगुनी अरुन नख, छला स्याम छवि देय।
लहत मुकुति रति छिनक ये, नैन त्रिबेनी सेय ॥६७॥

छिगुनी=कनिष्ठिका अगुली। छला=छल्ला। मुकुति रति=रति रूपी मुक्ति। त्रिवेनी=त्रिवेणी।

अर्थ—नायिका की गोरी कनिष्ठिका अगुली पर लाल नाखून और काला छल्ला बहुत ही शोभा दे रहे है। उस शोभा को देख कर मेरे नेत्र पल भर मे रति रूपी मुक्ति पा लेते है, मानो उन्होने त्रिवेणी मे स्नान कर लिया हो।

अगुली का गोरा रग गगा का और छल्ले का काला रग यमुना का और नाखूनो का लाल रग सरस्वती का प्रतीक है, जिनसे त्रिवेणी बनती है।

अलकार—रूपक और वृत्त्यनुप्रास।

नख

प्रसग—नायिका ने नाखूनो पर मेहदी लगाई हुई है। उन्ही के सम्बन्ध मे नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

गडे बडे छबि छाक छकि, छिगुनी छोर छुटै न।
रहे सुरंग रग रगि वही, नह दी मेंहदी नैन ॥६८॥

गडे=चिपके हुए। छवि छाक=सुन्दरता का नशा। छकि=पीकर। छिगुनी=कनिष्ठिका उगली। छोर=किनारा। नह दी=नखो पर लगाई हुई। रग रहे=प्रेम मे फस रहे है।

अर्थ—नायिका ने अपने नाखूनो पर जो मेहदी लगाई है, उसकी सुन्दरता के मद से छक कर मेरे नेत्र उसकी कनिष्ठिका उगली के छोर मे गड़े हुए है अर्थात् उससे चिपके हुए है वहाँ से छूट नही पाते और उसी नाखून मे लगी मेहदी के लाल रग मे पग रहे है अर्थात् अनुरक्त हो रहे हैं।

अलकार—उत्प्रेक्षा और वृत्त्यनुप्रास।

त्रिवली

प्रसग—नायक ने नायिका की त्रिवली अर्थात् पेट पर पड़ने वाली लकीरो को देखकर आनन्द पाया है, उसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> कर उठाय घूघट करत, उसरत पट गुझरोट।
> सुख मोटें लूटीं ललन, लखि ललना की लोट ॥६६॥

उसरत=हट जाने से। गुझरोट=सलवटें। मोटें=गठरियाँ। लोट=त्रिवली, पेट पर पड़ने वाली तीन रेखाएँ।

अर्थ—हाथ उठाकर घूंघट करते समय नायिका के वस्त्र का सलवटों वाला आँचल एक ओर को हट गया। उसके फलस्वरूप नायिका की लोट अर्थात् त्रिवली को देख कर ललन अर्थात् नायक ने सुख की गठरियाँ लूट लीं। अर्थात् उसे बहुत आनन्द हुआ।

अलंकार—हेतु और वृत्त्यनुप्रास।

कटि

ज्येष्ठ मास मे दिन बडे और राते छोटी होती है।

अलकार—रूपक और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायिका की सखी नायक के सम्मुख नायिका का वर्णन कर रही है—

लहलहाति तन तरु नई लचि लगि लौं लफि जाय।
लगँ लाक लोयन भरी लोयन लेति लगाय ॥७१॥

लहलहाति=लहलहा रही है। तरु नई=जवानी। लचि=लचक कर। लगि=लग्गी, बांस की डाली। लौ=तरह। लफि जाय=दुहरी हो जाती है। लाक=कमर। लोयन=लावण्यता, सुन्दरता। लोयन=लोचन, नेत्र।

अर्थ—उसके शरीर मे यौवन लहलहा रहा है। उसकी कमर लचक कर बास की हरी डाली की तरह दुहरी हो जाती है। वह सुन्दरता से भरी हुई कमर इतनी प्यारी लगती है कि आंखो को अपनी ओर लगा लेती है।

उसकी पतली और लचकीली कमर इतनी सुन्दर है कि जो देखता है, वह देखता ही रह जाता है।

अलकार—वृत्त्यनुप्रास और उपमा।

प्रसग—कवि यौवन का वर्णन करते हुए कहता है—

अपने अग के जानि कै जोबन नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ बडौ इजाफा कीन ॥७२॥

अपने अग के=अपने पक्ष के। इजाफा कीन=पद वृद्धि कर दी है।

अर्थ—कुशल यौवन रूपी राजा ने स्तन, मन, नयन और नितम्बो को अपने पक्ष का समझ कर इनकी बहुत तरक्की कर दी है।

युवावस्था आने पर ये अग बढ जाते है, उसी को कवि ने इस रूप मे देखा है कि जैसे यौवन ने इन अगो की पद वृद्धि कर दी हो।

अलकार—रूपक और उत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायिका के सम्बन्ध मे सखियाँ परस्पर वार्तालाप मे कह रही है—

लगी अनलगी सी जु विधि, करी खरी कटि छीन।
किये मनो वाही कसरि, कुच नितम्ब अति पीन ॥७३॥

खरी=बहुत । विधि=विधाता, ब्रह्मा । लगी अनलगी सी=जो इतनी पतली है कि यह पता ही नही चलता कि वह जुडी भी हुई है या नही। छीन=क्षीण, पतली । वाही=उसी । कसरि=कसर निकालने के लिए। पीन=परिपुष्ट ।

अर्थ—विधाता ने उसकी कमर इतनी पतली बनायी कि वह लगी-अनलगी सी जान पडती है, अर्थात् पता ही नही चलता कि वह है भी या नही, और फिर मानो उसी की कमी पूरी करने के लिए उसने उसके उरोज और नितम्बो को खूब बडा-बडा बना दिया है।

अलकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—कवि नायिका के यौवन के कारण परिवर्तित होते हुए शरीर का वर्णन कर रहा है—

नव नागरि तन मुलुक लहि, जोबन आमिर जोर ।
घटि बढि ते बढि घटि रकम, करी और की और ॥७४॥

नागरि=नगर की रहने वाली कन्या । मुलुक=देश । आमिर=शासक। जोर=प्रबल ।

अर्थ—यौवन रूपी प्रबल शासक ने नवयुवती के शरीर रूपी देश को प्राप्त करके छोटी रकमो को बढा कर और बडी रकमो को घटा कर कुछ का कुछ कर दिया।

जैसे दबग शासक रकमो मे हेर-फेर करके बही-खातो मे बडी गडबडी कर डालता है, उसी प्रकार यौवन रूपी शासक ने नवयुवती के देह मे छोटे अगो को बडा और बडे अगो को छोटा कर दिया। यह युवावस्था के कारण होने वाले शारीरिक परिवर्तनो की व्यजना है।

अलंकार—रूपक ।

ऊरु युगल

प्रसग—नायिका की जाघो के सम्बन्ध मे सखी किसी दूसरी सखी से कह रही है—

जंघ जुगल लोयन निरे, करे मनो बिधि मैन ।
केलितरुन दुखदैन ए, केलि तरुन सुख दैन ॥७५॥

लोयन=लावण्य, सौन्दर्य । विधि मैन=कामदेव रूपी ब्रह्मा । केलितरुन=केले के वृक्षो को। केलि तरुन=रति के समय तरुण पुरुषों को।

अर्थ—कामरूपी ब्रह्मा ने उसकी दोनो जांघो को मानो निरे लावण्य से ही बनाया है। उसकी ये जांघे केले के वृक्षो को तो दु ख देने वाली हैं, परन्तु केलि अर्थात् रति के समय तरुण पुरुषो को सुख देने वाली हैं।

केले के वृक्षो को उन जांघो को देख कर इसलिए दु ख होता है, क्योंकि वे सुन्दरता मे केले के वृक्षो को मात करती है।

अलकार—उत्प्रेक्षा, यमक और रूपक।

चरण

प्रसग—नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

> रह्यौ ढीठ ढाढस गहे, ससिहर गयो न सूर।
>
> मुर्यो न मन मुरवान चुभि, भौ चूरन चपि चूर ॥७६॥

ढीठ=धृष्ट। ढाढस गहे=हिम्मत करके। ससिहर=भयभीत। सूर=वीर। मुरवान=गिट्टो मे। चूरन=कडो से। चपि=दब कर।

अर्थ—मेरा मन बहुत बहादुर है। वह नायिका के मुरवो अर्थात् गिट्टो से छूने के बाद वापस नही मुडा, अपितु हिम्मत करके ढिठाई से वही चिपका रहा और कडो से दब कर चूर-चूर हो गया।

नायक ने नायिका के गिट्टो को देखा, जिनके ऊपर उसने कड़े पहने हुए थे। उसका मन उन पर मुग्ध हो गया।

अलंकार—अनुप्रास।

प्रसंग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

> पाय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
>
> फिरि फिरि जानि महावरी, एडी मीडत जाय ॥ ७७ ॥

महावर=एडियो पर लगाने का लाल रग। पाय=पैरो मे। महावरी=महावर की गोली। फिरि फिरि=बार-बार। मीडत जाय=मसलती या दबाती जाती है।

अर्थ—नाइन नायिका के पैरो मे महावर लगाने के लिए पास आकर बैठी। वह नायिका की एडी को ही महावर की गोली समझ कर उसे मीड मीड कर रग निकालने की कोशिश करने लगी।

महावर लगाने के लिए पहले रग को एक रुई की गोली मे लगा देते है और फिर उसी को दवा दवा कर एडियो पर रग लगाने जाते है। नायिका की एडियाँ इतनी गोल और लाल हैं कि नाइन को उन्हे देख कर महावर वटी का भ्रम हो गया।

अलंकार—भ्रम।

प्रसग—नायिका की सखी नायक से नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कह रही है—

कौहर सी एडीन की, लाली निरखि सुभाय।
पाय महावर देह को, आप भई बेपाय ॥७८॥

कौहर=एक जगली फल इन्द्रायण, जो देखने मे बहुत सुन्दर और लाल होता है। निरखि=देखकर। वेपाय भई=हक्की बक्की रह गई। देह को-कौन दे?

अर्थ—नायिका की एडियो की इन्द्रायण फल के समान स्वाभाविक लाली देख कर नाइन हक्की-बक्की अर्थात् स्तब्ध सी रह गई। अब नायिका के पाँवो मे महावर दे, तो कौन दे?

अलकार—उपमा और यमक।

प्रसग—सखी नायिका के चरणो की लाली का वर्णन कर रही है—

अरुण बरन तरुनी चरन, अगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरग रंग सो मनो, चपि बिछुवन के भार ॥७९॥

बरन=रग। चुवत=चूने लगता है। चपि=दब कर। बिछुवन=बिछुओ के।

अर्थ—उस युवती नायिका के चरन लाल रग के है और उसकी अँगुलियाँ अत्यन्त कोमल है। उन उँगलियो पर पहने हुए बिछुओ के बोझ से दबने से ही उन अँगुलियो मे मानो आलते का लाल रग टपकने लगता है।

बिछुआ पैर की अँगुलियो मे पहनने का एक छल्ला-सा आभूषण होता

है। कल्पना यह की गई है कि अँगुलियो की स्वाभाविक लाली मानो विछुओ के वोझ के कारण चूने वाले लाल रग के कारण है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—सखी नायिका की सुकुमारता का वर्णन करते हुए नायक से कह रही है—

> छाले परिवे के डरनि, सकै न हाथ छुवाय।
> झिझकति हिये गुलाव के झवा झवावत पाय ॥८०॥

झिझकति=झिझकते हुए। झवा=झाँवाँ, मिट्टी का वना हुआ एक उपकरण, जिससे पैरों के तलवे साफ किये जाते है। झवावत=झाँवे से साफ कराती है।

अर्थ—पाँव साफ करने के लिए आई हुई नाइन इस डर से उसे अपना हाथ नही लगाती कि कही कठोर हाथ के स्पर्श से नायिका के शरीर पर छाले पड जायें। इसलिए वह वहुत हिचकते हुए गुलाव की पखुडियो के झाँवे से उसके पैर साफ करती है।

नायिका की अत्याधिक सुकुमारता व्यजित की गई है। गुलाव के झावे से भी पैर साफ करते हुए यह डर बना रहता है कि कही खरोच न पड जाये।

अलकार—अतिशयोक्ति।

प्रसग—सखी नायक से नायिका की सुन्दरता का वर्णन कर रही है—

> पग पग मग अगमन परति, चरन अरुन दुति झूलि।
> ठौर ठौर लखियत उठे, दुपहरिया से फूलि ॥८१॥

मग=मार्ग। अगमन=आगे। ठौर-ठौर=जगह-जगह। दुपहरिया=एक फूल का नाम, वन्धूक पुष्प।

अर्थ—रास्ते मे जव उसके पग आगे की ओर पडते है, तव वहा पैरो की लाली झड सी जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो जगह-जगह दुपहरिया के फूल खिल उठे हो।

अलकार—उत्प्रेक्षा और वृत्यनुप्रास।

प्रसग—सखी नायक के सम्वन्ध मे नायिका से कह रही है—

क्यि हायल चित चाय लगि, बजि पायल तुव पाय।
पुनि सुनि सुनि मुख मधुर धुनि, क्यो न लाल ललचाय ।।८२।

हायल=लालायित। चित चाय=हार्दिक इच्छा। पायल=पैर में पहरने का आभूषण। लाल=नायक।

अर्थ—तेरे पैर के पायल ने वज कर नायक के चित्त मे इच्छा जगा कर उसे लालायित कर दिया है, तो फिर वह तेरे मुख की मधुर ध्वनि सुन क र बार-बार ललचाये क्यो नही।

अलंकार—अनुप्रास और वीप्सा।

प्रसग—नायिका की सखी नायिका का सौन्दर्य वर्णन करते हुए नायक से कह रही है—

सोहत अगुठा पायके, अनवट जर्‌यौ जराय।
जीत्यौ तरिवन दुति सु ढरि, पर्‌यो तरनि मनु पाय ।।८३।।

अनवट=पैर के अगूठे में पहनने का एक आभूपण। जराय=जडाऊ। तरिवन=ताटक या कर्णफूल से। दुति=चमक। ढरि=गिरकर। तरनि=सूर्य।

अर्थ—नायिका के पैर के अगूठे मे पहना हुआ जडाऊ अनवट ऐसा शोभा देता है, मानो उसके कर्णफूलो की कान्ति से पराजित होकर सूर्य ही नायिका के पैरो पर आ पड़ा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

नायिका का रूप और सौकुमार्य

प्रसग—सखी नायिका के रूप की प्रशसा करते हुए नायक से कह रही है—

अंग अग नग जगमगे, दीप सिखा सी देह।
दिया बढ़ाये हू रहै, बड़ो उजेरो गेह ।।८४।।

नग=रत्न। जगमगै=जगमगाते है। दीप सिखा=दीपक की लौ। दिया बढाये हू=दीपक बुझाने पर भी। उजेरो=उजाला।

अर्थ—उस नायिका के अग-प्रत्यग मे रत्न जगमगाते हैं, क्योकि उसकी अपनी देह दीपक की शिखा जैसी है। इसका परिणाम यह होता है कि दीपक बुझा देने पर भी घर मे खूब उजाला छाया रहता है।

अलकार—उपमा और विशेषोक्ति।

प्रसग—सखी नायिका का वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

सहज सेत पचतोरिया, पहरे अति छबि होति।
जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन जोति॥८५॥

पचतोरिया=यह एक बारीक रेशमी साडी होती है, जिसका कुल भार पाच तोले होता है। जल चादर=पुराने समय मे धनिको के महलो मे या बागो मे ऐसा प्रबन्ध रहता था, जहाँ जल का प्रपात एक पतली तथा लम्बी चादर के रूप मे नीचे गिरता था। इस जल-चादर के पीछे बहुत से दीपक जला कर रख दिये जाते थे, जो जल चादर के पार झिलमिलाते हुए बहुत सुन्दर दिखाई पडते थे। जोति=दमक।

अर्थ—वह नायिका जब रेशम की पचतोरिया साडी पहन लेती है, तब उसके शरीर की शोभा बहुत बढ जाती है। उसके शरीर की कान्ति जल चादर के दीपको की भाँति जगमगा उठती है।

जैसे दीपको का प्रकाश जल-चादर के पार आता हुआ सुन्दर प्रतीत होता है उसी प्रकार पचतोरिया साडी मे से झलकती हुई उसके शरीर की कान्ति मनोहर होती है।

अलकार—उपमा।

प्रसग—सखी नायिका के शरीर की कान्ति का वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

पचरग नग बेंदी बनी, उठी जागि मुख जोति।
पहिरे चीर चुनौटिया, चटक चौगुनो होत॥८६॥

पचरग=पचरगी। बेंदी=बिन्दी। जोति=चमक। चुनौटिया=चुन्नटदार, कई रगो मे रगी हुई लहरदार। चीर=चूनरी। चटक=कान्ति।

अर्थ—जब वह पाँच रगो के नगो से जडी बिन्दी वह अपने माथे पर लगाती है तब उसके मुख पर ज्योति-सी जाग उठती है, अर्थात् एक विचित्र आभा छा जाती है; और जब वह चुन्नटदार लहरिया साडी पहनती है, तब उसकी चमक चौगुनी हो जाती है।

अलंकार—अनुगुण और अनुप्रास।

प्रसग—सखी नायिका का वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

बेंदी भाल, तबोल मुख, सीस सिलसिले बार।
दृग आंजे राजै खरी, एही सहज सिगार ॥८७॥

तबोल=पान। सिलसिले=तर, चिकने। आजे=अँजन लगाये हुए। सहज=स्वाभाविक।

अर्थ—वह नायिका मस्तक पर विन्दी लगाये, मुख मे पान चबाती हुई खडी है। उसके बाल सुगन्धित तेल से सवारे गये है आँखो मे उसने अँजन लगाया है। इतने से ही वह अत्यन्त शोभाशालिनी दीख रही है, क्योकि यही उसका स्वाभाविक शृंगार है।

भाव यह है कि इतनी रूपवती नायिका को शृगार का कोई और बडा बखेडा नही करना पडता।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—सखी नायिका के सम्बन्ध मे नायक से कह रही है—

मानहु विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिव काज।
दृगपग पोछन को किये, भूषन पायन्दाज ॥८८॥

अच्छ=अच्छी। विधि=विधाता। काज=लिए। दृगपग=आंखो के पैरो को। पायन्दाज=पैर पोछने के लिए रखा गया पावदान, जिस पर पैर पोछने के बाद ही बिस्तर पर बैठा जाता है।

अर्थ—लोगो की दृष्टि के पैर नायिका के शरीर तक पहुँचकर उसकी उज्ज्वल शोभा को मलिन न कर दें, अत उसे स्वच्छ रखने के लिए मानो विधाता ने आभूषणो को पायन्दाज अर्थात् पावदान बना दिया है, जिन पर पैर पोछने के बाद ही दृष्टि उसके तन तक पहुँच सके।

यहाँ बिहारी ने यह कल्पना की है कि नायिका का तन स्वच्छ बिस्तर

है। लोगो की दृष्टि अतिथि है और आभूषण पावदान है। जैसे अतिथि पाव-दान पर पैर पोछ कर स्वच्छ विस्तर पर बैठता है, जिससे विस्तर मैला न हो उसी प्रकार दृष्टि पहले आभूषणो पर टिकने के बाद फिर अगो तक पहुँचती है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—सखी नायिका से कह रही है—

भूषन पहिरि न कनक के, कहि आवत इहि हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत ॥८९॥

कनक=सोना, स्वर्ण। मोरचा=जग। दरपन=शीशा।

अर्थ—तू सोने के गहने मत पहना कर। यह बात इसलिए कहनी पड़ती है क्योकि तेरी देह पर ये आभूषण ऐसे मालूम होते है, जैसे दर्पण पर जग लग गया हो।

जब दर्पण ठीक दशा मे होता है, तो वह उज्ज्वल और सुन्दर दिखाई देता है। परन्तु पुराना और खराब हो जाने पर जहाँ-तहाँ उसकी कलई उतर जाती है, तो वह भद्दा दिखाई पडता है। उसी को कवि ने मोरचा कहा है। नायिका की देह स्वभावत बहुत सुन्दर है और आभूषण उसके सौन्दय को कम ही करते हैं।

अलकार—उपमा और विषम।

प्रसग—नायिका सफेद धोती पहने हुए रसोईघर मे आ जा रही है। उसी को देख कर कवि की उक्ति है।

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति।
फिरति रसोई के बगर, जगर मगर दुति होति ॥९०॥

टटकी=तुरत की। धोवती=धोती। चटकीली=चमकदार। जोति=कान्ति। बगर=घर। जगर मगर=जगमग।

अर्थ—उस नायिका ने तुरन्त की धोई हुई सफेद धोती पहनी हुई है और उसके मुख की कान्ति बहुत ही चमकदार अर्थात् आकर्षक है। वह रसोई घर मे चल फिर रही है और उसकी छवि से सारा रसोईघर जगमग हो रहा है।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

प्रसंग—सखी नायक से नायिका के रूप के विषय मे कह रही है—

> हौं रीझी, लखि रीझि हौ, छबिंहि छबीले लाल ।
> सोनजुही सी होति दुति, मिलति मालती माल ॥६१॥

हौं रीझी=मैं मुग्ध हो गई हूँ । मालती=एक सफेद फूल ।

अर्थ—हे छबीले नायक ! मैं तो उसे देख कर उस पर मुग्ध हो गई हूँ, जब तुम उसे देखोगे, तो तुम भी मुग्ध हो जाओगे । उसका गौर वर्ण ऐसा अद्भुत है कि जब वह मालती की माला पहनती है, तो उसके शरीर की द्युति अर्थात् कान्ति से मिलकर वह माला पीली चमेली की सी दिखाई पड़ने लगती है ।

अलंकार—तद्गुण और अनुप्रास ।

प्रसंग—नायक नायिका के सुन्दर रूप को देख कर मन ही मन कह रहा है—

> झीने पट में झिलमिली, झलकति ओप अपार ।
> सुरतरु की मनु सिन्धु में, लसत सपल्लव डार ॥६२॥

झिलमिली=झिलमिलाती हुई । ओप=आभा, चमक । झीना=पतला । सुरतरु=कल्प वृक्ष । सपल्लव=पत्तो समेत । डार=डाली ।

अर्थ—बारीक कपडे के भीतर से उसकी झिलमिलाती हुई अपार आभा ऐसी दिखाई पड रही है, मानो समुद्र के अन्दर पत्तो सहित कल्प वृक्ष की डाली दिखाई पड रही हो ।

लाला भगवानदीन जी ने 'झिलमिली' का अर्थ 'कान मे पहनने का पत्ते के आकार का एक आभूषण' किया है, जिससे अर्थ यह बन जायगा कि बारीक वस्त्र मे से उसकी झिलमिली ऐसी दमक रही है इत्यादि ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसंग—नायिका की सखी नायिका के रूप का वर्णन करते हुए नायक से कह रही है—

> केसरि कै सरि क्यों सकै, चंपक कितक अनूप ।
> गातरूप लखि जात दुरि, जातरूप को रूप ॥६३॥

केसरि=कुकुम । सरि=बराबरी, समानता । चपक=चपा । कितक=कितना । जातरूप=स्वर्ण ।

अर्थ—उस नायिका का शरीर इतना गौर वर्ण है कि केसर उसकी बराबरी कैसे कर सकता है ? और चपा मे तो उसकी बराबरी करने योग्य सौन्दर्य ही कितना है ? उसके शरीर के सौन्दर्य को देख कर तो सोने का रग भी छिप-सा जाता है, अर्थात् फीका पड जाता है ।

अलकार—प्रतीप ।

प्रसग—सखी नायिका के रग की प्रशसा नायक के सामने कर रही है—

ह्वै कपूरमणिमय रही, मिलि तनद्युति मुकुतालि ।
छिन छिन खरी विचच्छनौ लखति छ्वाय तनु आलि ॥९४॥

कपूरमणि=पीले रग का एक चमकीला पदार्थ, कहरुवा । इसकी विशेषता यह होती है कि यह चुम्बक की भाँति तिनको को अपनी ओर खीचता है । मुकुतालि=मोतियो की लडी । खरी=बहुत । विचच्छनौ=चतुर । छ्वाय=छुआकर । आलि=सखी ।

अर्थ—नायिका की चम्पई कान्ति के कारण मोतियो की माला कहरुवे की सी हो जाती है तब चतुर सखी तिनका छुआ कर बार-बार यह देखती है कि माला कहरुवे की है या मोती की ।

अलंकार—भ्रम और तद्गुण ।

प्रसंग—सखी नायिका के विषय मे नायक से कह रही है—

बाल छबीली तियन में, बैठी आपु छिपाय ।
अरगट ही फानूस सी, परगट परै लखाय ॥९५॥

बाल=बाला, नायिका । अरगट=आड या परदा । फानूस=शीशे के पात्र मे रखे जाने वाला दीपक, जो सम्पन्न लोगो के घरो मे सजावट के लिए रखा जाता है । परगट=प्रकट ।

अर्थ—वह सुन्दरी नायिका यद्यपि स्त्रियो के बीच मे अपने आपको घूँघट मे छिपा कर बैठी, फिर भी वह फानूस के दीपक की तरह प्रकट ही दिखाई पड रही थी ।

भाव यह है कि जैसे फानूस का पात्र अन्दर रखे दीपक की कान्ति को

छिपा नही पाता, उल्टे उसे और बढा ही देता है, उसी प्रकार नायिका का घूँघट भी उसकी शोभा को छिपाता नही, अपितु बढाता ही है।

अलंकार—उपमा और विशेषोक्ति।

प्रसंग—सखी द्वारा नायक के सम्मुख नायिका का रूप वर्णन—

दीठि न परत समान दुति, कनक कनक से गात।
भूषन कर करकस लगत, परस पिछाने जात ॥९६॥

कनक=सोना। भूषन=गहने। करकस=कठोर।

अर्थ—उसके स्वर्ण जैसे शरीर पर सोने के आभूषण दिखाई नही पड़ते, क्योंकि दोनो का रंग ठीक एक जैसा है। परन्तु छूने पर आभूषण कठोर लगते हैं, तब वे स्पर्श से पहचान लिए जाते हैं।

रंग मे नायिका का शरीर और स्वर्ण के आभूषण एक समान हैं, परन्तु स्पर्श मे शरीर कोमल है और आभूषण कठोर हैं।

अलंकार—उन्मीलित और यमक।

प्रसंग—नायिका की कान्ति की प्रशंसा करते हुए सखी नायक से कह रही है—

करत मलिन आछी छबिहिं, हरत जु सहज बिकास।
अंगराग अंगन लग्यो, ज्यों आरसी उसास ॥९७॥

आछी=अच्छी। बिकास=निखार। अंग राग=आजकल के पाउडर इत्यादि की भाँति शरीर के रंग को निखारने के लिए प्रयुक्त किये जाने वाला लेप या चूर्ण। अंगन=अंगों पर। आरसी=शीशा। उसास=उच्छ्वास।

अर्थ—उसके अंगों पर लगा हुआ अंग राग उनकी अच्छी कान्ति को भी मलिन कर देता है और उसके स्वाभाविक निखार को हर लेता है जैसे दर्पण पर मनुष्य का उच्छ्वास लगने से उस पर भाप जम जाती है और उसकी चमक दब जाती है।

भाव यह है कि अंगराग आदि प्रसाधनों मे उनकी चमक बढ़ती नहीं, अपितु घटती है।

अलंकार—उदाहरण और विभावना।

प्रसग—सखी नायिका के सुन्दर रूप की प्रशसा नायक के सम्मुख कर रही है—

अंग अग प्रतिबिम्ब परि, दरपन से सब गात ।
दुहरे तिहरे चौहरे, भूषन जाने जात ।।६८।।

गात=अग । दरपन=मुकुर, दर्पण ।

अर्थ—उस नायिका का सारा शरीर दर्पण के समान चमकीला है। इसलिए वह जो आभूषण धारण करती है, उसके प्रतिबिम्ब अलग-अलग अगो पर पडते है और इस कारण वे आभूषण, दुहरे, तिहरे, या चौहरे, अर्थात् कई गुने प्रतीत होते है ।

अलकार—उपमा और भ्रम ।

प्रसग—सखी द्वारा नायक के सम्मुख नायिका का छवि वर्णन—

अग अग छवि की लपट, उपटति जाति अछेह ।
खरी पातरीऊ तऊ, लगी भरी सी देह ।।६९।।

लपट=लौ या आभा । उपटति जाति=उभरती आती है । अछेह=बहुत, अक्षय । खरी=बहुत । पातरीऊ=पतली भी ।

अर्थ—उस नायिका के अग-प्रत्यग से कान्ति की बहुत अधिक लपट सी उठती है। इस कारण यद्यपि वह बहुत पतली है, फिर भी उसकी देह भरी हुई सी अर्थात् परिपुष्ट सी प्रतीत होती है ।

अलकार—विभावना और काव्यलिग ।

प्रसग—दूती नायिका का वर्णन करते हुए नायक से कह रही है—

सोहति धोती सेत में, कनक बरन तन बाल ।
सारद बारद बीजुरी, भा रद कीजत लाल ।।१००।।

कनक=स्वर्ण । बरन=रग । सारद=शरद ऋतु का । बारद=बादल । रद कीजत=रद्द कर देती है, नीचा दिखा देती है ।

अर्थ—हे लाल, वह काचन के रग के शरीर वाली बाला सफेद धोती पहन कर ऐसी शोभा देती है कि वह शरद ऋतु के बादलो मे चमकने वाली बिजली की भा अर्थात् प्रभा को भी नीचा दिखा देती है ।

सफेद धोती मे नायिका का सुनहला शरीर शरद ऋतु के बादल मे चमकती बिजली को भी मात कर देता है ।

अलंकार—प्रतीप और अनुप्रास ।

प्रसंग—सखी नायिका के कांचन वर्ण की प्रशंसा करते हुए नायक से कह रही है—

रंच न लखियत पहिरियै, कंचन से तनु बाल ।
कुंभिलाने जानी परै, उर चंपै की माल ॥१०१॥

रंच=तनिक । बाल=बाला । कुंभिलाने=कुम्हला जाने पर ।

अर्थ—उस नायिका के कंचन जैसे शरीर पर पहनी हुई चम्पा की माला जरा भी दिखाई नही पडती । वह केवल तभी पहचानी जाती है, जबकि उसकी छाती पर पडी-पडी वह कुम्हला जाती है ।

भाव यह है कि नायिका का रंग ताजे खिले चम्पा के फूल के समान है ।

अलंकार—उन्मीलित ।

प्रसंग—सखी नायिका से कह रही है—

भूषन भार सँभारि है, क्यों यह तन सुकुमार ।
सूधे पाय न धर परत, सोभा ही के भार ॥१०२॥

सूधे=सीधे अर्थात् स्थिर । धर=पृथ्वी । सोभा=छवि ।

अर्थ—हे सुन्दरि, यह कोमल शरीर आभूषणों का बोझ किस प्रकार संभाल पायेगा ? क्योंकि तुम्हारे तो शोभा के बोझ के कारण ही धरती पर सीधे पैर नही पडते ।

तुम तो सुन्दरता के बोझ से ही दबी जा रही हो, इसलिए आभूषण पहनने की कोई आवश्यकता नही है ।

अलंकार—वक्रोक्ति ।

प्रसंग—नायक नायिका की चाल को देखकर सखी से कह रहा है—

चिलक चिकनई चटक स्यों, लफति सटक लौं आय ।
नारि सलोनी सांवरी, नागिन लौं डस जाय ॥१०३॥

चिलक=चमक । चिकनई=स्निग्धता, चिकनापन । चटक=चटक, मटक । लफति=लचकति हुई । सटक=सटी, लचकीली छडी । सलोनी=सुन्दर । लौं=तरह, समान ।

अर्थ—चमक, चिकनेपन और चटक-मटक मे लचकीली छड़ी की तरह

लचकती हुई वह साँवली सुन्दर नारी पास आती है और नागिन की तरह डस कर चली जाती है।

जैसे लचकीली छडी पास आकर तुरन्त हट जाती है, उसी तरह नायिका मार्ग पर गुजरती ई तेजी से पास आती है और आगे निकल जाती है। उसका प्रभाव नागिन के दश की भाँति विकल करने वाला होता है।

अलकार—उपमा।

प्रसग—नायिका वाटिका मे घूम रही है और नायिका की सखि नायक को वही चलने के लिए मनाते हुए कह रही है—

देखत सोनजुही फिरती, सोनजुही से अंग।
दुति लटपन पट सेत हू, करत बनौटी रग ॥१०४॥

सोनजुही=पीली चमेली। दुति=कान्ति। लपट=शिखा, ज्वाला। सेत=सफेद। वनौटी=कपासी रग।

अर्थ—वह पीली चमेली के समान अगो वाली नायिका वाटिका मे पीली चमेली के फूलो को देखती घूम रही है। उसके शरीर की कान्ति की लपटो ने रग की साडी भी वनौटी अर्थात् कपासी रग की हो रही है।

अलकार—तद्गुण और लाटानुप्रास।

प्रसग—सखी नायिका की शोभा का वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

तन भूषन अंजन दृगनि, पगन महावर रँग।
नहि सोभा को साज ये, कहिबे ही को अग ॥१०५॥

दगनि=आँखो मे। भूषन=आभूषण।

अर्थ—वह नायिका जो तन पर आभूषण पहनती है, आंखो मे काजल डालती है और पैरो मे महावर लगाती है, ये सब तो केवल खाना पूरी करने के लिए है। उसके लिए कोई शोभा बढाने वाले प्रसाधन नही है।

भावार्थ यह है कि वह इन सबका प्रयोग केवल इसलिए करती है, क्योकि इनका प्रयोग करना उचित समझा जाता है, या इसकी प्रथा है। वस्तुत इनसे उसके शरीर की शोभा बढती नही।

अलकार—अपह्नुति।

प्रसंग—सखी नायिका का सौन्दर्य वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

कहि लहि कौन सकै दुरी, सोनजाय में जाय।
तन की सहज सुवासना, देती जोन बताय ॥१०६॥

दुरी=छिपी। सोनजाय=सोनजुही, पीली चमेली। सुवासना=सुगन्ध।

अर्थ—जब वह नायिका सोनजुही की वाटिका मे जा छिपी, तब उसे कौन खोज कर निकाल सकता था, क्योकि उसका रग सोनजुही से इतना मिलता था कि वह अलग पहचानी ही नही जाती थी, अगर उसके शरीर की स्वभाविक गन्ध उसका पता न बता देती, अर्थात् अपने शरीर की गन्ध के कारण वह पहचान ली गई।

अलकार—उन्मीलित और यमक।

प्रसग—सखी नायिका का रूप वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

कंचन तन धन बरनबर, रह्यो रंग मिलि रंग।
जानी जात सुवास ही, केसर लाई अग ॥१०७॥

घन=तीव्र। वरनवर=श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् रग। सुवास=सुगन्ध। लाई=लगाई हुई।

अर्थ—उसका शरीर कचन के रग का है। उसमे केसर का रग मिल कर एक हो गया है। शरीर पर लगी हुई केसर रग से अलग पहचानने मे नही आती, केवल अपनी गध से पहचानी जाती है।

नायिका के शरीर की गन्ध कमल के समान है। अतः केसर की गन्ध उससे पृथक् होने के कारण यह पता चलता है कि अमुक स्थान पर केसर लगा हुआ है।

अलंकार—मीलित और उन्मीलित।

प्रसग—सखी नायिका के रूप के सम्बन्ध मे नायक से कह रही है—

कहा कुमुद, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति ॥१०८॥

कुमुद=एक सफेद फूल। कौमुदी=चाँदनी। आरसी=दर्पण। उजराई=उज्ज्वलता। जोति=कान्ति, प्रभा।

अर्थ—उस नायिका के सम्मुख क्या तो कुमुद की कान्ति है और क्या

चाँदनी की और क्या दर्पण की ! क्योंकि वह इतनी गोरी है कि उसकी उज्ज्वलता को देख कर आँखें उजली हो जाती हैं।

कुमुद, कौमुदी और दर्पण अपने आप मे बहुत उज्ज्वल होते है, परन्तु नायिका की कान्ति इन सबसे बढ़कर है।

अलकार—प्रदीप, और अतिशयोक्ति।

प्रसग—सखी नायिका के रूप का वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

वाहि लखे लोयन लगै, कौन जुवति की जोति।
जाके तन की छाँह ढिग, जोन्ह छाह सी होति ॥१०६॥

लोयन लगे=आँखो मे जचे। जुवति=युवती। जोति=सुन्दरता। छाँह=छाया। जोन्ह=चाँदनी, ज्योत्स्ना।

अर्थ—उस नायिका को देखने के बाद अन्य किसी युवती का सौंदर्य आँखो को प्रिय लग सकता है ? क्योकि उस नायिका के शरीर की छाया के सामने तो चाँदनी भी छाया सी दिखाई पडने लगती है।

वैसे चाँदनी उज्ज्वल और श्वेत होती है, परन्तु नायिका का शरीर इतना गौर है कि उसके सम्मुख चाँदनी काली छाया जैसी जान पडती है।

अलकर—प्रतीप और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—सखी नायिका के सम्बन्ध मे नायक से कह रही है—

सोनजुही सी जग-मगै अग अग जोवन जोति।
सुरग कुसुम्भी चूनरी, दुरग देहदुति होति ॥११०॥

सोनजुही=पीली चमेली। जगमगै=दमकती है। जोवन जोति=यौवन की कान्ति। सुरग=अच्छे रग वाली। चूनरी=ओढनी। दुरग=दो रगों वाली।

अर्थ—नायिका के अग-अग मे यौवन की कान्ति पीली चमेली की तरह चमक रही है। जब वह कुसुम्भ के रग मे रगी लाल रग की सुन्दर ओढनी ओढ लेती है, तब उसके शरीर की आभा दुरग अर्थात् लाल और पीले रगो से मिश्रित या धूप-छाँह सी हो जाती है।

अलकार—उपमा, तद्गुण, और अनुप्रास।

प्रसग—सखी दूसरी सखी से कह रही है—

न जक धरत हरि हिय धरत, नाजुक कमला बाल।
भजत भार भय भीत ह्वै, घन चन्दन बनमाल ॥१११॥

जक==भय। बाल--बाला। भार==बोझ। घन==कपूर, घनसार।

अर्थ—उस कमला अर्थात् लक्ष्मी जैसी सुकुमार बाला अर्थात् नायिका को हृदय मे धारण करने के कारण श्रीकृष्ण को कपूर, चन्दन और वनमाला छाती पर रखते भी चैन नही पडती, क्योकि उन्हें यही भय लगा रहता है कि कही इनका बोझ हृदय मे बसने वाली उस सुकुमारी के लिए कष्टदायक न हो जाये।

नायक ने नायिका को इतना सुकुमार माना है कि कही छाती पर कपूर, चन्दन या माला धारण करने से भी नायिका पर बोझ न पड जाये, इसलिए वह इनके सेवन से भी बचता है।

अलकार—अतिशयोक्ति और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायिका के रूप के सम्बन्ध मे सखी नायक से कह रही है-

लिखन बैठि जाकी सबिहिं, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥११२॥

सबिहिं==सबी को, चित्र या छवि को। गरूर==घमडी। कूर==तुच्छ, हीन।

अर्थ—उस नायिका की छवि को अकित करने के लिए बडे अभिमान के साथ बैठने वाले अभिमानी न जाने कितने चतुर चित्रकार क्षुद्र बन गये।

भाव यह है कि जिन अभिमानी चित्रकारो को अपनी चित्रकला का बडा अभिमान था, उस नायिका का चित्रांकन करने पर उनका गर्व खर्व हो गया, क्योकि वे उसका समुचित चित्र बना पाने मे सफल नही हुए।

लाला भगवानदीन जी ने चित्र ठीक न बन पाने का कारण यह बताया है कि नायिका के रूप को देख उन्हे स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कम्प इत्यादि सात्विक भाव होने लगते, जिसके कारण चित्र बिगड जाता।

अलकार—वक्रोक्ति, विशेषोक्ति, वीप्सा और अनुप्रास।

प्रसग—नायिका के रूपाधिक्य का वर्णन करते हुए नायक कह रहा है—

सोरठा—लो तन अवधि अनूप, रूप लग्यो सब जगत को।
मो दृग लागे रूप, दृगन लगी अति चटपटी ॥११३॥

अनूप=अनुपम। अवधि=सीमा। चटपटी=चाह, ललक।

अर्थ—हे सुन्दरी, तेरे शरीर की सीमा मे सारे ससार का अनुपम रूप लगा है। अर्थात् ससार का सारा रूप तेरे शरीर मे समा गया है (या विधाता ने तेरे शरीर के निर्माण मे ससार का सारा रूप लगा दिया है)। मेरे नेत्र तेरे रूप पर आ लगे है और मेरी आँखो को बहुत ललक लगी हुई है, अर्थात् मेरे नेत्र तेरे रूप को देखने के लिए निरन्तर लालायित रहते हैं।

अलकार—माला दीपक।

प्रसग—नायिका के रूप के सम्बन्ध में कवि कह रहा है—

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाय।
सगुन सलोने रूप की, जु न चखतृषा बुझाय ॥११४॥

अघाय=जी भर कर। सलोने=१ सुन्दर, २ नमकीन। चखतृषा=आँखो की प्यास।

अर्थ—नेत्र ज्यो-ज्यो उस नायिका के रूप को जी भर कर पीते है अर्थात् देखते हैं, त्यो-त्यो वे प्यासे ही रहते है। गुणयुक्त सलोने रूप को देख कर मानो आँखो की प्यास बुझती ही नही।

सलोना अर्थात् खारा पानी पीने से प्यास नही बुझती। इसी प्रकार सलोना अर्थात् सुन्दर रूप देखने से आँखो की प्यास भी नही बुझती। खारा पानी गुणकारी माना जाता है।

अलकार—श्लेष और वक्रोक्ति।

प्रसग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

तिय तिथि, तरुन किसोर वय, पुण्य काल सम दौन।
काहू पुन्यनि पाइयत बैस सन्धि सक्रोन ॥११५॥

तिय=स्त्री। तरुन=जवान। वय=अवस्था। बैस सन्धि—वय सन्धि, बचपन और जवानी के मिलने का समय। सक्रोन=सक्रान्ति।

अर्थ—स्त्री तिथि के समान है। जैसे एक तिथि मे दो राशियो की सक्रान्ति बडे भाग्य से ही पडती है, उसी प्रकार स्त्री मे किशोरावस्था और तरुण

अवस्था की वय सधि भी बडे भाग्य से प्राप्त होती है। इसलिए इस पुण्य काल का लाभ अवश्य उठाना चाहिए।

भाव यह है कि जैसे सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि से मे जाने का समय सक्रान्ति वडा शुभ माना जाता है और लोग उस अवसर पर तीर्थ-स्नान आदि करते है, उसी प्रकार स्त्री रूपी तिथि मे बाल्यावस्था से युवावस्था मे प्रवेश करने का समय भी वडा शुभ और पवित्र है। यह अवसर वडे पुण्यो के प्रभाव से ही प्राप्त होता है।

अलकार—साग रूपक।

प्रसंग सखी नायिका के सम्बन्ध में नायक से कह रही है—

सनि कज्जल, चख, झख लगन, उपज्यो सुदिन सनेह।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवे, लहि सुदेश सब देह ॥११६॥

सनि=शनि ग्रह। चख=नेत्र। झख=मीन राशि। सुदेश=अच्छा देश या सुन्दर।

अर्थ—उस नायिका के नेत्रो मे लगा कज्जल मानो शनि ग्रह है। नायिका के नेत्र मानो मीन राशि है। इस शुभ मुहूर्त मे उत्पन्न हुआ स्नेह राजा वन कर सारे देह रूपी सुन्दर देश पर राज्य क्यो न करे ?

नायिका ने आँखो मे काजल डाला, मानो शनि मीन राशि मे आ गया है। ज्योतिष के अनुसार मीन राशि मे स्थित शनैश्चर के होने पर जन्म लेने वाला वालक राजा वनता है। इस दशा मे उत्पन्न हुए स्नेह का राज्य सारे देह रूपी देश पर होना ही चाहिये।

अलंकार—रूपक।

नायक और नायिका का प्रणयारम्भ

प्रसग—एक सखी कृष्ण की शोभा का वर्णन कर रही है।

अधर धरत हरि के परत ओठ, दीठि, पट, जोति।
हरित बास की बासुरी इन्द्र धनुष सी होति ॥११७॥

अधर=होठ। दीठि=दृष्टि। पट=वस्त्र। जोति=ज्योति, चमक।

अर्थ—जब कृष्ण बाँसुरी को होठों पर रखते है, तब उस पर ओठों की, आँखों की और पीले वस्त्र की चमक पड़ती है। इसके कारण यह हरे बाँस की बाँसुरी इन्द्र धनुष की तरह रग बिरगी हो उठती है।

ओठो का रग लाल है, आँखों का रग सफेद और काला है, वस्त्र का रग पीला है। इन सबके प्रभाव से हरे रग वाली बाँसुरी का रग-बिरगा हो उठना स्वाभाविक है।

अलकार=तद्गुण।

प्रसग—कवि रास लीला का वर्णन कर रहा है—

> **गोपिन सग निशि सरद की रमत रसिक रसरास।**
> **लहाछेह अति गतिन की सबनि लखे सब पास॥११८॥**

सरद=शरद ऋतु। रमत=खेल करते है। रसिक=रस लेने वाले कृष्ण। रसरास=रास के आनन्द मे। लहाछेह=नृत्य की एक गति।

अर्थ—रसिक कृष्ण शरद ऋतु की रात मे गोपियो के साथ आनन्द के साथ रास नृत्य कर रहे है। कृष्ण नृत्य मे बडी तेजी से 'लहाछेह' नामक गति मे घूमते है। यह गति इतनी तीव्र है कि उसके कारण सब गोपियो को कृष्ण अपने पास दिखाई पडते है।

अलकार—विशेष और अनुप्रास।

प्रसंग—कृष्ण ग्वाले बन कर सवेरे-सवेरे गौओं को चराने के लिए ले चले। राधा ने भी अपनी गाय उन गौओ के साथ चरने के लिए मिलानी चाही। उस समय के दृश्य का वर्णन एक सखी दूसरी सखी के सम्मुख कर रही है—

> उन हरकी हसिकै इते, इन सौंपी मुसकाय।
> नैन मिलत मन मिलि गये, दोऊ मिलिवत गाय॥११९॥

हरकी=हटाया, रोका। मिलिवत=मिलाते हुए।

अर्थ—उन्होने अर्थात् कृष्ण ने हस कर राधा की गाय को झुड मे मिलने से रोका। आशय यह था कि इस गाय को हमारे झुड मे मत मिलाओ। इस पर इन्होने अर्थात् राधा ने मुसकरा कर गाय उन्हें सौपी। आशय यह था

कि गाय को ले जाओ। इस की चराई हम देगे। इस प्रकार उस गाय को झुड मे मिलाते मिलाते ही दोनो के नयन मिले और उसके साथ ही दोनो के मन भी मिल गये।

इस दोहे मे बिहारी ने अत्यन्त सक्षेप मे एक बहुत ही मनोरम चित्र अकित कर दिया है।

अलकार—अतिशयोक्ति और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से राधा और कृष्ण के विषय मे कह रही है—

मिलि परछाहीं जोन्ह सो रहे दुहुन के गात।
हरि राधा इक सग ही चले गली में जात॥१२०॥

परिछाही=छाया। जोन्ह=चाँदनी दुहुन=दोनो।

अर्थ=चाँदनी रात मे राधा और कृष्ण साथ मिल कर गली मे चले जा रहे थे। उन दोनो के शरीर चाँदनी और परछाई मे इस तरह मिल गये थे कि अलग-अलग दिखाई ही नही पडते थे। राधा का शरीर चाँदनी के समान और कृष्ण का शरीर अन्धकार के समान था।

अलंकार—मीलित।

प्रसंग—नायिका ने वन मे नायक श्रीकृष्ण के साथ विहार किया। वहाँ से लौटने मे उसे विलम्ब हो गया। लौटने पर वह अपने विलम्ब की सफाई देते हुए अपनी सखियो से कहती है—

लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छांह।
चटक भर्‌यो नट मिलि गयो, अटक भटक वन माह॥१२१॥

लटकि लटकि=झूम झूम कर। डटत=शोभा देता हुआ। चटक=चमक। अटक भटक वन=व्रज का एक घना वन।

अर्थ—मैं आज 'अटक भटक' वन मे रास्ता भूल गई। वहाँ पर मुझे झूम-झूम कर चलता हुआ और अपने मुकुट की छाया मे शोभा देता हुआ एक बडा चटकीला नट मिल गया, जो मुझे वन से बाहर निकाल लाया।

अलकार—अनुप्रास और स्वभावोक्ति।

प्रसग—कर्मकाडी भक्तो को प्रेम भक्ति का मार्ग दिखाते हुए कवि की उक्ति है।

तजि तीरथ हरि-राधिका-तनु-दुति करि अनुराग।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ॥१२२॥

तनु-दुति=शरीर सौन्दर्य। केलि=प्रेम लीला। मग=मार्ग।

अर्थ –तीर्थ यात्रा को छोड कर राधा और कृष्ण की रूप छटा से प्रेम करो। ब्रज भूमि मे जिनकी प्रेम लीला के निकुंजो के मार्ग मे पग पग पर प्रयाग बने हुए है, अर्थात् जहाँ राधा-कृष्ण ने ब्रज मडल मे प्रेम लीलाएँ की थी, वहाँ की भूमि का प्रत्येक खड प्रयाग के समान पवित्र है।

प्रयाग मे गगा, यमुना और सरस्वती का सगम होने के कारण उसे बहुत पवित्र माना जाता है।

अलकार—तद्गुण, काव्यलिंग।

प्रसग—गोपियाँ कृष्ण के चले जाने पर बीती बातो का स्मरण कर रही है—

सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ॥१२३॥

अजौं=आज भी। वहै=वही। सुखद=सुख देने वाली।

अर्थ—मेरे मन मे यह बात आती है कि आज भी यमुना के किनारे वैसे ही घने पेडो के कुंज होगे, वैसी ही सुख देने वाली छाया होगी और वैसा ही शीतल और मन्द पवन अब भी बहता होगा, जैसा तब बहा करता था, जब हमने वहाँ कृष्ण के साथ विहार किया था।

अलंकार—स्मरण।

प्रसग—एक सखी नायिका से कह रही है—

नाचि अचानक ही उठे बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नन्दित करी यह दिसि नदकिसोर ॥१२४॥

पावस=वर्षा ऋतु। नन्दित करी=प्रसन्न की है।

अर्थ—उस दिशा मे वर्षा काल के बिना ही वन के मोर अचानक ही नाच उठे है, इससे मुझे लगता है कि उस दिशा को नन्दकिशोर अर्थात् कृष्ण

ने प्रसन्न किया है, अर्थात् कृष्ण वहाँ जा पहुँचे है।

इन दोहे मे व्यंजना यह है कि मोरो ने घनश्याम कृष्ण को देखकर उन्हे बादल समझ लिया और आनन्दित होकर नाचने लगे। उनके नाचने से सखी ने उस दिशा मे कृष्ण के होने का अनुमान कर लिया। अलकार की दृष्टि से यह दोहा भले ही अच्छा कहा जा सके, परन्तु अनुभूति की दृष्टि से यह निम्नकोटि का है। कृष्ण को बादल समझना शायद मोरो के लिए भी कठिन हो। 'नाचि' की जगह 'बोलि' होता, तब भी सखी का अनुमान सगत हो सकता था।

अलकार—भ्रान्ति और अनुमान।

प्रसंग—कवि कृष्ण का वर्णन कर रहा है—

प्रलय करन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हर्‌यो हरषि गिरधर गिरधर हाथ ॥१२५॥

प्रलय करन=प्रलय करने वाले या प्रलयकारी। जुरि=मिलकर। गिरधर=कृष्ण, गिरधर का दूसरा अर्थ है—गिरि को धारण करके।

अर्थ—प्रलयकारी बादल एक साथ मिलकर मूसलाधार रूप मे बरसने लगे। उस समय कृष्ण ने हाथ पर पर्वत को धारण करके देवताओ के राजा इन्द्र का गर्व हसते-हसते दूर कर दिया।

अलकार—गिरधर और गिर धर मे यमक अलकार है।

इस दोहे का सम्बन्ध अगले दोहे से भी है।

प्रसग—यह ऊपर के दोहे के साथ सम्बन्धित है। एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

डिगत पानि, डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल।
कम्प किसोरी दरस तें खरे लजाने लाल ॥१२६॥

डिगत=विचलित होता हुआ। डिगुलात=डगमगाता हुआ। बेहाल=व्याकुल। कम्प=कम्पन। दरस—दर्शन। खरे=खडे हुए, या बहुत अधिक। लाल=कृष्ण। पानि=हाथ।

अर्थ—कृष्ण गोवर्धन पर्वत को अपनी अँगुली पर उठाये खडे थे। उस समय किशोरी राधा उनके पास आई। राधा को देखकर प्रेम के कारण कृष्ण

के शरीर मे कम्प हुआ। इससे उनका हाथ हिलने लगा और हाथ हिलाने के साथ-साथ पहाड भी डगमगा उठा। पहाड को डगमगाते देखकर ब्रजवासी व्याकुल हो उठे। हाथ काँपने का कारण राधा का दर्शन है, यह बात लोगो को पता चल जायेगी, यह सोचकर कृष्ण लज्जित खडे रह गये (या बहुत लज्जित हुए।)

अलकार—अनुप्रास।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गौ, गोपी, गोपाल ॥१२७॥

लोपे=लुप्त हो जाने पर, भावार्थ है पूजा बन्द कर दिये जाने पर। कोपे=कुपित। लौं=तक। रोपे=शुरू करने पर। राखे=रक्षा की।

अर्थ—वह कृष्ण इतने पराक्रमी है कि जब पूजा बन्द कर दिये जाने पर कुपित होकर इन्द्र ने असमय मे प्रलय शुरू कर दी थी, तब गिरि धारण करने वाले कृष्ण ने सब गौओ, गोपियो और ग्वालो की रक्षा की थी।

अलकार—वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—कृष्ण किसी गोपी को रास्ते मे रोक कर उससे दूध माँगने के बहाने छेडखानी कर रहे है। इस पर वह गोपी कह रही है।

लाज गहौ, बेकाज कत घेरि रहे, घर जाँहि।
गोरस चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाँहि ॥१२८॥

लाज गहौ=शर्म करो। बेकाज=व्यर्थ। कत=क्यो। गोरस=दूध या दही, दूसरा अर्थ है इन्द्रियो का सुख।

अर्थ—कुछ शर्म करो। यहाँ व्यर्थ मुझे क्यो घेर रहे हो ? मै घर जा रही हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम इन्द्रियो का सुख चाहते हो, दूध-दही नही चाहते।

इस दोहे का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि तुम दूध-दही तो चाहते हो, परन्तु इन्द्रियो का सुख, जो कही अधिक अच्छी वस्तु है, नही चाहते। यह अर्थ इस बात पर निर्भर करता है कि इसे कहने वाली नायिका किस प्रकार

की है। यदि नायिका मुग्धा है, तो पहला अर्थ ठीक होगा और यदि नायिका प्रगल्भा है, तो दूसरा अर्थ ठीक होगा।

अलंकार—यमक।

प्रसग—सखी नायिका से कह रही है—

तो पर वारो उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान ॥१२६॥

वारो=निछावर कर दूँ। सुजान=चतुर। उरवसी=१ अप्सरा का नाम, २ हृदय मे वसी, ३ छाती पर पहनने का एक आभूषण।

अर्थ—हे सुजान अर्थात् चतुर राधिका तुझ पर मैं उर्वशी जैसी सुन्दर अप्सरा को भी निछावर कर दूँ, क्योकि तू छाती पर पहनने के आभूषण उर-वसी के समान मोहन अर्थात् कृष्ण के मन मे वसी हुई है।

अलकार—यमक।

प्रसग—नायिका की सखी उसकी प्रशसा करते हुए कह रही है—

तू मोहन मन गडि रही, गाढ़ि गढ़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल लौं, सौतिन के उर सालि ॥१३०॥

गाढि गडनि=सुन्दर गढन के कारण। गुवालि=ग्वालिन। नटसाल=गासी, तीर का वह अगला भाग जो टूट कर शरीर के अन्दर गडा रह जाता है। सालि=पीडा।

अर्थ—हे ग्वालिन, अपनी सुन्दर गढन के कारण तू मोहन के मन मे ऐसी गहरी गडी है अर्थात् मोहन तुझ पर इतने मुग्ध है कि उसके कारण सौतो के हृदय मे सदा नटसाल अर्थात् गासी की सी पीडा उठती रहती है।

ग्वालिन गडी तो है कृष्ण के हृदय मे, और उसकी पीडा उठती है सौतो के हृदय मे।

अलकार—उपमा और असगति।

प्रसंग—नायिका ने आँखो मे काजल डाला है। उसे देखकर उसकी सखी परिहास करते हुए कहती है।

लखि लोयन लोयननि को, को इन होइ न आज।
कौन गरीब निवाजिबो, कित तूठ्यो रतिराज ॥१३१॥

लोयन=लावण्य। लोयननि=आखो का। निवाजिबौ=कृतार्थ करना है, कृपान्वित करना है। तूठ्यौ=प्रसन्न हुआ है। रतिराज=कामदेव।

अर्थ—इन लावण्यमय नेत्रो को देखकर कौन इनका न हो जायेगा ? अर्थात् कौन इनके वश मे न हो जायेगा ? आज किस दीन पर कृपा होने वाली है कामदेव किस पर प्रसन्न हुआ है ?

अलकार—पर्यायोक्ति।

नायिका के कटाक्ष

प्रसग—सखी नायिका से कह रही है—

फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नेकु रहेन।
ये कजरारे कौन पे करत कजाकी नैन ॥१३२॥

निचले=निश्चल, शान्त। कजरारे=काजल से अंजित। कजा की=अत्याचार।

अर्थ—तेरे यह नयन जरा देर भी शान्त नही रहते। बार-बार इधर-उधर दौडते दिखाई पडते है। ये काजल लगे हुये नयन किस पर अत्याचार कर रहे है ?

अलकार—वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायिका की सखी दूसरी सखी से कह रही है—

गरि भीरहू भेदी कै कितहू ह्वै उत जाय।
फिरे डीठि जुरि डीठि सो सबकी डीठि बचाय ॥१३३॥

गरि=बडी या भारी। भीरहू=भीड को। कितहू=जैसे-तैसे। उत=उधर। डीठि=दृष्टि। फिरै=वापस लौटती है। जुरि=मिलकर।

अर्थ—इस नायिका कि दृष्टि इतनी बडी भीड को पार करके जैसे-तैसे उस नायक तक पहुँच कर और सबकी दृष्टि बचाकर उनकी दृष्टि से मिलने मे बाद वापस लौटती है।

भीड मे कही नायक और नायिका एक-दूसरे से दूर खडे है और नायिका सबकी दृष्टि बचाकर नायक को देखती है और तब तक देखती रहती है, जब तक उसकी दृष्टि नायक से नही मिल जाती। दोनो की दृष्टि आपस मे मिलती है, परन्तु और लोग इस बात को नही देख पाते।

अलंकार—विभावना।

प्रसंग—अन्य लोगो की उपस्थिति मे नायक और नायिका आँखो ही आँखो मे कुछ सकेत कर रहे है। उसे देखकर सखी अपनी दूसरी सखी से कहती है—

फूले फुदकत ले फरी, पल कटाच्छ करवार।
करत बचावत बिय नयन, पायक घाय हजार ॥१३४॥

फुदकत=उछलते है। फरी=ढाल। पल=फलक। करवार=तलवार। बिय=दो। पायक=पदाति, पैदल। घाय=घाव।

अर्थ—नायक और नायिका दोनो के नेत्र रूपी पैदल सैनिक पलक रूपी ढाल और कटाक्ष रूपी तलवार लिये हुए आनन्दित होकर पैतरे बदलते है और हजारो चोटें करते है और बचाते है।

अलंकार—रूपक और कारक दीपक।

प्रसंग—लोग नायक और नायिका के आपस के प्रेम को ताड गये है और आपस मे उसकी चर्चा करते है। इतने पर भी एक दूसरे के सम्मुख आने पर दोनो से मुस्कराये बिना नही रहा जाता। इसी सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है।

जदपि चवायनि चीकनी, चलति चहूँ दिस सैन।
तऊ न छाड़त दुहुन के, हसी रसीले नैन ॥१३५॥

जदपि=यद्यपि। चवायनि=लोकनिन्दा। चीकनी=सरस। सैन=इशारे।

अर्थ—यद्यपि सब ओर लोक निन्दा के कारण तरह-तरह के इशारे हो रहे है फिर भी अवसर मिलने पर दोनो के रसीले नेत्र हसी को छोडते नही-अर्थात् बिना मुस्कराये नही रहते।

अलकार—विशेषोक्ति।

प्रसग—नायिका की सखियाँ आपस मे बाते कर रही है—

सबही तन समुहाति छिन चलति सबनि दै पीठि।
वाही तन ठहराति यह किबलनुमा लौं दीठि ॥१३६॥

तन = ओर, तरफ। समुहाति = सम्मुख होती है, सामना करती है। किबलनुमा = दिशा दिखलाने वाला यन्त्र, कम्पास, दिग्दर्शक यन्त्र।

अर्थ—इस नायिका की दृष्टि क्षण भर के लिए सबकी ओर जाती है। परन्तु वह उन सबकी ओर से तुरन्त वापस लौट पडती है। अन्त मे दिशा दिखलाने वाले यन्त्र की भाँति इसकी दृष्टि केवल नायक पर ही जाकर टिकती है।

जैसे दिग्दर्शक यन्त्र की सुई एक ही दिशा मे जाकर स्थिर होती है, वैसे ही इस नायिका की दृष्टि केवल नायक पर ही जाकर स्थिर होती है।

अलकार—उपमा।

प्रसग—नायिका की सखियाँ आपस मे बातें कर रही है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नयनन ही सो बात ॥१३७॥

नटत = इन्कार करते है। रीझत = मुग्ध होते हैं। खिझत = चिढते हैं। खिलत = प्रसन्न होते है। भौन = भवन।

अर्थ—आँखो के सकेत से ही नायक कुछ कहता है। प्रत्युत्तर मे आँखों के सकेत से नायिका निषेध करती है। इस पर नायक मुग्ध हो उठता है, जिसे देखकर नायिका अपनी खीझ प्रकट करती है। आँखो ही आँखो मे दोनो आपस मे मिलते हैं, प्रफुल्लित होते है और अन्त मे लजा जाते है। इस प्रकार नायक और नायिका दोनो लोगो से भरे भवन मे आँखो ही आँखो मे सारी बाते कर लेते हैं।

अलकार—दीपक।

प्रसग—नायिका की सखियाँ आपस मे बातें करती है—

सब अग करि राखी सुघर, नायक नेह सिखाय।
रस युत लेलि अनन्त गति, पुतरि पातुर राय ॥१३८॥

नव अग = नवांग मे। पुतरी = पुतली, आँखो की पुतली। पातुर राय = नर्तकियों की शिरोमणि।

अर्थ—प्रेम रूपी नायक ने शिक्षा पढा कर इसकी आँख की पुतली को

सर्वांगीण रूप से चतुर बना दिया है। इसलिए उसकी नर्तकी शिरोमणि जैसी पुतली अनन्त रसीली गतियाँ ले रही है।

यहाँ नायिका नायक की प्रतीक्षा मे अधीर है और बार-बार उसका रास्ता देखती है। इस कारण उसकी आँखो की पुतलियाँ चचल हो रही है। जैसे कुशल नर्तकी कभी इधर जाती है और कभी उधर, उसी प्रकार इसकी आँख की पुतलियाँ तेजी से अनगिनत गतियाँ कर रही है। अर्थात् वे कभी इधर देखती हैं और कभी उधर।

अलंकार—रूपक।

प्रसग—नायिका के विषय में एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

> कंजनयनि मंजन किये, बैठो ब्यौरति बार।
> कच अगुरिन बिच डीठि दै, निरखति नन्दकुमार ॥१३९॥

कजनयनि=कमल के समान नयनो वाली। मजन=स्नान। ब्यौरति=सवारती है। बार=बाल। डीठि=दृष्टि। चितवति=देखती है।

अर्थ—वह कमल के समान नयनो वाली नायिका स्नान करके बैठी हुई अपने बाल सुलझा रही है और इस बहाने बालो और अगुलियो के बीच मे से दृष्टि डाल कर नन्दकुमार (नायक) को निहार रही है।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

प्रसंग—नायिका के सम्बन्ध मे एक सखी का दूसरी सखी से वचन—

> डीठि बरत बाधी अटनि, चढि धावत, न डरात।
> इत उत तें चित दुहुनि के, नट लौं आवत जात ॥१४०॥

डीठि=दृष्टि। वरत=रस्सी। अटनि=अटारियो पर। नट लौं=नट की तरह।

अर्थ—नायक और नायिका दोनो ने दृष्टि रूपी रस्सी अटारियो के आर-पार बांध रखी है और उस पर चढकर उनके मन नट की तरह दौड़ते हैं और वे गिरने से डरते नही, अर्थात् दुनिया की दृष्टि मे गिर जाने का भय उन्हे नही है।

अलकार—उपमा और रूपक।

प्रसंग—नायक और नायिका के परस्पर दर्शन का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

जुरे दुहुनि के दृग झमकि, रुके न झीने चीर।
हलकी फौज हरौल ज्यों, परत गोल पर भीर ॥१४१॥

जुरे=जुड़ गये, मिल गये। झमकि=तेजी से। झीने=पतले। हरौल=हरावल, फौज का अग्रिम दस्ता। गोल=मुख्य सेना।

अर्थ—नायिका ने नायक को देखकर घूँघट निकाल लिया है, फिर भी उन दोनो के नयन तेजी से जाकर परस्पर मिल गये। वे पतले वस्त्र के रोके न रुके। जिस प्रकार हरावल की सेना यदि थोड़ी हो, तो वह शत्रु सेना को नही रोक पाती और फलस्वरूप सेना के मुख्य भाग पर विपत्ति आ पड़ती है।

अलकार—उपमा और उदाहरण।

प्रसग—पूर्वानुरागिनी नायिका अपनी सखी से कह रही हैं—

लीने हू साहस सहस, कीने जतन हजार।
लोयन लोयनसिंधु तन, पैरि न पावत पार ॥१४२॥

लोयन=लोचन, आँखें। लोयनसिंधु=लावण्य का सागर।

अर्थ—नायिका कहती है कि मैं हजार हिम्मत करती हूँ और हजार यत्न करती हूँ फिर भी मेरी आँखें उस नायक के शरीर की सुन्दरता को तैर कर पार नही कर पाती।

नायिका की आंखें तैराक है और नायक का तन लावण्य का सागर है। लावण्य यहाँ खारेपन और सौन्दर्य दोनो अर्थों को ध्वनित करता है। नायिका यह कहना चाहती है कि वह नायक के सौन्दर्य को जी भर देखने के लिए बहुत यत्न करती है, किन्तु लोकापवाद के भय के कारण वह उसे भली-भाँति देख नही पाती।

अलकार—यमक, रूपक और श्लेप।

प्रसग—नायिका की और नायक की मिलती हुई दृष्टियो को देखकर एक सखी दूसरी सखी से कहती है।

पहुँचत डटि रन सुभट लौं, रोकि सकैं सब नाहिं।
लाखन हू की भीर में, आँखि उतै चलि जाहिं ॥१४३॥

डटि=डटकर, हिम्मत के साथ। सुभट=वीर योद्धा। उतै=वही।

अर्थ—नायिका की आँखें वीर योद्धा की भाँति रण मे हिम्मत के साथ पहुँचती है। सब मिलकर भी उन्हें रोक नही सकते। लाखो की भीड-भाड में भी वे आँखें नायक के पास तक पहुँच ही जाती है।

अलकार—उपमा और विभावना।

प्रसग—नायिका अपने परिवार के लोगो मे बैठी है। नायक सहसा वहाँ आ पहुँचा है। उसका वर्णन इस दोहे मे है—

गडी कुटुम्ब की भीर में, रही बैठी दै पीठि।
तऊ पलक परि जात उत, सलज हँसौं हीं डीठि॥१४४॥

गडी=फसी हुई। हसौही=मुस्कान युक्त।

अर्थ—नायिका यद्यपि अपने कुटुम्बियो की भीड मे घिरी बैठी है और नायक को देखकर उसकी ओर पीठ फेर कर बैठ गई है, फिर भी उसकी लज्जा से भरी हुई मुस्कान युक्त दृष्टि पल भर के लिए इस ओर अर्थात् नायक की ओर पड ही जाती है।

अलकार=स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका के सम्बन्ध मे नायक अपने किसी अन्तरग मित्र से कह रहा है—

भौंह उचै आचरु उलटि, मौर मोरि मुहु मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, डीठि डीठि सो जोरि॥१४५॥

उचै=ऊँची करके। मोरि=सिर। नीठि-नीठि=कठिनाई से, जैसे-तैसे।

अर्थ—नायिका भौंहे उचका कर कुछ सकेत करती हुई, आँचल को उलटा करके सिर घुमा कर और मुह मोडकर आँखो से आँखें मिलाकर जैसे-तैसे कठिनाई से घर के भीतर चली गई।

भौह उचकाने का प्रयोजन सकेत करना है। आँचल उलटना विलास का सूचक है। दृष्टि से दृष्टि मिलाना लालसा का द्योतक है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायक ने नायिका को देखा है और अब वह आँखो से ओझल हो

गई है। वह इस आशा मे खडा है कि नायिका फिर बाहर आये, तो उसके दर्शन हो जायें—

ऐंचत सी चितवनि चितै, भई ओट अलसाय।
फिरि उझकनि को मृगनयनि, दृगन लगनिया लाय ॥१४६॥

ऐंचत सी=खीचती हुई सी। चितै=चित्त को। उझकनि को=उचकने के लिए। लगनिया=लगन या धुन। लाय=लगाकर।

अर्थ—चित्त को खीचती हुई सी अपनी दृष्टि से मुझे देखकर आलस्य के साथ वह मृग-लोचनी मेरी आँखो से ओझल हो गई और मेरे नेत्रो को यह लगन लगा गई कि वे वार-वार उचक-उचक कर उसे देखने के लिए अधीर होते रहें।

अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायक को रास्ते पर देखकर नायिका उसे देखने के लिए अपने झरोखे पर आई। नायक को देखने के बाद सकोचवश या लोकापवाद के भय से वह एकाएक झमक कर पीछे हट गई। इसी के सम्बन्ध मे नायक अपने किसी अन्तरग मित्र से कह रहा है—

सटपटाति सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि ॥१४७॥

सटपटाति सी=लज्जा या लोकापवाद के भय से घबराई सी हुई। झर—लपट।

अर्थ—वह चन्द्रमुखी डरी हुई सी अपने मुख को घूँघट से ढक कर आग की लपट के समान झमक कर झरोखे मे से झाँक कर वापस लौट गई।

अलकार—उपमा।

प्रसग—नायक नायिका के नेत्रो का स्मरण करके स्वय ही कह रहा है—

लागत कुटिल कटाच्छ सर, क्यों न होंहि बेहाल।
कढत जु हियो दुसार करि, तऊ रहत नटसाल ॥ १४८ ॥

कुटिल=टेढा। कटाच्छ=कटाक्ष, चितवन, दृष्टि। बेहाल=बेचैन। कढत=निकल जाता है। दुसार करि=पार होकर। नटसाल=तीर का टूटा हुआ हिस्सा।

अर्थ—उस नायिका के तिरछे कटाक्ष रूपी बाणो के लगने से हृदय बेचैन

क्यो न हो जाये ? क्योकि ये कटाक्ष ऐसे है कि चाहे ये हृदय को चीर कर पार क्यो न हो जाये, फिर भी उनकी गाँसी हृदय मे अटकी ही रह जाती है, अर्थात् गासी के कारण उत्पन्न होने वाली पीडा जैसी वेदना हृदय मे बनी रहती है।

अलंकार—विभावना।

प्रसंग—नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

नैन तुरंगम अलक छवि, छरी लगी जिहि आय।
तिहि चढ़ि मन चंचल भयो, मति दीनी बिसराय ॥१४६॥

अलक=बालो की लट। जिहि=जिसको। तुरगम=घोडे।

अर्थ—नयन मानो घोडे है, जिन्हे गालो के ऊपर लटक आने वाली अलक की सुन्दरता रूपी छडी आ लगी है। उन नयन रूपी घोड़ो पर चढ कर मेरा मन चचल हो गया है और उसने अपनी सारी सुध-बुध गवा दी है, अर्थात् नायिका के सुन्दर नयनो और कपोलो पर पडी लट को देख कर नायक का चित्त बेकाबू हो उठा है।

अलकार—साग रूपक।

प्रसग—नायिका पहले तो दृष्टि नीची किये बैठी रही, फिर एकाएक उसने आँख उठा कर नायक को देखा। उसका जो परिणाम हुआ उसका वर्णन नायक नायिका की सखी से करता है—

नीची पै नीची निपट, डीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊँचे नीचे दियो, मन कुलंग झकझोरि ॥१५०॥

निपट=बिलकुल। कुही=बाज। लौं=तरह। कुलग=कलविंक या गौरैया नामक छोटी सी चिडिया।

अर्थ—नायिका की दृष्टि ने, जो कि बिलकुल नीची ही नीची बनी रही, एकाएक कुही अर्थात् बाज की तरह झपट कर एकाएक ऊपर उठ कर मेरे मन रूपी कुलग को झकझोर कर नीचे गिरा दिया।

कुही अर्थात् बाज की यह विशेषता है कि वह पहले तो नीचाई पर उडता है और जब अपने शिकार के लिए किसी पक्षी को देखता है, तो सहसा तीर की तरह ऊपर उठता है और फिर ऊपर से झपट्टा मार कर उस पक्षी को

दबोच लेता है। यहाँ नायिका की दृष्टि को बाज और नायक के मन को कुलग बताया गया है।

अलकार—उपमा।

प्रसग—नायक अवसर पाकर नायिका से कह रहा है—

तिय कित कमनैती पढी, विनु जिह भौंह कमान।
चल चित बेंझो चुकति नहिं, बक विलोकनि बान ॥१५१॥

तिय=स्त्री। कमनैती=धनुर्विद्या। जिह=प्रत्यचा, डोरी। चल=चचल। बेंझो=वेध। वक विलोकनि=तिरछी दृष्टि।

अर्थ—हे सुन्दर स्त्री ! तूने ऐसी अद्भुत धनुर्विद्या कहाँ से सीखी है कि विना डोरी की भौह रूपी कमान पर चढा कर तू चितवन के तिरछे वाण चलाती है और फिर भी वे वाण चचल चित्त रूपी लक्ष्य को वेधने मे कभी चूकते नही।

यहाँ इस धनुर्विद्या की अद्भुतता यह है कि भौंहो की कमान विना डोरी की है। साधारणतया विना डोरी की कमान से तीर छोडा ही नही जा सकता। दूसरी बात यह है कि वाण सीधा होना चाहिए, तभी वह जा कर निशाने पर लगता है, परन्तु नायिका को चितवन के वाण भी टेढे हैं, इसलिए उनका लक्ष्य पा जाकर लगना आश्चर्यजनक है। तीसरी वात यह है कि लक्ष्य स्थिर या अचल हो, तो उसका निशाना आसानी से लगाया जा सकता है, परन्तु यहाँ तो लक्ष्य नायक का मन है, जो की अत्यन्त चलायमान है। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियो मे लक्ष्य को वेध देना अद्भुत काम ही है।

अलंकार—विभावना।

प्रसग—नायक और नायिका दूर खडे हुए परस्पर देख रहे है और आँखो की आँखों मे इस प्रकार बात कर रहे है कि मानो वे बिल्कुल पास खडे हो। उन्हे देखकर कोई सखी अपनी सखी से कह रही है—

दूरै खरे समीप को, मानि लेत मन मोद।
होत दुहुन के दृगन ही बतरस, हसी, विनोद ॥१५२॥

खरे=खडे हुए। वतरस=वातचीत का आनन्द।

अर्थ—देखो, वे नायक और नायिका यद्यपि दूर खडे है, फिर भी वे मन ही मन समीपता का आनन्द ले रहे है , क्योकि वे दोनो आँखो ही आँखो मे बाते कर लेते है और हसी मजाक कर लेते हैं ।

अलकार—विभावना और काव्यलिग ।

प्रसग—नायिका अपने मैके मे है । नायक वहाँ आया है । नायिका नायक को देखने को अधीर है, परन्तु सकोच के कारण देख नही पाती । अभिलाषा के कारण आखे ऊपर उठती है और सकोच के कारण नीचे झुक जाती है । इस बेचैनी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

छुटै न लाज न लालचौ, प्यौ लखि नैहर गेह ।
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच सनेह ॥१५३॥

प्यौ=प्रियतम । नैहर=पीहर, मायका । सटपटात=छटपटाते हैं । खरे=अत्यधिक ।

अर्थ—मायके मे आये हुए प्रियतम को देखने के लिए उत्सुक नायिका के सकोच और प्रेम से भरे नयन छटपटा रहे हैं । क्योकि न तो लज्जा ही छोडते बनती है और न मिलने का लालच ही त्यागते बनता है ।

अलकार—पर्याय ।

प्रसग—नायिका नायक को देखने के लिए उत्सुक है । परन्तु लज्जा के कारण आँखे उठा कर उसे भली भाँति देख नहीं सकती । उसके नेत्र बार-बार कभी ऊपर उठते हैं और फिर झुक कर नीचे हो जाते हैं । इसी दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है ।

करे चाह सो चुटुकि कै खरे उडौहै मैन ।
लाज नवाये तरफरत, करत खुदी सी नैन ॥१५४॥

चाह=इच्छा । चुटुकि कै=चुटकी से डरा कर । उडौहै=उडने वाले । मैन=मदन, कामदेव । तरफरत=छटपटाते है । खुदी सी करत=खुदी सी कर रहे हैं । खुदी=घोडे की उस चाल को कहते है, जिसमे घोडा आगे चलना चाहता है परन्तु लगाम कसी रहने के कारण आगे नही चल पाता और एक ही स्थान पर चलने की कोशिश मे पैर पटकता रहता है ।

अर्थ—कामदेव ने लालसा की चुटकी देकर नायिका के नयन रूपी घोडो

को खूब उडना सिखा दिया है। परन्तु लज्जा की लगाम के द्वारा रोके जाने के कारण वे छटपटाते हुए खुदी सी कर रहे है।

चुटकी हाथ से बजाई गई चुटकी को भी कहते है, जिसके इशारे पर घोडा तेजी से दौड पडता है। परन्तु लाला भगवानदीन ने चुटकी का अर्थ वह लम्बा चाबुक बताया है, जिसका प्रयोग घोडे को सधाते समय उसे डराने के लिए किया जाता है। घोडे के गले मे एक लम्बी रस्सी डाल दी जाती है। एक आदमी बीच मे उसे पकड कर खडा हो जाता है और दूसरा आदमी उस लम्बे चाबुक को बार-बार हवा मे फटकारता है, जिससे डर कर घोडा तेजी से एक चक्कर मे घूमने लगता है। इस प्रकार घोडे को उडना अर्थात् तेजी से दौडना सिखाया जाता है। सधे हुए घोडो को जब घुडसवार दौडने नहीं देना चाहते, तो वे लगाम को खीच कर रखते है, जिसके कारण दौडने के लिए बेचैन घोडा भी विवश होकर खुदी करने लगता है। यहाँ बिहारी ने नयनो को घोडा और छटपट को खुँदी बतलाया है।

अलकार—सागरूपक।

प्रसग—नायिका झरोखे मे से नायक पर एक तिरछी नजर डाल कर हट गई। उसके फिर दर्शन के लिए व्याकुल नायक अपने किसी मित्र से कह रहा है—

नावक सर से लाय कै, तिलक तरुनि इत ताकि।
पावक झर सी झमकि कै, गई झरोखे झाकि ॥१५५॥

नावक सर=नावक के तीर। नावक नली को कहते है। रत्नाकर जी ने लिखा है कि ये एक विशेष प्रकार के तीर होते थे, जो एक नली मे से बारूद द्वारा चलाये जाते थे। इसलिए इनकी चोट भी अधिक होती थी। इत ताकि=इधर देख कर। पावक झर=अग्नि की ज्वाला। झमकि कै=तेजी से।

अर्थ—वह युवती नायिका नावक के तीर जैसा तिलक लगा कर मेरी ओर देख कर आग की ज्वाला की तरह झमक कर झरोखे मे से इधर झाँक कर चली गई।

नायिका का वह कटाक्ष नायक को नावक के तीर की तरह लगा।

अलकार—उपमा।

प्रसंग—नायिका के नेत्रो की प्रशसा करते हुए सखी कह रही है—

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि और कछु जिहिं वस होत सुजान ॥१५६॥

अनियारे=नुकीले। किती=कितनी। औरै=और ही। सुजान=गुणी।

अर्थ—नुकीले और बड़े-बड़े नयनो के लिहाज से तो क्या कितनी ही तरुणियाँ तुम्हारे समान नही है ? परन्तु तुम्हारी वह चितवन कुछ और ही अर्थात् निराली ही है, जिसके वश मे गुणी नायक हो जाता है। अर्थात् गुणी नायक बडी-बडी आँखो के वशीभूत नही होता, अपितु उस असाधारण चितवन के वशीभूत होता है।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति और काकुवक्रोक्ति।

लक्षिता नायिका

प्रसंग—नायक कबूतर उड़ा रहा है। नायिका प्रकट यह कर रही है कि वह कबूतर को देख रही है, पर वह वस्तुत नायक को देख कर रोमांचित और हर्षित हो रही है। इस पर उसकी सखी उससे पूछते हुए कह रही है—

ऊचे चितै सराहियत, गिरह कबूतर लेत।
दृग झलकत मुलकत वदन, तन पुलकत केहि हेत ॥१५७॥

चितै=देख कर। सराहियत=प्रशसा करती है। गिरह कबूतर लेत=उडान लेते हुए कबूतर की। झलकत=चमकती है। मुलकत=मुस्कराता है। पुलकत=रोमांचित होता है।

अर्थ—अरी, यह क्या बात है कि तू ऊपर की ओर देख कर प्रशसा तो उडान लेते हुए कबूतर की कर रही है, परन्तु तेरी आँखे आनन्द से चमक रही हैं और मुख उल्लास के कारण मुस्कराहट से भरा हुआ है, और तन रोमांचित हो रहा है ? इस सबका कारण क्या है ?

आँखो की चमक, मुख का उल्लास और देह का रोमांच कबूतर को देख कर नही, अपितु कबूतर उडाने वाले को देख कर है।

अलंकार—सूक्ष्म और अनुप्रास।

प्रसग—नायिका नायक की ओर एकटक देख रही है। उससे परिहास करते हुए सखी कहती है—

पल न चलै जकि सी रही, थकि सी रही उपास।
अबही तन रितयो कहा, मन पठयो केहि पास॥१५८॥

पल=पलक। जकि सी रही=स्तम्भित सी हो गई। उपास=सास। रितयो=रिक्त कर दिया। पठयो=भेज दिया।

अर्थ—क्या बात है, तेरी पलकें भी नही झपकती। तू स्तम्भित सी खडी हुई है। तेरी सांस भी थक गई सी प्रतीत होती है, अर्थात् सांस चल नही रही। क्या इतने मे ही सारे शरीर को रीता कर दिया ? तूने अपने मन को किसके पास भेज दिया है ?

मन किसी और के पास भेज दिया गया है, इसलिए तन रीता हो गया है। नायक के दर्शन मात्र से ही मन दे बैठने पर सखी परिहास कर रही है।

अलकार—उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका की सखी उससे कह रही है—

कोटि जतन करिये तऊ, नागरि नेहु दुरै न।
कहे देत चित चीकनो, नई रुखाई नैन॥१५९॥

कोटि=करोड। नागरि=हे नायिका। दुरै न=छिपता नही। चीकनो =स्निग्ध। रुखाई=रूखा।

अर्थ—हे नायिका! सुन; करोड यत्न करने पर भी स्नेह छिपता नही है। तुम्हारे नेत्रो की यह रुखाई अर्थात् रूखापन ही यह बताये दे रहा है कि तुम्हारा मन स्निग्ध हो गया है अर्थात् किसी के प्रति प्रेम से भर गया है।

आंखो की रुखाई चित्त की स्निग्धता को सूचित कर रही है।

अलकार—विभावना।

प्रसग—सखी नायिका से कह रही है—

पूछे क्यो रूसी परति, सगिबगि रही सनेह।
मनमोहन छवि पर कटी, कहै कट्यानी देह॥१६०॥

रूसी परति=नाराज होती है। सगिबगि रही=तर हुई हुई है, सराबोर है। कटी=मुग्ध हो गई है। कट्यानी=कटकित, पुलकित।

अर्थ—तू प्रेम मे डूबी हुई है। फिर पूछने पर तू रुष्ट क्यो होती है ? तू मनमोहन नायक अर्थात् कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई है, इस बात को तेरा कटकित शरीर ही सूचित रहा है।

जब किसी आवेश के कारण रोगटे खडे हो जाते हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे सारे शरीर पर काटे उग आये हो। इसी को साहित्य मे देह का 'कटकित होना' कहा जाता है।

अलकार—अनुमान और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायक ने नायिका के पास कोई माला भिजवाई। उस माला को छू कर ही नायिका को रोमांच सात्विक भाव हो आया। उसे देख कर सखी विनोद मे कहती है—

मैं यह तो ही में लखी, भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसादमाला जु भौ, तन कदम्ब की माल ॥१६१॥

अपूरब=अद्भुत। कदम्ब की माल भौ=कदम्ब की माला बन गया। कदम्ब के फूलो पर पखुरियाँ छोटे-छोटे तिनको की तरह ऊपर को खड़ी रहती है, इसलिए साहित्य मे रोमांचित शरीर की उपमा कदम्ब पुष्प से दी जाती है। तो ही मे=तुझ मे ही अथवा तेरे हृदय मे।

अर्थ—हे बाला, मैंने ऐसी अद्भुत भक्ति तो केवल तुझ मे देखी है कि ठाकुर जी के प्रसाद की माला पाकर तेरा शरीर ही कदम्ब की माला बन गया। अर्थात् भावावेश के कारण तुझे रोमांच हो आया।

वस्तुत प्रसाद की माला से किसी को रोमांच होता नही, इसलिए इससे यह ध्वनित है कि मैं ताड़ गई हूँ कि यह माला प्रसाद की नही, अपितु किसी प्रेमी की भेजी हुई माला है।

अलकार—उपमा और वक्रोक्ति।

प्रसग—नायिका की प्रशसा करते हुए उसकी सखी उससे कह रही है।

बाढत तो उर उरज भरु, भरि तरुनई विकास।
बोझन सौं तिन के हिये, आवत रुंधी उसास ॥१६२॥

उर=छाती। उरज=कुच, उरोज। भरु=भार। तरुनई=यौवन। रुंधी हुई=रुकी सी हुई।

अर्थ—भरपूर यौवन के विकास के कारण उरोजो का बोझ तो तेरी छाती पर बढता है और उसके फलस्वरूप सौत के हृदय मे साँस रुकी हुई सी चलती है।

भाव यह है कि ज्यो-ज्यो तेरा यौवन निखरता है, त्यो-त्यो सौत को दुख होता है। सामान्यता होना तो यह चाहिए कि जिसकी छाती पर बोझ हो, उसी का साँस रुघे। पर यहाँ उरोजो का बोझ नायिका की छाती पर बढता है और साँस सौत की रुकती है।

अलकार—असगति।

प्रसग—सखी नायिका से विनोद मे कह रही है—

वारौं बलि तो दृगनि पै, अलि, खजन, मृग, मीन।
आधी डीठि चितौनि जिन, किये लाल आघीन॥१६३॥

अलि=भ्रमर। मीन=मछली। डीठि=दृष्टि। चितौनि=देखकर।

अर्थ— मैं तेरे इन नयनो पर भ्रमर, खजन, हरिण और मछलियो को निछावर कर दूँ। ये नेत्र ऐसे सुन्दर हैं कि इनसे आधी नजर डाल कर ही तूने लाल अर्थात् नायक को अपने वश मे कर लिया है।

भ्रमर, खजन, हिरणो की आँखें और मीन सुन्दर नेत्रो के उपमान है। यहाँ नायिका के नेत्रो का इन सबसे उत्कर्ष बताया गया है।

अलंकार—तुल्ययोगिता और विभावना। आधी चितवन अर्थात् अपूर्ण कारण से कार्य हो गया।

सखियां और सौतें

प्रसग—सखी नायिका से विनोद करते हुए कह रही है—

नेकु हँसौंहो बानि तजि, लख्यौ परत मुख नीठि।
चौका चमकनि चौंध मे परत चौंधि सो डीठि॥१६४॥

नेकु=जरा। हँसौही=हँसने की। बानि=आदत। तजि—छोड दो।

नीठि=मुश्किल से। चौका=आगे के चार दात। चौंधि सी परत=चुंधियाती सी है। डीठि=दृष्टि।

अर्थ—तुम जरा यह हसते रहने की आदत छोड दो, क्योकि इसके कारण तुम्हारा मुख कठिनाई से दिखाई पडता है। अगले चारो दाँतो की चमक की चौंध ऐसी तेज है कि देखने वाले की दृष्टि चुधिया सी जाती है।

अलकार—काव्यलिग, उत्प्रेक्षा, और व्याजस्तुति।

प्रसग—कवि नव यौवना का वर्णन कर रहा है—

देह दुलहिया की बढे ज्यो ज्यों जोवन जोति।
त्यों त्यो लखि सौतें सबै, बदन मलिन दुति होति ॥१६५॥

दुलहिया=दुलहिन। जीवन जोति=यौवन की कान्ति। बदन=मुख। दुति=चमक।

अर्थ—नई दुलहिन के शरीर में ज्यो-ज्यो यौवन की कान्ति निखरती जाती है, त्यो-त्यो उसे देख कर उसकी सब सौतो की चमक फीकी पडती जाती है।

अलकार—अनुप्रास और उल्लास।

प्रसग—नायिका के सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

निरखि नवोढ़ा नारि तन, छुटत लरिकई लेस।
भौ प्यारो पीतम तियन, मनौ चलत परदेश ॥१६६॥

नवोढा=नव विवाहिता। छुटत=छूटते हुए। लरिकई—बचपन। लेस=थोडा सा। तियन=स्त्रियो को।

अर्थ—नव विवाहिता नायिका के शरीर से बालकपन का बचा खुचा अश भी छूटते देख कर स्त्रियो को अर्थात् नायक की अन्य पत्नियो को प्रियतम इतना प्यारा हो उठा, मानो वह परदेस के लिए प्रस्थान कर रहा हो।

शरीर से बचपन का अश छुटने से अभिप्राय यह है कि नायिका का यौवन उभार पर है। विदेश गमन के लिए उद्यत व्यक्ति बहुत प्रिय लगने लगता है। हम उसके दोषो को भूल जाते है और उनके गुण ही गुण हमारे सम्मुख आते हैं। अब अन्य पत्नियो को ऐसा लगा कि नायक विदेश जा रहा है क्योंकि

इन नवयुवती पत्नी के प्रेम मे पडने के बाद उसके दर्शन अन्य पत्नियों को दुर्लभ हो जायेंगे ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसंग—दूती नायिका के रूप की प्रशंसा करके नायक को रिझाना चाहती है—

> रही लट्टु ह्वै लाल हौं, लखि वह बाल अनूप ।
> कितो मिठास दयौ दई, इतै सलोने रूप ॥१६७॥

लट्टु ह्वै रही=लट्टू हो गई हूँ, मुग्ध हो गई हू । बाल=बाला । दई=विधाता । सलोने=१ सुन्दर २. नमकीन ।

अर्थ—हे लाल, मैं तो उस अद्भुत बाला को देखकर उस पर मुग्ध ही हो गई हूँ । न जाने विधाता ने इतने सलोने रूप मे कितना मिठास भर दिया है ।

सलौने रूप मे मिठास भरना यहाँ श्लेष और विरोधाभास है । नमकीन वस्तु मे मिठास भरना कठिन होता है, परन्तु विधाता ने इस लावण्यमय रूप मे माधुर्य भर दिया है । मैं स्त्री होकर उस पर मुग्ध हो गई हूँ, तो तुम पुरुष होकर उस पर न जाने कितना रीझोगे ! यह अतिशयोक्ति है ।

अलकार—श्लेष, विरोधाभास और अतिशयोक्ति ।

प्रसग—अन्य सौतो ने पर्व के दिन सुन्दर वस्त्राभूषण पहने, परन्तु नायिका ने मैली और मुसी हुई साडी पहनी । इससे सौतो ने यह अनुमान कर लिया कि इसी साडी को पहन कर उसने प्रियतम के साथ विहार किया था और इससे स्पष्ट है कि वही नायक को सबसे अधिक प्रिय है । यह सोच कर उनके मुख मलिन पड गये । इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> तीज परब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर ।
> सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर ॥१६८॥

तीज परब=तीज के त्यौहार पर । सौतिन=सपत्नियो ने । मरगजे=मलिन, मुसा हुआ ।

अर्थ—तीज के पर्व के दिन सब सौतो ने अपने शरीर पर तरह-तरह के

भूषण और वस्त्र सजाये । परन्तु उस नायिका ने अपने उसी अर्थात् जिसे पहन कर उसने प्रिय के साथ विहार किया था, मलिन वस्त्र से सब सौतो के मुख मलिन कर दिये ।

अलकार—असगति और लाटानुप्रास ।

प्रसंग—नायिका की सखी नायिका की प्रशसा करते हुए उसी से कहती है—

दुनहाई सब टोल में, रही जु सौति कहाय।
सु तैं ऐंचि प्यौ आपु त्यो, करी अदोखिल आय ॥१६९॥

दुनकाई=टोना करने वाली। टोल=मुहल्ला। प्यौ=प्रिय। अदोखिल=दोष रहित ।

अर्थ—सारे मुहल्ले मे तेरी सौत टोना करने वाली कहला रही थी। अर्थात् सब लोग उस पर यह दोष लगाते थे कि उसने पति पर टोना करके उसे अपने वश मे कर लिया है। अब तूने अपने प्रियतम को अपनी ओर आकर्षित करके उस सौत को दोष रहित कर दिया ।

भाव यह है कि पहले सौत टोना करने वाली के रूप मे बदनाम थी, अब जब नायिका से विवाह होने के बाद पति नायिका की ओर आकर्षित हो गया, तो सौत का यह कलक मिट गया कि वह टोना करने वाली है।

अलकार—उल्लास और व्याजस्तुति ।

प्रसंग—नायिका की सौत शृ गार कर रही थी, उसे देखकर नायिका चिन्तित हुई कि कही यही नायक के मन को वश मे न कर ले। इस पर उसकी सखी नायिका को समझाते हुए कहती हैं—

पियमन रुचि ह्वैबो कठिन, तनरुचि होत सिगार ।
लाख करौ आँखि न बढ़ैं बढाये बार ॥१७०॥

पियमन=प्रियतम के मन मे। रुचि=प्रेम। ह्वैबो=होना। तनरुचि=शरीर की शोभा। बार=बाल ।

अर्थ—शृ गार से शरीर की शोभा तो अवश्य हो जाती है, परन्तु उससे प्रियतम के मन मे प्रेम हो पाना कठिन है। अगर कोई स्त्री चाहे तो बढाने से उसके बाल तो बढ सकते हैं, परन्तु लाख यत्न करने पर भी देखने वाली की आँख बडी नहीं हो सकती ।

रत्नाकर जी ने इसका अर्थ अगुणग्राहक स्वामी के प्रति गुणी सेवक की उक्ति के रूप मे किया है और बताया है कि सेवक के हजार गुणो से युक्त होने पर भी अगुणग्राहक स्वामी की आँख उसे देखती नही।

अलकार—अर्थान्तरन्यास।

अनुराग की तीव्रता

प्रसग—नायिका नायक की ओर एकटक देख रही है। उसे समझाते हुए उसकी सखी उससे कहती है—

रही अचल स्त्री ह्वै मनो, लिखी चित्र की आहि।
तजे लाज डर लोक को, कहौ बिलोकति काहि॥१७१॥

अचल=स्थिर। चित्र की आहि लिखी=चित्र लिखित सी होकर। बिलोकति=देखती। काहि=किसको।

अर्थ—तू अचल होकर ऐसे खडी है, मानो चित्र लिखित हो। लज्जा और लोकापवाद के भय को त्याग कर तू किसे देख रही है?

भाव यह है कि तू इस तरह एकटक नायक को देख रही है कि न तो तुझे स्वाभाविक लज्जा ही रही है और न इस बात का डर ही रहा है कि लोग क्या कहेंगे।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—पूर्वानुराग मे नायिका की दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

ठाढ़ी मन्दिर पै लखै, मोहन दुति सुकुमारि।
तन थाके हू ना थके, चख, चित चतुरि निहारि॥१७२॥

दुति=शोभा, चमक। चख=नेत्र। मन्दिर=घर।

अर्थ—हे सखी, यह सुकुमारी नायिका अपने घर के ऊपर खडी मोहन अर्थात् नायक के रूप को देख रही है। खडे-खडे उसका शरीर भले ही थक गया है, परन्तु देखते-देखते उसके नेत्र और मन नही थके।

सुकुमारि से यह ध्वनित है कि नायिका बहुत सुकुमार है और देर तक खडे रहने से थक जाती है। फिर भी नायक को देखते हुए उस के नेत्र और मन नही

थकते, इससे नायक का अत्यधिक सौन्दर्य और नायिका का अनुराग व्यंजित होता है।

अलंकार—विशेषोक्ति।

प्रसंग—पूर्वानुराग में नायिका नायक के ध्यान में मग्न बैठी है। उसे देखकर एक सखी दूसरी सखी से कहती है—

कब की ध्यान लगी लखौ, यह घर लगि है काहि।
डरियत भृंगी कीट लौं, जनि वह ई ह्वै जाहि ॥१७३॥

घर लगि है काहि=यह घर-बार किसके सहारे चलेगा। भृंगी कीट=यह एक उड़ने वाला भौंरे से मिलता-जुलता कीट होता है, जो अन्य कीड़ों को पकड़ कर छोटी सी मिट्टी की खोखल बनाकर उसमे बन्द कर देता है और उनके आस-पास इतने जोर से भनभनाता है कि वे कीड़े उसके ध्यान में लीन होकर भृंगी ही बन जाते हैं। इसका वर्णन धार्मिक साहित्य में आता है। जनि=नहीं।

अर्थ—देखो यह कितनी देर से ध्यान में मग्न खड़ी हुई है। अब इस घर की संभाल कौन करेगा? मुझे तो डर है कि यह भृंगी कीट की भाँति कहीं वही अर्थात् नायक ही न बन जाये।

अलंकार—लोकोक्ति, उपमा।

प्रसंग—नायिका की सखी नायिका से कह रही है—

प्रेम अडोल डुलै नहीं, मुख बोलै अनखाय।
चित उनकी मूरति बसी, चितवन माहिं लखाय ॥१७४॥

अडोल=पक्का, स्थिर। अनखाय=क्रुद्ध होकर। लखाय=दिखाई पड़ता है।

अर्थ—तेरा प्रेम अचल अर्थात् स्थिर है। वह विचलित नहीं होता। उनकी चर्चा चलने पर तू रुष्ट होकर बोलती है और इस प्रकार अपने प्रेम को छिपाना चाहती है। उनकी अर्थात् नायक की मूर्ति तेरे मन में बसी है, यह तो तेरी चितवन में से ही दिखाई पड़ता है।

भाव यह है कि तेरी चितवन ही बताती है कि तू उस नायक से प्रेम करने लगी है।

अलकार—अनुमान ।

प्रसग—नायक ने पतग उडाई है । नायिका को उससे इतना अनुराग है कि उस पतग की छाया नायिका के आँगन मे जहाँ जहाँ पडती है, वहीं दौड-दौड कर वह उसे छूती है । इसी बात का वर्णन एक सखी दूसरी सखी मे कर रही है—

गुडी उडी लखि लाल की, अगना अगना माँह ।
बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह ।।१७५।।

गुडी=पतग । अगना=१ स्त्री, २ आँगन । बौरी=बावली, पागल । छबीली=सुन्दर ।

अर्थ—नायक की पतग को उडते हुए देख कर वह नायिका अपने आँगन मे पडने वाली उस पतग की सुन्दर छाया को छूने के लिए बावली की तरह दौडी फिर रही है ।

नायक की पतग की छाया को छूकर भी नायिका को नायक के स्पर्श का सा आनन्द हो रहा है ।

अलकार—यमक, उपमा और अनुप्रास ।

प्रसग—प्रेम मे डुबी हुई नायिका की दशा का वर्णन सखियाँ आपस मे कर रही है—

उर उरझ्यो चितचोर सौं, गुर गुरुजन की लाज ।
चढे हिंडोरे से हिये, किये बनै गृह काज ।।१७६।।

उरझ्यो=उलझा हुआ । चितचोर=नायक । गुरु=बडी । गुरुजन=घर के बडे । हिडोरे=हिंडोला । हिये=हृदय से । गृह काज=घर का काम ।

अर्थ—उसका उर अर्थात् मन तो चित को चुराने वाले नायक से उलझा हुआ है । दूसरी ओर घर के जो बडे लोग हैं, उनका भी बहुत लिहाज रखना पडता है । इस कारण उसका मन मानो हिंडोले पर चढा हुआ है । ऐसे मन से घर का काम-काज किस प्रकार किया जाये ?

मन नायक की ओर है, पर गुरुजनो की लज्जा के कारण कुछ करते नही

वनता । ऐसी अनमनेपन की दशा मे घर का काम-काज ठीक तरह नही हो पाता ।

अलकार—उपमा और यमक ।

प्रसग—नायिका नायक को देखने लिये झरोखे से झाँकती है और सकोचवश फिर छिप जाती है । इसी दशा का वर्णन एक सखी दूसरी से कर रही है—

समरस समर सकोच बस, बिबस न ठिकु ठहराय ।
फिर फिर उझकति फिरि दुरति, दुरिदुरि उझकति जाय ।।१७७।।

समरस=बरावर । समर=कामदेव,स्मर । सकोच=लज्जा । विवस=वेवस । ठिकु=ठीक तरह । उझकति=उचक कर देखती है । दुरति=छिप जाती है ।

अर्थ—काम और सकोच दोनो के वरावर आधीन होने के कारण वह वेबस भी होकर किसी भी दशा मे ठीक तरह नही रह पाती । वार वार वह प्रियतम को देखने के लिए उचकती है, फिर सकोचवश नीचे झुककर अपने आपको छिपा लेती है । इस तरह वह बार-बार उचक कर देखती है, और वार-वार अपने आपको छिपाती है ।

अलकार—यमक, अनुप्रास, वीप्सा और दीपक ।

प्रसग—प्रणय-आरम्भ की दशा मे स्थित नायिका का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही—

चकी जकी सी ह्वै रही, बूझे बोलति नीठि ।
कहू डीठि लागी, लगी, कै काहू की डीठि ।।१७८।।

चकी=चकित । जकी=स्तब्ध, डरी हुई । बूझे=पूछने पर । नीठि=कठिनाई से । डीठि=दृष्टि ।

अर्थ=अरि, देख तो यह नायिका कुछ चकित और स्तब्ध सी हो गई है । अपने आप बात करना तो दूर, यह पूछने पर भी वडी कठिनाई से ही वोलती है । या तो इसकी नजर कही लग गई है, या इसको किसी और की नजर लग गई है । अर्थात् इसका किसी से प्रेम हो गया है ।

अलंकार—सन्देह और स्वभावोक्ति ।

प्रसग—नायिका प्रियतम के ध्यान मे मग्न है। वह दर्पण देख रही है और अपने प्रतिविम्ब को अपना प्रियतम समझ कर उस पर मुग्ध हुई जा रही है, इस दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

पिय के ध्यान गही गही, रही वही ह्वै नारि।
आपु आपुही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ॥१७९॥

पिय=प्रिय। गही=ग्रस्त। रिझवारि=रीझने वाली।

अर्थ—प्रियतम के ध्यान मे डूबी हुई यह नायिका वही अर्थात् प्रियतम ही बन गई। वह स्वय ही आरसी लेकर उसमे अपना प्रतिविम्ब देखती है और उसे प्रियतम समझ कर उस पर मुग्ध हुई जाती है। ऐसी अद्भुत मुग्ध होने वाली यह नायिका है।

अलंकार—सामान्य।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से प्रेम विकल नायिका के सम्बन्ध मे कह रही है—

ह्या ते ह्वा ह्वा ते इहाँ, नेकौ धरति न धीर।
निसि दिन डाढ़ी फिरति, बाढी गाढ़ि पीर ॥१८०॥

ह्या=यहाँ। नेकौ=जरा भी। धीर=धैर्य। डाढी=जली हुई, दग्धा।

अर्थ—वह यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहा निरन्तर आती, जाती है और पल भर भी धीरज से नही बैठ पाती। वह दिनरात तीव्र वढी हुई वेदना के कारण जली हुई सी इधर-उधर फिरा करती है।

अलकार—उपमा और अनुप्रास।

प्रसग—नायिका के सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है।

इत तें उत उत तें इतहिं, छिनकु न कहु ठहराति।
जक न परति चकरी भइ, फिर आवति फिर जाति ॥१८१॥

उत=वहाँ। इत=यहाँ। छिनकु=पल भर। जक=चैन। चकरी=एक प्रकार का खिलौना, जो रस्सी से घुमाया जाता है।

अर्थ—वह नायक को देखने के लिये यहाँ से वहाँ जाती है और फिर वहाँ से यहाँ लौट कर आती है। वह क्षण भर भी कहीं नही ठहरती। उसे अपनी उत्सुकता मे पल भर भी चैन नहीं पड़ता। बार-बार आती है और बार-बार जाती है। वह मानो चकरी बनी हुई है।

चकरी को एक डोरी मे बाध कर चलाते है। वह कभी नीचे की ओर जाती है, कभी ऊपर की ओर। वह परन्तु क्षण भर के लिये भी स्थिर नही रहती। स्थिर रहे, तो चकरी का चलना ही बन्द हो जाता है। यही हाल नायिका का हो रहा है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

प्रसग—नायिका की दूती नायक से कह रही है—

तजि संक, सकुचति न चित, बोलति बाक कुबाक।
दिन छनदा छाकी रहति, छुटै छिन छवि छाक ॥१८२॥

सक=शका। सकुचति=शर्माती। वाक कुबाक=उचित-अनुचित वचन। छनदा=रात्रि। छाकी रहति—मस्त रहती है। छाक=नशा।

अर्थ—हे लाल, वह दिन-रात प्रेम के नशे मे मस्त रहती है और तुम्हारे रूप का नशा पल भर के लिये भी नही उतरता। उसका परिणाम यह हुआ है कि उसने सब प्रकार की शका और भय को त्याग दिया है। अब वह मन मे सकुचित भी नही होती और उचित-अनुचित जो भी मन मे आता है, बोलती जाती है।

नायिका का प्रेम उन्माद की अवस्था तक पहुँच गया है। उसने लोक लज्जा और सकोच को तिलांजली दे दी है।

अलकार—रूपक।

प्रसग—एक सखी नायिका की दशा का वर्णन दूसरी सखी से कर रही है—

नई लगनि, कुल की सकुचि, विकल भई अकुलाइ।
दुहु ओर ऐंची फिरति, फिरकी लौं दिन जाइ ॥१८३॥

लगनि=प्रेम। सकुचि=सकोच। अकुलाइ=आकुल होकर। ऐंची=खिंची हुई। फिरकी=फिरकनी, गत्ते का एक वृत्ताकार टुकडा लेकर उसके केन्द्र के पास दो छेद करके उनमें धागा पिरो देते है। उस धागे को क्रमश: ढील देने और खीचने से फिरकनी घूमती है।

अर्थ—एक ओर तो नया-नया प्रेम और दूसरी ओर कुल मर्यादा के कारण होने वाली लज्जा, इन दोनो से परेशान होकर वह बेहाल हो गई है।

वह इन दोनो के बीच मे खिंची फिरती है और फिकरनी की तरह घूमते हुए ही उनके दिन बीतते है।

नये प्रेम के कारण वह नायक से मिलना चाहती है, परन्तु कुल मर्यादा का ध्यान करके वह उसके पास जाने से कतराती है। इस दुविधा मे ही वह चकराती रहती है।

अलकार—उपमा।

प्रसग—नायिका की दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

डर न टरै, नींद न परै, हरै न काल विपाक।
छिनक छाकि उछकै न फिरि, खरो विषम छवि छाक ॥१८४॥

टरै=टलता। परै=शान्त होता है। काल विपाक=समय का बीतना। उछकै=घटता नही। विषम=टेढा, कठिन। छाक=नशा।

अर्थ—हे सखी, सौंदर्य का मद बडा ही विकट है, क्योकि यह न तो डर से उतरता है, न नीद के कारण कम होता है और न समय बीतने के साथ ही यह समाप्त होता है। इसे तो जो जरा सा भी पी लेता है फिर उसका नशा उतरता नहीं।

अन्य पदार्थों के नशे भय, निद्रा या काल विपाक के कारण उतर जाते हैं। परन्तु छवि का विकट नशा किसी तरह नही उतरता।

अलकार—व्यतिरेक।

प्रसग—सखी पूर्वानुरागिनी नायिका की दशा का वर्णन दूसरी सखी से कर रही है—

झटकि चढति उतरति अटा, नेकु न थाकति देह।
भई रहति नट को बटा, अटकी नागर नेह ॥१८५॥

झटकि=चट, एक झटके मे। अटा=अटारी। नेकु=जरा भी। बटा=चकरी। नागर=प्रियतम। नेह=प्रेम।

अर्थ—वह नायिका पल भर मे नायक को देखने के लिए अटारी पर चढ जाती है और देखने के बाद पल भर मे अटारी से नीचे उतर आती है। इस तरह बार-बार उतरने-चढने मे उसकी देह जरा भी नही थकती। प्रियतम के

प्रेम में अटकी हुई वह बेचारी नट की चकरी सी बनी रहती है।

नट लोग एक चकरी का खेल दिखाते है, जो रस्सी के सहारे तेजी से नीचे को झूल जाती है और फिर ऊपर चढ आती है। नायक को देखने की उत्सुकता में नायिका छत पर चढती है और छत पर खडे कोई देख न ले, इस भय से वह नीचे उतर आती है। इस प्रकार वह नट की चकरी सी बनी रहती है।

अलंकार—विशेषोक्ति और रूपक।

प्रसग—एक सखी नायिका के सम्बन्ध मे दूसरी सखी से कह रही है—

> चलत घैरु घर घर तऊ, घरी न घर ठहराय।
> समुझि वहै घर को चलै, भूल वही घर जाय॥१७९॥

घैरु=निन्दा। घरी=घडी भर। ठहराय=रुकती।

अर्थ—घर-घर मे गुपचुप उसकी निन्दा होती है, फिर भी वह घडी भर भी अपने घर नही ठहरती, अर्थात् नायक के घर आती-जाती है। निन्दा की बात ध्यान आने पर वह अपने घर की ओर चलती है, पर रास्ते में ही उसे भूल जाती है और फिर नायक के घर की ओर लौट पडती है।

रत्नाकर ने इसके उत्तरार्ध का यह अर्थ किया है कि जब वह होश-हवास मे चलती है, तब भी नायक के घर ही पहुँचती है और जब आत्म विस्मृत दशा मे होती है, तब भी नायक के घर ही पहुँचती है।

अलकार—विशेषोक्ति और अनुप्रास।

प्रसंग—एक सखी दूसरी सखी से नायिका की दशा का वर्णन करते हुए कह रही है—

> लई सौंह सी सुनन की, तजि मुरली धुनि आन।
> किये रहति रति रात दिन, कानन लाये कान॥१८०॥

सौंह=शपथ। धुनि=आवाज। आन=अन्य, दूसरी। कानन=जगल। रति=ललक।

अर्थ—उसने मुरली के सिवाय अन्य किसी भी बात को न सुनने की शपथ सी ले ली है, अर्थात् और कोई बात सुनती ही नही। वह दिन-रात बाँसुरी की ध्वनि सुनने की ललक मे जगल की ओर कान लगाये रहती है।

अलकार—अनुप्रास, यमक और उत्प्रेक्षा।

पूर्वानुराग में विकलता

प्रसग—नायिक अपनी दशा का वर्णन करते हुए अपनी अन्तरग सखी से कह रही है—

लोभ लगे हरि रूप के, करी साँठि जुरी जाइ।
हौं इन बेंची बीचही, लोयन बड़ी बलाइ ॥१८८॥

साठि=सौदा। जुरि जाइ=मिल जुल कर। बीचही =अपने आप ही, बिना मेरी अनुमति के। लोयन=लोचन। बलाइ=मुसीबत।

अर्थ—सखी, ये आँखे बडी बला है। इन्होंने हरि अर्थात् कृष्ण के रूप के लोभ मे पडकर मिल जुल कर सौदा कर लिया और मुझे मेरी अनुमति के बिना ही बेच डाला।

यहाँ रूप के लोभ मे श्लेष है। रूप चाँदी को भी कहते है। जैसे दलाल लोग रुपये के लोभ मे सौदा करके माल बेच देते है उसी प्रकार इन आँखो ने रूप के लोभ मे मुझे बेच दिया है।

अलंकार—रूपक और श्लेष।

प्रसग—नायिका अपने मन की दशा सखी से कह रही है—

भृकुटि मटकनि, पीत पट, चटक लटकती चाल।
चल चख चितवनि चोर चित, लियो बिहारी लाल ॥१८९॥

भृकुटी=भौहे। मटकनि=मटकना। चटक=चमक। लटकती=झूमती हुई। चख—आँखें।

अर्थ—प्यारी सखी, बिहारीलाल अर्थात् कृष्ण ने अपनी भौहो की मटक द्वारा, पीत वस्त्र की चमक द्वारा, झूमती हुई चाल द्वारा और अपने चचल नेत्रो की चितवन द्वारा मेरे चित्त को चुरा लिया है, अर्थात् मुझे मुग्ध कर लिया है।

अलकार—समुच्चय।

प्रसग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

मोहू सो तजि मोह दृग, चले लागि वहि गैल।
छिनक छ्वाय छबि गुर डरी, छले छबीले छैल ॥१९०॥

मोह=प्रेम। गैल=साथ या रास्ता। छिनक=क्षण भर। गुर डरी=

गुड की डली । छैल=छैला, नायक ।

अर्थ—हे सखी, ये मेरे नेत्र मेरा प्रेम या मोह त्याग कर, उसी के साथ चल पडे है, या उसी के रास्ते मे चलते हैं जिसे सुन्दर छैल नायक ने अपनी छविरूपी गुड की डली जरा देर के लिए इन्हे छुवा कर छल लिया है ।

जैसे ठग लोग किसी बच्चे को गुड की डली देकर फुसला लेते है, उसी प्रकार नायक ने अपनी सुन्दरता की गुड की डली छुवा कर इन नेत्रो को ठग लिया है और अब ये सदा उसी राह को देखते रहते हैं, जिससे नायक गुजरता है ।

अलकार—रूपक और वृत्त्यनुप्रास ।

प्रसग—पूर्वानुरागिनी नायिका अपनी सखी से कह रही है—

> फिरि फिरि चित उत ही रहत, टुटी लाज की लाव ।
> अग अग छवि झौंर में, भयो भौंर की नाव ॥१६१॥

फिरि फिरि=बार-बार । लाव=रस्सी । झौंर=मडल, घेरा । भौंर=भवर ।

अर्थ—मेरा चित्त बार-बार उसी ओर जा पहुँचता है और लज्जा की रस्सी टूट चुकी है । उस नायक के अग-प्रत्यग की शोभा के मडल में पड कर मेरा मन भवर की नाव बन गया है ।

लाव का अभिप्राय नाव बाँधने की रस्सी से है । जैसे भंवर मे पड जाने पर नाव घूम फिर कर एक ही जगह चक्कर काटती है और उसकी रस्सी टूट जाती है और उसका डूबना लगभग निश्चित होता है, वही दशा नायक के अग-प्रत्यग की कान्ति को देखकर नायिका के मन की हो गई है ।

अलकार—रूपक ।

प्रसग—पूर्वानुरागिनी नायिका की दशा का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

> हरि छवि जल जवतें परे, तवतें छिन विछुरें न ।
> भरत, ढरत, बूड़त, तिरत रहँट घरी लौं नैन ॥१६२॥

हरि छवि=कृष्ण का सौन्दर्य । विछुरैं=अलग होते । ढरत=खाली होते है या ढालते हैं । बूड़त=डूबते है । रहँट घरी=रहट की छोटी-छोटी मटकियाँ ।

अर्थ—उस नायिका के नयन जब से कृष्ण के सौंदर्य रूपी जल में पडे हैं, तब से वे क्षण भर के लिए भी उससे अलग नही होते। रहट की मटकियो की तरह वे कभी भरते हैं, कभी पानी उँडेलते है, कभी डूबते है और कभी पानी मे उतराते है।

शृंगारी कवियो ने अपनी रचनाओ मे नायक कृष्ण को बना लिया है और नायिका राधा को। रहट की मटकियाँ जिस तरह पानी से अलग नही होती, भरते, खाली होते, डूबते और ऊपर आते निरन्तर पानी से तर रहती है, वही हाल नायिका के नेत्रो का है।

अलंकार—उपमा।

प्रसग—नायिका को देखकर नायक के मन की जो दशा हुई है, उसके सम्बन्ध मे नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

रहि न सक्यो कसकरि रह्यो, बस बर लीन्हो मार।
भेदि दुसार कियो हियो, तन दुति भेदीसार ॥१६३॥

कसकरि=दृढतापूर्वक। मार=कामदेव। दुसार=आर पार छेद वाला। भेदीसार=बढई का बरमा।

अर्थ—मैंने अपने को बहुत बस मे रखा, परन्तु वह बस मे न रहा और कामदेव ने उसे अपने वश मे कर लिया। उसने नायिका के शरीर की कान्ति का बरमा चला कर मेरे हृदय के आर-पार छेद कर दिया। अर्थात् नायिका की कान्ति मेरे हृदय को चीरती हुई उसके आर-पार हो गई और अब उसकी स्मृति भी कसकती रहती है।

अलंकार—रूपक।

प्रसग—नायक ने नायिका की सखी के हाथ मौलसिरी की एक माला नायिका के पास भिजवाई थी। अब वह सखी लौट कर नायक को समाचार सुना रही है।

पहिरत हीं गोरे गरे, यौं दौरी दुति लाल।
मनो परसि पुलकित भई, मौलसिरी की माल ॥१६४॥

गरे=गले मे। दुति=चमक। परसि=छूकर। पुलकित भई=रोमांचित हो उठी।

अर्थ—हे लाल, तुम्हारी भेजी मौलसिरी (बकुल) की माला को गौर-वर्ण गले मे पहनते ही उसके शरीर पर ऐसी आभा छा गई, मानो वह तुम्हारा स्पर्श करके ही रोमांचित हो उठी हो।

नायक की भेजी हुई माला का स्पर्श भी नायिका को इतना प्रिय लगा कि वह उसे नायक के स्पर्श के समान ही समझ कर रोमांचित हो उठी।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायिका नायक के ध्यान मे ऐसी मग्न है कि वह दही की मटकी के बजाय मथनियो मे रई को उल्टा डाल कर चला रही है। इसका वर्णन नायिका की एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

रही दहेडी ढिग धरी, भरी मथनिया बारि।
फेरति करि उलटी रई, नई बिलोवनिहारि ॥१६५॥

दहेडी=दही की मटकी। मथनिया=मिट्टी का वह बर्तन, जिसमे डाल कर दही को मथा जाता है। बिलोवनहारि=बिलोने वाली।

अर्थ—नायक के ध्यान मे उस नायिका गोपी की ऐसी विचित्र दशा हो गई कि दही की मटकी तो पास रखी रह गई और उसने पानी से भरी हुई मथनिया मे रई को उल्टा करके चलाना शुरू कर दिया। ऐसी विचित्र बिलोने वाली किसी ने और कही नही देखी होगी।

अलकार—भ्रम।

प्रसंग—सखी नायिका से कह रही है कि नायक के प्रति अपने प्रेम को इस प्रकार सब जगह प्रकाशित करना तेरे लिए उचित नही है। नायिका अपनी विवशता बताते हुए कहती है—

बहके सब जिय की कहत, ठौर कुठौर लखें न।
छिन औरें छिन और हैं, ये छबिछाके नैन ॥१६६॥

बहके=नशे के कारण बेकाबू हुए। जिय=मन। ठौर कुठौर=उपयुक्त या अनुपयुक्त स्थान। छबिछाके=सौन्दर्य के नशे मे मस्त।

अर्थ—तू जो कहती है, वह तो सब ठीक है, पर नशे के कारण बहके हुए मेरे ये नयन हृदय की बात सब जगह कह देते है। ये उपयुक्त या अनुपयुक्त स्थान कुछ नही देखते। नायक के सौंदर्य के नशे मे चूर होने के कारण इनकी

हालत क्षण मे कुछ और क्षण मे कुछ होती रहती है ।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति ।

प्रसग—सखी नायिका को अपने आप को वश मे रखने की शिक्षा दे रही है । उत्तर मे नायिका कह रही है—

लाज लगाम न मानही, नैना मो बस नाहिं ।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हूँ चलि जाहिं ॥१९७॥

मो=मेरे । मुँहजोर=बहुत बलवान । ऐंचत हूँ=खेचते हुए होने पर भी ।

अर्थ—मेरे ये नेत्र लज्जा रूपी लगाम की परवाह नही करते । ये मेरे बस से बाहर हो गये है । ये मुँहजोर अर्थात् बलवान घोडे की भाँति लगाम खीचते रहने पर भी उस नायक की ओर चले ही जाते है ।

अलकार—रूपक और विभावना ।

प्रसग—सखी नायिका को समझाती है कि नायक के साथ इस तरह खुले आम देखा-देखी करने से अपयश फैलेगा । उसके उत्तर मे नायिका अपनी विवशता बताते हुए कहती है ।

नैना नैकु न मानहीं, कितो कह्यौ समझाय ।
तन मन हारे हू हंसे, तिनसौं कहा बसाय ॥१९८॥

नैकु=जरा भी । कितो=कितना ही । हू=भी । कहा बसाय=क्या पार पाई जा सकती है ।

अर्थ—मैंने कितना ही समझाया, परन्तु मेरे नयन मेरा कहना जरा भी नही मानते । ये ऐसे ढीठ है कि तन और मन हार जाने पर भी हसते ही रहते हैं । इन पर किसी का क्या जोर चल सकता है ?

यदि किसी को अपने लाभ-हानि की परवाह हो, तो उसे समझा कर सही रास्ते पर लाया भी जा सकता है, परन्तु जो इतना ढीठ और मस्त हो गया हो, कि सर्वस्व हार जाने पर भी हसता ही रहे, उस पर किसी भी शिक्षा का प्रभाव होना सम्भव नही ।

अलंकार—विशेषोक्ति ।

प्रसग—सखी नायिका को तरह-तरह की चतुराई की सीखें दे रही थी । उसके उत्तर मे नायिका कहती है—

नैन लगे तिंहि लगनि सौं, छुटैं न छूटे प्रान।
काम न आवत एकहू, तेरे सौक सयान ॥१९९॥

लगनि=प्रेम। छूटे प्रान=प्रान छूटने पर भी। सौक=सैकडो, सौ एक। सयान=चतुराइयाँ।

अर्थ—मेरे नयन ऐसी लगन के साथ उस नायक से जा लगे हैं कि प्राण छूटने पर भी उससे अलग नही हो सकते। इसलिए तू जो ये सैंकडो चतुराइयाँ मुझे सिखा रही है, उनमे से एक भी मेरे काम न आयेगी।

अर्थात् तेरा इस प्रकार समझाना-बुझाना व्यर्थ है। नायक के साथ मेरा प्रेम अचल है।

अलकार—अत्युक्ति।

प्रसग—नायिका अपने मन की व्यथा अपनी सखी से कह रही है—

साजे मोहन मोह को, मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे, टोने लोने नैन ॥२००॥

साजे=सजाये। मोहन=नायक, कृष्ण। मोह को=रिझाने के लिए। मोही=मुझको ही। कुचैन विकल। कहा=क्या। टोने=जादू। लोने=लावण्यमय, सुन्दर।

अर्थ—मैंने तो अपने नेत्रो को कृष्ण को रिझाने के लिए सजाया था अर्थात् काजल इत्यादि लगा कर सजाया था, पर अब वे नेत्र मुझे ही बेचैन कर रहे है। क्या करू ? ऐसा लगता है कि ये लावण्य भरे नयन टोने की तरह मेरे लिए ही उल्टे पड गये है।

टोने के विषय मे ऐसा कहा जाता है कि वह जिस पर किया जाये, उसके लिए दुखदायी होता है। परन्तु कई बार टोना उल्टा पड जाता है, तो वह टोना करने वाले को ही कष्ट देता है। यही हाल नायिका के सुन्दर नेत्रो का हुआ। वह उनकी सुन्दरता से नायक को रिझाने चली थी, पर नायक को देखकर स्वय ही उस पर रीझ गई और उसे देखने के बाद से बेचैन है।

अलकार—परिकराकुर और यमक।

प्रेमपूर्ण चितवन का प्रभाव

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

अलि इन लोयन सरनि को, खरो विषम संचार।
लगे लगाये एक से, दुहु अनि करत सुमार ॥२०१॥

लोयन = लोचन। सरनि = तीरों का। विषम = विकट। संचार = गति। अनि = नोक। सुमार = जोर की चोट।

अर्थ—हे सखी, इन लोचन रूपी बाणों की गति बहुत विकट है। ये दोनों नोकों से जोर की मार करते है। अगली नोक से उस पर मार करते हैं, जिसे जाकर लगते हैं और पिछली नोक से उस पर मार करते है, जो इन्हें चलाता है।

लगे का अर्थ है—जिसको जाकर लगे और लगाये का अर्थ है जिसने लगाया अर्थात् बाणों को चलाया।

अलंकार—रूपक।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

चख रुचि चूरन डारिकै, ठग लगाय निज साथ।
रह्यो राखि हठ लैगयो, हथाहथी मन हाथ ॥२०२॥

चख = नेत्र। रुचि = सुन्दरता। चूरन = अभिमन्त्रित चूर्ण। हथाहथी = हाथापाई करके।

अर्थ—हे सखी, वह ठग अर्थात् छलिया नायक अपनी आँखों की सुन्दरता का मन्त्रित चूर्ण मुझ पर डाल कर अपने साथ मेरे मन को जबरदस्ती ले गया। (मैं यत्न करके मन को रोकती रह गई परन्तु मेरी एक न चली।)

कहा जाता है कि सिद्ध लोग मन्त्रित राख इत्यादि डाल कर दूसरों को इस प्रकार वश में कर लेते थे कि वह उनके साथ चल देता था।

अलंकार—रूपक।

प्रसंग—सखी नायिका को समझा रही है कि नायक की ओर इस तरह टक लगा कर देखना ठीक नहीं। इसके उत्तर में नायिका कहती है—

जौ लौं लखौं न, कुल कथा, तौ लौं ठिक ठहराय।
देखे आवत देखिबो, क्योंहू रह्यो न जाय ॥२०३॥

जौ लौं = जब तक। लखौं = देखूँ। कुल कथा = [illegible] की नारियों में

योग्य सदाचार आदि की बातें। ठिक=ठीक। देखिबो=देखना।

अर्थ—जब तक मैं उसे देखती नही, तब तक तो कुल कथा अर्थात् कुलाचार आदि की बाते बिल्कुल ठीक प्रतीत होती है, परन्तु जब उसे आते देख लेती हूँ, तब फिर किसी भी प्रकार देखे बिना रहा नही जाता।

अलकार—अनुप्रास।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है।

> बन तन को निकसत लसत, हसत हंसत इत आय।
> दृग खजन गहि ले गयो, चितवनि चेंपु लगाय ॥२०४॥

बन तन=बन की ओर। लसत=क्रीडा करता हुआ। इत=इधर। खजन=एक प्रकार का पक्षी। गहि=पकड कर। चेंपु=चेंपा या लासा।

अर्थ—बन की ओर निकलते समय वह क्रीडा करता हुआ कृष्ण हसते-हसते इधर आकर मेरे नेत्र रूपी खजनो को अपनी चितवन का लासा लगाकर पकड कर ले गया।

चिडीमार लासा लगा कर पक्षियो को पकडते है। यहाँ कृष्ण रूपी चिडीमार ने अपनी चितवन का लासा लगाकर नायिका के नेत्र रूपी खजन पक्षियो को पकड लिया है।

अलकार—रूपक और वीप्सा।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से नायक के नेत्रो के विषय मे कह रही है—

> चित वित बचत न हरत हठि, लालन दृग बरजोर।
> सावधान के बटपरा, ये जागत के चोर ॥२०५॥

वित=धन। हठि=हठ करके। बरजोर=जबरदस्त। सावधान=सचेत बटपरा=बटमार डाकू।

अर्थ—हे सखी, लालन अर्थात् कृष्ण के नेत्र बहुत जबरदस्त हैं। इनके सामने मन रूपी धन बच नहीं पाता, क्योंकि ये हठ पूर्वक इसे छीन लेते हैं। ये सावधान लोगों के लिए भी बटमार हैं और जागते हुओं के लिए भी चोर हैं।

साधारणतया बटमार लोग यात्रियों को असावधान पाकर उन पर आक्रमण

करके उनका माल छीन लेत है और चोर गृह-स्वामियो के सोते समय चुपके से चोरी कर ले जाते है। परन्तु ये नेत्र ऐसे डाकू है, जो सावधान लोगो को भी नही छोडते और ऐसे चोर है, जो जागतो के घर भी चोरी कर लेते है।

अलकार—विभावना।

प्रसग— नायिका अपनी सखी से कह रही है—

जात सयान अयान ह्वै, वे ठग काहि ठगें न।
को ललचाय न लाल के, लख ललचौं हे नैन ॥२०६॥

सयान=चतुर। अयान=मूर्ख। ललचौ हे=लालायित, लालच से भरे हुए।

अर्थ—हे सखी, लाल अर्थात् नायक के लालायित अर्थात् प्रेमपूर्ण नयनो को देख कर कौन नही ललचा जाती। उनके आगे सब चतुर गोपियाँ मूर्ख बन जाती है। कौन ऐमी है जिसे उन्होने ठगा नही है।

अलकार—वक्रोक्ति।

प्रसग—सखी नायिका को कुलाचार की सीख दे रही है। उसके उत्तर मे नायिका कहती है—

जस अपजस देखत नहीं, देखत साँवल गात।
कहा करौं लालच भरे, चपल नैन भर जात ॥२०७॥

अपजस=बदनामी। साँवल=साँवला। चपल=चचल।

अर्थ—सखी, मैं क्या करूँ ? मेरे ये लालच भरे चचल नयन मेरे वश मे नही है। ये उन साँवले शरीर को देखते ही उस ओर चले जाते है, और यश-अपयश का तनिक भी ध्यान नही रखते।

नायक को देखते ही नायिका की आँखें उस ओर चली जाती है और उसे यह ध्यान नहीं रहता कि और लोग देख लेंगे, तो क्या कहेंगे ?

अलकार—परिकर।

प्रसग—नायिका नायक को देख रही है। सखी उससे कहती है कि अब तो तू काफी देख चुकी, अब चल। उत्तर मे नायिका कहती है—

नग मिस रूप भरे खरे, तउ मागत मुसुकानि।
तजत न लोचन लालची, ये ललचौंही बानि ॥२०८॥

नख सिख=नख से लेकर शिखा तक (सिर से पैर तक)। तउ=फिर भी। मुसुकानि=मुस्कराहट। ललचौही=लोभ पूर्ण। बानि=आदत।

अर्थ—हे सखी, मेरे ये लालची लोचन अपनी लोभपूर्ण आदत को नही छोडते। यद्यपि ये श्रीकृष्ण के सिर से पैर तक की शोभा से भरे हुए है, फिर भी ये अभी उनकी एक मुस्कान और देखना चाहते है।

भाव यह है कि कृष्ण को मैंने देख तो लिया, परन्तु अगर वे एक बार मुस्करा दें, तो उसके बाद तेरे साथ चलूँ।

अलंकार—विशेषोक्ति, परिकर और अनुप्रास।

अनुराग का आधिक्य

प्रसंग—परकीया नायिका अपनी सखी से कह रही है—

सुरति न ताल रु तान की, उठयो न सुर ठहराय।
येरी राग बिगारिगो, बैरी बोल सुनाय ॥२०६॥

सुरति=ध्यान। रु=अरु, और। सुर=स्वर। येरी=अरी। गो=गया।

अर्थ—हे सखी, मुझे न तो ताल का ध्यान रहा और न तान का। ऊँचा उठाया हुआ स्वर भी ठहरता नही। अर्थात् आवाज काँप जाती है। यह बैरी (नायक) अपनी आवाज सुना कर मेरा राग ही बिगाड़ गया।

नायिका गाना गा रही थी। उसी समय कही से नायक की आवाज सुनाई पड गई। उसे सुनते ही नायिका का स्वर भग हो गया। उसका राग बिगड़ गया। प्रेमाधिक्य मे नायक को बैरी कहा गया है।

अलकार—काव्यलिग।

प्रसंग—नायिका की दशा का वर्णन करते हुए सखियाँ आपस मे कह रही है—

छला छबीले लाल को, नवल नेह लहि नारि।
चूमति चाहति लाय उर, पहिरति धरति उतारि ॥२१०॥

नवल=नया। छला=अँगूठी। लहि=प्राप्त करके। चाहति=देखती है।

अर्थ—अपने सुन्दर प्रियतम की अँगूठी को नये-नये प्रेम में प्राप्त करके

नायिका कभी उसे चूमती है, फिर छाती पर लगा कर उसे देखती है, कभी उसे पहनती है और फिर उतार कर रख देती है, जिससे कही कोई देख न ले।

अलंकार—स्वभावोक्ति और अनुप्रास।

प्रसग—नायिका के पैर मे काँटा गड गया। उस काँटे को नायक ने स्वय निकाला। काँटा इस प्रकार नायक के स्पर्श का कारण बना, इसलिए नायिका काँटे से कह रही है—

ए काँटे मो पाय गडि, लीन्ही मरत जिवाय।
प्रीति जतावति नीति सो, मीत जु काढयो आय॥ २११॥

मो=मेरे। पाय=पैर। मरत=मरते हुए। जिवाय लीन्ही=जिला लिया। जतावति=दिख ते हुए। मीत=मित्र अर्थात् नायक।

अर्थ—हे काँटे तूने मेरे पैर मे गड कर मुझे मरते-मरते जिला लिया, क्योकि तेरे कारण मित्र अर्थात् नायक ने नीतिपूर्वक अर्थात् यथोचित रीति से प्रेम जताते हुए स्वय आकर तुझे निकाला।

भाव यह है कि नायिका नायक के स्पर्श के लिए लालायित थी। काटे ने उसके लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किया।

अलकार—अनुज्ञा।

प्रसग—सखी चन्द्रमा का दर्शन करने के लिए अटारी की छत पर आयी हुई नायिका से कहती है।

दियो अरघ नीचे चलो, सकट भानै जाय।
सुचितो ह्वै औरो सबै, ससिहि बिलोकै आय॥२१२॥

सकट=सकष्ट चतुर्थी का व्रत। भानै=तोडे। सुचिती=दुविधा रहित।

अर्थ—हमने चन्द्रमा को अर्घ्य दे दिया। अब चलो, नीचे चलें और सकट चतुर्थी का व्रत तोडे अर्थात् कुछ भोजन करें, जिससे अन्य सब स्त्रियाँ भी आकर दुविधा रहित चित्त से चन्द्रमा को देख सकें।

सुचिती दुचितो का विलोम है। जब तक नायिका अटारी पर रहेगी, तब तक स्त्रियो का चित्त दो ओर बटा रहेगा। व्रत तोडने के लिए वे चन्द्रमा को देखना चाहेंगी, पर सुन्दरता के कारण उनकी दृष्टि नायिका के मुख की ओर जायेगी। इस कारण वे दुविधा मे पडी रहेंगी। उनको इस दुविधा से मुक्त करने के लिए नायिका का अटारी से नीचे उतर आना ही श्रेयस्कर है।

अलंकार—पर्यायोक्ति ।

प्रसग—नायिका ने कोई व्रत किया है। उसकी समाप्ति के लिए वह चन्द्रोदय देखने के लिए अटारी पर चढती है। उससे परिहास करते हुए उसकी सखी कह रही है—

तू रहि ससि हौं ही लखौं, चढि न अटा वलि वाल।
सव ही बिनु ससि ही उवैं, देहैं अरघु अकाल ॥ २१३ ॥

रहि=यही रह । हो ही=मैं ही। अटा=अटारी । उदै=उदय । अरघु=अर्घ्य, पूजा का सामान ।

अर्थ—तू यही रह। मैं ऊपर चढकर चन्द्रमा को देख आती हूँ। हे बाला, मैं तेरी वलि जाती हूँ, तू अटारी पर मत चढ। क्योंकि तुझे अटारी पर चढे देख कर बाकी सब स्त्रियाँ चन्द्रमा के उदित हुए विना ही असमय मे ही अर्घ्य देने लगेंगी, जिससे उनका व्रत निष्फल हो जायेगा।

स्त्रियाँ गणेश चतुर्थी का व्रत रखती है और सायकाल के समय चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा को जल चढा कर अपना व्रत तोडती है। नायिका को चन्द्रमा समझ कर वे चन्द्रोदय से पूर्व ही अपना व्रत तोड बैठेंगी। यहाँ नायिका की चन्द्रमा के समान सुन्दर होने की व्यजना है।

अलंकार—पर्यायोक्ति और अतिशयोक्ति ।

प्रसग—नायिका का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

सखी सिखावति मान विधि, सैनन बरजति वाल।
हरे कहै, मो हीय मों, बसत बिहारी लाल ॥२१४॥

मान विधि=मान करने का तरीका। वरजति=मना करती है। सैनन=आँखो के इशारे से । वाल=वाला, नायिका । हरे=धीरे से, हौले से। हीय=हृदय।

अर्थ—सखी नायिका को सिखा रही है कि तू इस प्रकार मान किया कर। इस पर नायिका आँख के सकेत से उसे मना करते हुए कहती है कि यह बात धीरे से बोल, क्योंकि नायक बिहारीलाल अर्थात् कृष्ण मेरे हृदय मे निवास करते हैं। यदि तू जोर से बोलेगी तो वे सुन लेंगे और तेरी यह सारी शिक्षा अकारथ हो जायेगी।

अलकार—काव्यलिंग ।

प्रसग—नायक और नायिका के तीव्र अनुराग के सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

उनको हित उनहीं बनै, कोऊ करौ अनेक ।
फिरत काग गोलक भयो, दुहू देह ज्यौ एक ॥२१५॥

हित=प्रेम । उनही बनै=उनके किये ही हो सकता है । काग गोलक=कौवे की पुतली । यह कहा जाता है कि कौवे के यद्यपि आखो के गड्ढे तो दो होते है परन्तु पुतली एक ही होती है । वही आवश्यकतानुसार दोनो गड्ढो मे घूमती रहती है । ज्यौ=जीव, प्राण ।

अर्थ—उन दोनो मे जैसा प्रेम है, वैसा बस उन दोनो मे ही है । चाहे कोई कितना ही यत्न कर ले, वैसा प्रेम नही हो सकता । ऐसा लगता है कि उन दोनो के दो शरीरो मे एक ही जीव काग गोलक अर्थात् कौवे की पुतली बन कर फिरता रहता है ।

भाव यह है कि उन दोनो के शरीर दो, किन्तु प्राण एक ही है—

अलकार—विशेषोक्ति और उपमा ।

प्रसंग—नायिका अपनी अन्तरग सखी से कह रही है ।

सुख सो बीती सब निसा, मनु सोये मिलि साथ ।
मूका मेलि गहे जु छन, हाथ न छोडे हाथ ॥ २१६ ॥

निसा=रात । मनु=मानो । मूका=दीवार मे बना हुआ छेद ।

अर्थ—हे सखी, दीवार मे बने हुए छेद मे से हम दोनो न क्षण भर के लिए जो एक दूसरे के हाथ पकडे, तो फिर छोडे ही नही, और सारी रात ऐसे सुख से बीती कि मानो हम साथ मिल कर ही सोये हो ।

यहाँ नायिका परकीया है । नायक या तो नायिका का पडौसी है, अथवा यह सारा स्वप्न का वर्णन है । दोनो मे से चाहे कुछ भी क्यो न हो, परन्तु कल्पना बहुत बढिया नही है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—नायिका नायक को स्वप्न मे आते जाते देखती है । आँखें खुलने पर किवाडो की साकल ज्यो की त्यो लगी देख कर चकित हो जाती है । यही

वात वह अपनी सखी से कहती है—

देखौं जागि त वैसियै, सांकरै लगी कपाट।
कित ह्वै आवति जाति भजि, को जानै केहि बाट॥ २१७॥

त=तो। वैसियै=वैसी ही। साकर=सांकल। कपाट=किवाड। जाति भजि=भाग जाता है। बाट=रास्ता।

अर्थ—जब मैं जागती हूँ तो देखती हूँ कि किवाडो में सांकल वैसी ही लगी है जैसी मैं लगा कर सोयी थी। यह समझ नही आता कि फिर वह मेरा प्रियतम किस रास्ते से आता है और किस रास्ते से भाग जाता है ?

यहाँ यह ध्वनित है कि नायक के दर्शन नायिका को स्वप्न मे होते हैं।

अलंकार—विभावना।

प्रसंग—नायक बाँसुरी बजाता हुआ रास्ते पर जा रहा था। उसकी आवाज़ सुनकर नायिका दरवाजे तक आई और उसे देखते ही उस पर मुग्ध हो गई। इस विषय में वह अपनी सखी से कह रही है—

उर लीने अति चटपटी, सुनि मुरली धुनि धाय।
हौं हुलसी निकसी'सु तौ, गयो हूल सी लाय॥२१८॥

चटपटी=चाव। धाय=दौड कर। हुलसी=प्रसन्न होकर। हूल=बरछी या तलवार की घोप।

अर्थ—मैं तो बाँसुरी की ध्वनि सुनकर मन मे बहुत चाव लिये दौड़ कर आनन्द से उसे देखने के लिए निकली, परन्तु वह तो मुझे बरछी की हूल सी मार कर चला गया।

अर्थात् नायक इतना सुन्दर था कि वह उसे देखते ही मुग्ध हो गयी। उसका रूप नायिका के हृदय मे बरछी की भाँति लगा।

अलंकार—यमक और विषम।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

छुटत न पैयत छिनकु बसि, नेह नगर यह चाल।
मार्‌यौ फिरि फिरि मारियै, खुनी फिरत खुस्याल॥२१९॥

छिनकु=क्षण भर। बसि=निवास करके। नेह नगर=प्रेम नगर।

अलंकार—[illegible] और [illegible]।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

खल बढ़ई बल करि थके, कटै न कुबत कुठार।

आलबाल उर झालरी, खरी प्रेम तरु डार ॥२२०॥

खल=दुष्ट। कुबत=निन्दा। कुठार=कुल्हाड़ी। झालरी=फलती-फूलती है। खरी=खूब।

अर्थ—हे सखी, मेरे हृदय रूपी थांवले में लगी हुई प्रेम की यह डाल को दुष्टों ने निन्दा रूपी बढ़इयों ने काटने की बहुत यत्न किया। इस प्रयास में वे थक भी गये, परन्तु उनकी निन्दा रूपी कुल्हाड़ियों से यह डाल (शाखा) कटी नहीं, अपितु और अधिक पल्लवित तथा पुष्पित होती गई।

अलंकार—रूपक, विशेषोक्ति और विभावना।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

करत जात जेती कटनि, बढ़ि रस सरिता सोत।

आल बाल उर प्रेम तरु, तितो ततो दृढ़ होत ॥२२१॥

जेती=जितनी। कटनि=कटाव। रस=प्रेम, दूसरा अर्थ है जल। सोत=धारा। आल बाल=थाँवला। तितो=उतना।

अर्थ—प्रेम रूपी नदी की धारा बढ़ कर जितनी अधिक कटाव करती

जाती है, हृदय रूपी थांवले मे लगा आ प्रेम रूपी वृक्ष उतना ही दृढ होता जाता है।

सामान्यतया नदी की धारा की कटान से वृक्ष की जड़ें कमजोर होती है, परन्तु यह विचित्र वृक्ष है जो धारा की कटान के फलस्वरूप दृढ होता जाता है।

अलंकार—रूपक और विभावना।

प्रसंग—अपने विरह तथा दुर्बल देह के सम्बन्ध मे नायिका सखी से कह रही है—

हौं हिय रहति हई छई, नई जुगुति जग जोय।
आखिन आखि लगे खरो, देह दूबरी होय ॥२२२॥

हई=भय या आश्चर्य। जुगुति=युक्ति। जोय=देखकर। दुबरी=दुर्बल। छुई=छाई हुई, व्याप्त।

अर्थ—हे सखी, मुझे तो ससार की यह नई रीति देख कर हृदय मे डर लगता रहता है कि आँख से तो लगती है आँख, परन्तु दुर्बल होती जाती है देह।

भाव यह है कि आँख से आँख लगने पर अच्छा या बुरा प्रभाव आँख पर होना चाहिए, परन्तु इस विलक्षण ससार मे यह प्रभाव होता है देह पर।

अलकार—असगति।

प्रसग—नायिका की दूती नायक से कह रही है—

लाल तिहारे रूप की, कहौ रीति यह कौन।
जासो लागें पलक दृग, लागै पलक पलौ न ॥२२३॥

रीति=विधि। पलक=क्षण भर। पलक न लागे=नीद नही आती। पलौ=पल भर।

अर्थ—हे लाल, तुम्हारे सौन्दर्य की यह कैसी निराली रीति है कि जिससे तुम्हारे नेत्र पल भर के लिए भी लग जाते है फिर उसे पल भर भी नीद नही आती।

अर्थात् जो तुम्हे एक बार देख लेता है, वह तुम्हारे विरह मे क्षण भर भी सो नही पाता। यहाँ यह अर्थ ध्वनित है कि तुम्हे देख कर नायिका की यही दशा हो गई।

अलकार—यमक, व्याजस्तुति और विरोधाभास ।

प्रसग—नायक ने नायिका से कोई बहाना बना कर एकान्त कुंज मे चलने की प्रार्थना की । उसके उत्तर मे विनोद मे नायिका कहती है—

छ्वै छिगुनी पहुची गिलत, अति दीनता दिखाय ।
बलि बामन का ब्यौंत सुनि, को बलि तुम्हे पत्याय ॥ २२४ ॥

छिगुनी=कनिष्ठिका अगुली । पहुची=बाँह । गिलत=पकड लेते हो । बलि=एक राजा का नाम । बामन=वामनावतार । ब्यौंत=वृत्तान्त । पत्याय=भरोसा करे ।

अर्थ—तुम्हारी तो यह रीति ही है कि पहले बहुत दीनता दिखा कर छिगुनी अँगुली छूते हो और फिर तुरन्त पहुँचा पकड लेते हो । बलि और वामनावतार का वृत्तान्त सुन लेने के बाद तुम पर विश्वास कौन कर सकता है ?

विष्णु ने वामन रूप धारण करके राजा बलि से तीन पग पृथ्वी माँगी थी । जब बलि ने तीन पग पृथ्वी देना स्वीकार कर लिया, तो विष्णु ने विराट रूप धारण करके तीन पगो मे तीनो लोको को नाप लिया । विष्णु का अवतार कृष्ण है, इसीलिये नायिका ने विनोद किया ।

अलकार—लोकोक्ति ।

प्रसग—दूती नायिका को समझा रही है—

जद्यपि सुन्दर सुघट पुनि, सगुनो दीपक देह ।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरियै जितौ सनेह ॥ २२५ ॥

जद्यपि=यद्यपि । सुघट=सुगठित । सगुनो=१ गुण सहित, २ बत्ती सहित । तितौं=उतना । स्नेह=१ प्रेम, २ तेल ।

अर्थ—देह रूपी दीपक चाहे जितना ही सुन्दर, सुगठित और गुण युक्त (दीपक पक्ष मे बत्ती सहित) हो, परन्तु वह प्रकाश उतना ही करेगा, जितना कि उसमे प्रेम (दीपक पक्ष मे तेल) भरा होगा ।

जैसे दीपक बडा और बत्ती वाला होने पर भी बिना तेल के प्रकाश नही कर सकता, इसी प्रकार सुन्दर और सुगठित देह भी स्नेह रहित होने पर प्रिय को आकर्षित करने मे समर्थ नही होगा ।

अलकार—श्लेष और रूपक ।

प्रसंग—नायक अपने किसी मित्र से कह रहा है—

क्यों बसिये क्यों निबहिये, नीति नेह पुर नाहिं ।
लगालगी लोयन करें, नाहक मन बंधि जाहिं ।।२२६।।

क्यौं=कैसे । निबहिये=निर्वाह किया जाय । नीति=न्याय । नेह पुर=प्रेम नगर । लगालगी=उपद्रव ।

अर्थ—प्रेम नगर मे किस प्रकार तो निवास किया जाये और कैसे यहाँ निवाह हो, क्योकि यहाँ तो कोई न्याय ही नही है । लगालगी अर्थात् उत्पात तो लोचन करते है और बेचारा मन अकारण बांध लिया जाता है, अर्थात् कैद कर लिया जाता है ।

जो उत्पात करे उसी को पकड़ कर कैद किया जाना चाहिए । पर नेह नगर मे उत्पात लोचन करते है और पकडा जाता है मन ।

अलंकार—असंगति ।

प्रसग—नायक सामने दूर खडा है । नायिका अपनी सखी से लिपट रही है । इस पर सखी नायिका से कहती है—

वे ठाढ़े उमदाहु उत, जल न बुझै बड़वागि ।
जाही सो लाग्यो हियो, ताही के ही लागि ।।२२७।।

ठाढे=खडे है । उमदाहु=उन्माद प्रकट करो । बड़वागि=वड़वानल, समुद्र की आग ।

अर्थ—वह अर्थात् नायक उस ओर खडे है । तुम उन्ही के साथ लिपट कर अपना उन्माद प्रकट करो । मुझसे क्या लिपटती हो ? क्योकि समुद्र की आग पानी से नही बुझती । जिससे तुम्हारा मन लगा है, जाकर उसी के हृदय से लगो ।

भाव यह है कि जब तुम नायक के हृदय से लगोगी, तभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी ।

अलंकार—लोकोक्ति और यमक ।

प्रसग—नायिका और नायक वन विहार के पश्चात् लौट रहे है । उनको देख कर एक सखी दूसरी सखी से कहती है—

चलित ललित श्रम स्वेदकन, कलित अरुन मुख ऐन ।
बनविहार थाकि तरुनि, खरे थकाये नैन ॥२२८॥

श्रम=थकान । स्वेद=पसीना । कलित=सुशोभित । ऐन=बिल्कुल । थाकी=थकी हुई ।

अर्थ—उस वनविहार के कारण थकी हुई तरुणी नायिका ने बढ़ती हुई सुन्दर पसीने की बूँदों और सुशोभित अरुण वर्ण मुख द्वारा नायक के नयनों को बिल्कुल थका दिया ।

भाव यह है कि स्वेद बिन्दुओं तथा अरुणाई के कारण नायिका का मुख इतना सुन्दर हो गया था कि नायक टकटकी बाँधे देखता रह गया और इसी कारण उसके नेत्र थक गये ।

अलंकार—विभावना और वृत्त्यनुप्रास ।

प्रसंग—नायिका का नायक से बहुत प्रेम है । दोनों नंगे पैर कंकरीले रास्ते पर चल रहे हैं । नायक के कंकरीले रास्ते पर चलने से नायिका उसके कष्ट की कल्पना से ही 'सी-सी' कर उठती है । यह सीत्कार नायक को इतना प्रिय लगता है कि वह और अधिक जान बूझ कर कंकरीले रास्ते पर चलता है । इसी का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

नाक चढ़ै सीबी करै जितै, छबीली छैल ।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै, पिय कंकरीली गैल ॥२२९॥

चढ़ै=चढ़ा कर । सीबी=सी-सी की ध्वनि । छैल छबीली=सुन्दर स्त्री । गहै=पकड़ता है । गैल=रास्ता ।

अर्थ—यह सुन्दर स्त्री नाक चढ़ा कर जितना ही अधिक 'सी-सी' करती है, नायक उतना ही अधिक बार-बार भूल कर कंकरीला रास्ता ही पकड़ता है, अर्थात् बार-बार कंकरीले रास्ते पर हो जाता है ।

अलंकार—असंगति ।

प्रसंग—नायक नायिका के प्रथम मिलन में दोनों के मुँह से कोई बात नहीं निकलती । दोनों एक दूसरे को लालसा के साथ देखते रह जाते हैं । इसी का वर्णन एक स्त्री दूसरी सखी से सम्मुख कर रही है—

दोऊ चाह भरे कछू, चाहत कह्यो कहैं न।
नहिं जाँचक सुनि सूम लौं, बाहर निकसत बैन ॥२३०॥

चाह=लालसा, प्रेम। जाँचक=याचक, भिखारी। सूम=कजूस। बैन=वचन।

अर्थ—दोनो लालसा से भरे हुए और एक दूसरे से कुछ कहना चाहते है परन्तु कुछ कहते नही बनता, उनके वचन उसी प्रकार मुँह से बाहर नही निकलते जैसे कि कजूस आदमी यह सुनकर, भिखारी दरवाजे पर आया हुआ है, घर के दरवाजे तक नही आता।

अलंकार—उपमा।

प्रसग—नायिका कृष्ण अर्थात् नायिका के सम्बन्ध मे अपनी सखी से कह रही है—

कारे बरन डरावनौ, कत आवत यहि गेह।
कइ बा लख्यौ सखी, लखै, लगे थरहरी देह ॥२३१॥

कारे वरन=काले रग वाला। डरावनौ=डराने वाला। कत=क्यो। कइ बा=कई बार। थरहरी लगे=कपकपी चढ आती है।

अर्थ—यह काले रग वाला और डरावना व्यक्ति इस घर मे क्यो आया करता है ? हे सखी ! मैंने इसे यहाँ कई बार देखा है और इसे देख कर ही मेरे शरीर मे कपीकपी चढ आती है।

कपीकपी नायिका को चढती अवश्य है, परन्तु भय के कारण नही, अपितु प्रेम के कारण कप नामक सात्विक भाव होने लगता है।

अलकार—व्याजोक्ति।

प्रसग—नायिका झूला झूलते हुए झूले से गिर पड़ी। उसे नायक ने किस प्रकार बीच मे ही सभाल लिया, इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

हेरि हिंडोरे गगन तें, परी परी सी टूटि।
धरी धाय पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि ॥२३२॥

हेरि=देख कर। परी=अप्सरा। टूटि परी=गिर पडी। खरी करी=खडी की।

अर्थ—वह नायिका झूला झूलते हुए हिंडोले से इस प्रकार नीचे गिरी मानो आकाश से कोई परी उतर रही हो। परन्तु प्रियतम अर्थात् नायक ने दौड कर उसे अधबीच मे ही अर्थात् भूमि पर गिरने से पहले ही सभाल लिया और आलिगन इत्यादि का रस लूट कर उसको भूमि पर खडा कर दिया।

अलकार—उपमा और यमक।

प्रसग—नायिका की सखी नायिका से कह रही है—

नाम सुनत ही ह्वै गयो, तन औरै मन और।
दबै नहीं चित चढि रह्यो, अबै चढाये त्यौर ॥२३३॥

औरै=और ही। दबै नही=छिपता नही। त्यौर चढाये=त्यौरियाँ चढाने से।

अर्थ—उसका अर्थात् नायक का नाम सुनते ही तुम्हारा तन और मन कुछ और ही हो गया। वह तुम्हारे चित मे चढा हुआ अर्थात् पसन्द आया हुआ नायक त्यौरियाँ चढाने से छिप नही सकता।

नायक का नाम सुनते ही नायिका ने पुलकित और हर्षित होकर इस बात को प्रकट कर दिया कि वह नायक से प्रेम करती। अब इस बात को वह भौहे चढा कर छिपाना चाहती है, परन्तु इस तरह यह बात छिप थोडे ही सकती है।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति।

उपहार का आदर

प्रसग—नायक ने नायिका के पास एक माला भिजवाई थी। उसी के सम्बन्ध मे नायिका की सखी नायक से कह रही है—

नैको उहि न जुदी करी, हरषि जु दी तुम माल।
उर तैं बास छुट्यो नहीं, बास छुटे हू लाल ॥२३४॥

जुदी करी=अलग की। जु=जो। बास=निवास। बास=सुगन्ध।

अर्थ—हे लाल, खुश होकर तुमने जो माला उस नायिका को दी थी, उसको उसने क्षणिक मात्र के लिए भी अपने से पृथक् नहीं किया। यद्यपि उसे

माला की सुगन्ध समाप्त हो गई, फिर भी उसका उसके वक्षस्थल पर से निवास समाप्त नहीं हुआ।

भाव यह है कि माला पुरानी पड कर सुगन्धहीन हो गई, फिर भी प्रियतम की भेंट समझ कर नायिका ने उसे उतारा नहीं।

अलकार—विरोधाभास और यमक।

प्रसंग—सखी नायक की दशा का वर्णन करते हुए दूसरी सखी से कह रही है—

परसत पोछत लखि रहत, लगि कपोल के ध्यान।
कर लै प्लौ पाटल बिमल, प्यारिहिं पठये पान॥२३५॥

परसत=छूता है। ध्यान लगि=स्मरण करते हुए। पाटल=गुलाब। विमल=स्वच्छ। पठये=भेजे।

अर्थ—नायिका ने नायक के पास जो स्वच्छ गुलाव का फूल भेजा था, उसे प्रियतम अर्थात् नायक ने हाथ मे लेकर छुआ, फिर पोछा फिर नायिका के कपोलो का स्मरण करके उसे देखता रहा और अन्त मे उसने बदले मे नायिका के लिए पान भेज दिये।

नायिका ने गुलाव का फूल यह सूचित करने के लिए भेजा कि मैं तुम्हारे प्रेम मे गुलाब की तरह रगी हुई हूँ। बदले मे नायक ने पान भेजे, जो इसके द्योतक है कि भले ही मेरे प्रेम की लाली बाहर प्रकट न हो, परन्तु वह मेरे हृदय मे विद्यमान है।

अलंकार—अनुप्रास और परिवृत्ति।

प्रसंग—नायक ने नायिका के लिए एक पखा भिजवाया था। उस पखे की हवा से नायिका को उल्टे स्वेद सात्विक हो आया। इसके सम्बन्ध मे नायिका की सखी नायक से कह रही है—

हित करि तुम पठयो लगे, वा बिजना की बाय।
टरी तपनि तन की तऊ, चली पसीने न्हाय॥२३६॥

हित=प्रेम। बिजना=पखा, व्यजन। बाय=वायु। टरी=समाप्त हो गई। तपनि=जलन। तऊ=फिर भी।

अर्थ—तुमने बहुत स्नेह पूर्वक जो पखा भेजा था, उसकी वायु लगते ही उसके शरीर की जलन तो मिट गई, परन्तु फिर भी वह पसीने से नहा गई।

प्रियतम के भेजे पत्रे से विरह ताप समाप्त हो गया और आनन्द के मारे पसीना आ गया।

अलकार—विभावना।

प्रसग—नायक ने अपने हाथ से नायिका को माला पहनायी। उसके कारण नायिका पर आ जाने वाली विलक्षण चमक का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

अपने कर गुहि, आपु उठि, हिय पहिराई लाल।
नौलसिरी औरै चढी, मौलसिरी की माल ॥२३७॥

गुहि= गूंथ कर। नौल सिरी=नई शोभा, नवल श्री। मौलसिरी=वकुल नामक फूल।

अर्थ—नायक ने अपने हाथ से गूथ कर और स्वय उठ कर नायिका के गले मे मौलसिरी की माला पहनाई। इस कारण नायिका पर एक नई ही शोभा विराज गई।

नायिका को गर्व हुआ और लज्जा के कारण उसका मुख आरक्त हो गया, जिससे उसकी शोभा असाधारण हो गई।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

प्रसग—दूती नायिका के सम्बन्ध मे नायक से कह रही है—

हसि उतारि हिय तें दई, तुम जु वाहि दिनं लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यों, वहै चुहुटनी माल ॥२३८॥

दई=दी। वाहि दिन=उस दिन। चुहुटनी=रत्ती, गुजा।

अर्थ—हे लाल, उस दिन तुमने जो रत्तियो की माला अपने गले मे से उतार कर हसते हुए उसे दे दी थी, वह माला ही उसके प्राणो को कपूर की तरह सभाल कर रखे हुए है। अर्थात् वह माला न होती, तो उसके प्राण कपूर की तरह उड जाते।

नायिका नायक के विरह मे बहुत व्याकुल है। नायक की दी हुई घुघचियो की माला उसके लिये सहारा बनी हुई है। कहा जाता है कि कपूर को यदि लौंग, मिर्च या रत्ती आदि के साथ रखा जाये, तो वह उडता नहीं, अन्यथा बहुत जल्दी उड जाता है।

अलकार—काव्यलिग।

प्रसंग—नायक ने नायिका के मस्तक पर टेढा तिलक लगा दिया है। वह उसी से फूली नही समा रही। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

कियो जो चिबुक उठाय कै, कंपित कर भरतार।
टेढोयै टेढी फिरत, टेढे तिलक लिलार ॥२३९॥

चिबुक=ठोडी, हनु। भरतार=पति। लिलार=माथा।

अर्थ—नायक ने उसकी ठोडी उठा कर अपने कांपते हुए हाथ से जो उसके माथे पर टेढा सा तिलक लगा दिया, उसके कारण घमड मे फूली हुई वह टेढी ही टेढी फिरती है, अर्थात् घमड से ऐंठी फिरती है, सीधे मुँह बात ही नही करती।

तिलक टेढा लग जाने का कारण नायक को हुआ कम्प सात्विक भाव है।

अलंकार—विभावना।

प्रसंग—नायक ने नायिका को एक माला दी थी। उससे वह कितनी आनन्दित हुई, इसका वर्णन नायिका की सखी नायक के सम्मुख कर रही है—

तुम सौतिन देखत दई, अपने हिय तें लाल।
फिरत डहडही सबनि में, वही मरगजी माल ॥२४०॥

दई=दी। अपने हिय ते=अपनी छाती से उतार कर। डहडही=प्रसन्न। मरगजी=कुम्हलाई हुई।

अर्थ—हे लाल, तुमने सब सौतो के देखते-देखते अर्थात् उनके सामने उस को अपने हृदय से उतार कर जो माला दी थी, वह यद्यपि अब कुम्हला गई है, फिर भी वह उसी को पहने सब स्त्रियो के बीच अत्यन्त प्रसन्न होकर घूमती फिरती है।

अलकार—विभावना।

परकीया नायिका

प्रसग—नायिका की सखी नायिका को समझा रही है—

को जानैं ह्वै है कहा, जग उपजी अति आगि।
मन लागैं नैनन लगे, चले न मग लग लागि ॥२४१॥

ह्वै है कहा=क्या होगा। आगि=आग। मग=रास्ता। लग=निकट।

अर्थ—ससार मे विचित्र प्रकार की वहुत वडी अग्नि पैदा हुई है। न जाने अब क्या होकर रहेगा? यह अग्नि ऐसी विचित्र है कि वह आँखो के परस्पर टकराने से उत्पन्न होती है और मन मे जा लगती है। हे प्यारी, तू इस रास्ते के पास से भी मत गुजरना।

लोहा, पत्थर आदि कठोर वस्तुओ के टकराने पर अग्नि उत्पन्न होती है और वह घास-फूस जैसी सूखी वस्तुओ मे लगती है। परन्तु यह विलक्षण अग्नि आँख जैसी कोमल वस्तुओ के वह भी केवल उनकी दृष्टि के आपस मे छू जाने से भडक उठती है और मन जैसे सरल पदार्थ मे फैल जाती है।

अलंकार—असंगति।

प्रसग—नायिका की चेष्टाओ को स्मरण करके नायक नायिका की सखी से कहता है—

फेरु कछुक करि पौरि तें, फिरि चितई मुसुक्याय।
आई जामन लेन तिय, नेहै गई जमाय ॥२४२॥

फेरु=वहाना। पौरि=देहली, दरवाजा। चितई=देखा। जामन=दूध को जमाने के लिए डाला जाने वाला दही। नेहै=प्रेम को।

अर्थ—वह नायिका जामन लेने आई थी। जब जामन लेकर लौटने लगी तो उसने देहली तक पहुँच कर किसी वहाने से मुह मोड कर मुस्कराकर मेरी ओर देखा। इस प्रकार वह आई तो थी जामन लेने, परन्तु मेरे हृदय मे अपना प्रेम जमा गई, अर्थात् पक्का कर गई।

अलकार—पर्यायोक्ति।

प्रसग—नायिका की दूती नायिका का वर्णन करते हुए नायक ने कह रही है—

थाकी जतन अनेक करि, नेकु न छाडति गैल।
करी खरी दुबरी सु लगि, तेरी चाह चुरैल ॥२४३॥

गैल=रास्ता। खरी=बहुत अधिक। दुबरी=दुबली। चाह चुरैल= इच्छा रूपी चुडैल ने।

अर्थ—मैं अनेक यत्न करके थक गई, परन्तु वह तो प्रेम के मार्ग को जरा भी छोडती नही। तेरी चाह अर्थात् कामना रूपी चुडैल ने उसे लगकर बहुत ही दुर्बल बना दिया है।

कहा जाता है कि यदि किसी को चुडैल लग जाये, तो वह उसका खून पी-पीकर उसे सुखा डालती है। यहाँ पर दूती नायक से कह रही है कि तुझे प्राप्त करने की इच्छा रूपी चुडैल नायिका को लग गई है और किसी प्रकार उसे छोडती नही, जिससे वह बहुत दुबली हो गई है।

अलंकार—रूपक और विशेषोक्ति।

प्रसग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

नेह न नैननि को कछू, उपजी बडी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय ॥२४४॥

नेह न=स्नेहन या प्रेम न। बलाय=विपत्ति।

अर्थ—आँखो के लिए स्नेह एक बडी विपत्ति बन गई है। दशा यह हो गई है कि ये सदा जल से भरे रहते है, और फिर भी इनकी प्यास नही बुझती।

स्नेहन आयुर्वेद मे चिकित्सा का एक अग है, जिसमे रोगी को तेल पिलाया जाता है। इसमें कई बार गडबड होने से रोगी की यह दशा हो जाती है कि उसे बहुत प्यास लगती है, जो किसी तरह बुझने मे नही आती। स्नेह के दो अर्थ है प्रेम और तेल। यहां भाव यह है कि आँखें स्नेहन के फेर मे पड़ कर इस न बुझने वाली तृषा की विपत्ति मे पड गई है।

अलंकार—श्लेष, विशेषोक्ति और अपह्नुति।

प्रसग—नायिका सखी से कह रही है—

कौनें हू कोटिन जतन, अब कहि काढ़ै कौन।
भो मन मोहन रूप मिलि, पानी में को लौन ॥२४५॥

कोटिन=करोडो। जतन=प्रयत्न। काढ़े = निकाले। मोहन रूप = रूप

मनमोहक रूप मे। लौन = नमक। भौ = हो गया है।

अर्थ—अब चाहे करोडो यत्न क्यो न कर लो, परन्तु अब मेरे मन को कोई बाहर नही निकाल सकता। क्योंकि वह तो नायक के मन मोहक रूप मे मिल कर पानी मे घुले नमक जैसा हो गया है।

जैसे नमक पानी मे घुल जाता है और उसे पृथक् कर पाना कठिन होता है, उसी प्रकार नायिका का मन नायक के रूप मे लीन हो गया है।

अलकार—दृष्टान्त और अनुप्रास।

प्रसग—नायिका निन्दा करने वाली पडौसिनों के सम्बन्ध मे अपनी सखी से कह रही है—

दुखहाइनु चरचा नहीं, आनन आनन आन।
लगी फिरति ढूका दिये, कानन कानन कान॥२४६॥

दुखहाइन = अभागिनो, यह कोसने के लिए प्रयुक्त होने वाला एक बोलचाल का शब्द है। आनन = मुख। आन = अन्य। ढूका देना = छिप कर कोई बात सुनना।

अर्थ—इन अभागिनो के मुख मे एक मेरी बात को छोड कर अन्य कोई चर्चा ही नही है। मेरी निन्दा करने के लिए ये वन-वन मे कान लगाये हमारी बातें छिप कर सुनने के यत्न मे लगी रहती है।

अलकार—यमक।

प्रसंग—सखी नववधू नायिका को शिक्षा देते हुए कह रही है—

मन न धरति मेरो कह्यो, तू आपने सयान।
अहे परनि पर प्रेम की, परहथ पारनि प्रान॥२४७॥

मन न धरति = मानती नहीं। सयान = चतुरता। परहथ = दूसरे के हाथ मे। पारनि = डाल देना। परनि = पडना।

अर्थ—तू अपने सयानेपन के अभिमान मे मेरा कहना मानती ही नही। पर पुरुष के प्रेम मे पडना दूसरे के हाथो मे अपने प्राण सौंप देना है।

नायिका पर पुरुष से प्रेम करने की ओर उन्मुख है। सखी उसे समझाती है कि पर पुरुष से प्रेम करना अपने प्राण दूसरे के हाथो मे अर्पित कर देना है।

अलकार—हेतु।

प्रसंग—सखी परकीया नायिका से कह रही है—

मैं तोसों कै बा कह्यो, तू जनि इन्हैं पत्याय।
लगालगी करि लोयननि, उर में लाई लाय ॥२४८॥

कै बा = कितनी बार। जनि = मत। पत्याय = भरोसा कर। लगालगी = मिलन। लाय = लाग, सेंध।

अर्थ—मैंने तुझ से कितनी बार कहा था कि तू इन आँखों का विश्वास मत कर। अब वही हुआ न, कि इन आँखों ने लगालगी करके अर्थात् चोरी छिपे मिल जुल कर छाती में सेंध लगवा दी, जिसके फलस्वरूप हृदय चोरी हो गया।

अलंकार—असंगति।

प्रसंग—परकीया नायिका परदे के छिद्रों में से नायक को देख रही है। इस सम्बन्ध मे सखी नायक से कह रही है—

देखत कछु कौतुक इतै, देखौ नैंकु निहारि।
कब की इकटक डटि रही, टटिया अँगुरिन फारि ॥२४९॥

कौतुक = तमाशा। नैंकु = तनिक। इकटक = टकटकी बाँधे। डटि रही=खड़ी हुई है। टटिया = परदा।

अर्थ—यदि तुम कुछ कौतूहल देखना चाहते हो, तो तनिक इस ओर निहारो। यह बेचारी कितनी देर से परदे को अगुलियों से अलग करके यहाँ टकटकी बाँधे हुए खड़ी है, अर्थात् परदे की सन्ध मे से तल्लीनता से तुम्हें देख रही है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

प्रसंग—नायिका दूती से अधीरतापूर्वक नायक के सम्बन्ध में पूछती है। उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

फिरि फिरि बूझति, कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यों बात ॥२५०॥

फिरि फिरि = बार बार। अली = सखी। गात=शरीर।

अर्थ—वह नायिका बार-बार दूती से पूछती है यह बता कि उन साँवरे

गात (शरीर) वाले नायक ने क्या कहा है ? तूने उसको कहाँ और क्या करते हुए देखा था ? और बातचीत किस प्रकार आरम्भ हुई ?

अलकार—स्वभावोक्ति ।

दूती का महत्व

प्रसग—दूती के महत्व का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

कालवूत दूती बिना, जुरै आन उपाय।
फिरि ताके टारे बनै, पाके प्रेम लदाय ॥२५१॥

कालवूत = यह वह ढाँचा होता है, जिसे बनाकर उस पर ईटो की मेहराव तैयार की जाती है । बाद मे ढाँचे को हटा देते है और पक्की हो जाने के कारण मेहराव अपने सहारे खडी रहती है । लदाव = लदाय, वह सामग्री ईंट, चूना इत्यादि, जिससे मेहराव बनाई जाती है । पाके = पक्का हो जाने पर ।

अर्थ—प्रेम की मेहरावदार छत दूती रूपी कालवूत के बिना अन्य किसी उपाय से टिक नही सकती । परन्तु जब प्रेम रूपी लदाव पक्का हो जाये, तब उसी दूती रूपी कालवूत को हटा देने से ही बात बनती है ।

भाव यह है कि प्रेम का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये शुरू मे तो दूती अनिवार्य होती है, परन्तु बाद मे उसको टाल देना ही अच्छा रहता है ।

अलकार—रूपक ।

प्रसग—नायक ने दूती से यह अनुरोध किया कि वह नायिका के साथ उसके मिलन का कोई उपाय करे । उसके उत्तर मे दूती कह रही है —

अब तजि नाउ उपाउ को, आयो सावन मास ।
खेल न, राहिबो खेम सों, कँप-कुसुम की बास ॥२५२॥

नाउ=नाम । उपाउ = उपाय । खेम=क्षेम, कुशल, सही-सलामत । कँप कुसुम = कदम्ब पुष्प । बास = सुगन्ध ।

अर्थ—अब उपाय का नाम न लो अर्थात् उपाय सोचने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योकि सावन का महीना आ गया है । इस सावन के महीने में कदम्ब पुष्पों की गन्ध पाने के बाद शान्ति मे सकुशल रहना कोई खेल नहीं है ।

भाव यह है कि श्रावण मास मे कदम्ब पुष्पो की गन्ध के कारण वह परकीया नायिका भी स्वय तुमसे मिलने को उत्सुक होगी। इसलिए उपाय अनावश्यक है। 'खेल नहीं हैं' का भाव है कोई सरल काम नही।

अलकार—लोकोक्ति।

प्रसंग—दूती नायक से कह रही है—

रह्यौ पैंज कीन्हौं जु मैं, दीन्ही तुमहिं मिलाय।
राखौ चम्पकमाल ज्यौं, लाल गरे लपटाय ॥२५३॥

पैंज = प्रतीज्ञा, प्रण। गरे = गले मे।

अर्थ—हे लाल, मैंने तुमसे जो प्रतीज्ञा की थी, वह रह गई अर्थात् पूरी हो गई, क्योकि मैंने इस नायिका को तुमसे लाकर मिला दिया। अब तुम इसे चम्पक की माला के समान गले मे लिपटा कर रखो।

भाव यह है कि नायिका परकीया है और उसको नायक के पास तक लाने मे अनेक विघ्न थे, जिन्हे पार करके दूती उसे नायक के पास तक लाई है।

अलकार—उपमा।

प्रसंग—नायक के कहने पर दूती नायिका को नायक के पास ले आई है और उससे कह रही है—

नहिं हरि लौं हियरे धरो, नहिं हर लौं अरधंग।
एकतही करि राखिये, अंग अंग प्रतिअग ॥२५४॥

हियरे = हृदय मे। हरि = विष्णु। हर = महादेव। अरधग = आधे अग मे। एकतही करि = एकत्र करके अर्थात् मिलाकर।

अर्थ—जैसे विष्णु लक्ष्मी को अपने हृदय से लगा कर रखते है, तुम केवल उस तरह इसे हृदय से लगा कर मत रखना। जैसे महादेव पार्वती को अपने आधे अग मे रखते है, उस तरह भी तुम इसे मत रखना। तुम तो इनके अग-प्रत्यग के साथ अपने अग-प्रत्यग को मिला कर रखना।

भाव यह है कि सर्वांग से सर्वांग का मिलन होने पर ही तुम्हें इनके सर्वांग सुखदायनी होने का अनुभव हो सकेगा। साथ ही यह भी ध्वनित है

कि नायिका केवल आलिंगन चुम्बन नहीं, अपितु रति के लिए भी लालायित है ।

अलंकार—उपमा ।

प्रसंग—दूती नायक से कह रही है—

> ल्याई लाल बिलोकिये, जिय की जीवनमूलि ।
> रही भौन के कोन में, सोनजुही सी फूलि ॥२२५॥

ल्याई = लाई हूँ । जिय की = प्राणों की । जीवनमूलि = जीवन की जड़, अर्थात् बहुत प्रिय । भौन = भवन ।

अर्थ—हे लाल, देखिये मैं आपकी प्राणप्रिया नायिका को आपके पास ले आयी हूँ । उधर देखिये घर के कोने में वह कैसी पीली चमेली सी खिल रही है ।

ध्वनित यह है कि नायक ने दूती से अनुरोध किया था कि वह किसी तरह नायिका को उसके घर ले आवे । अब दूती अपनी सफलता बखान रही है ।

अलंकार—उपमा ।

प्रसंग—दूती परकीया नायिका से नायक के रूप का वर्णन करते हुए कह रही है—

> मोहि भरोसो रीझि है, उझकि झाकि इकबार ।
> रूप रिझावनहार वह, ये नैना रिझवार ॥२५६॥

रिझि है = मुग्ध हो जायगी । उझकि = उचक कर । रिझावनहार = मोहक । रिझवार = रीझने वाले, प्रेमी ।

अर्थ—मुझे पूर्ण विश्वास है कि तू उसे अर्थात् नायक को देख कर मुग्ध हो जायेगी । एक बार उचक कर गली में झांक तो ले । वह रूप बहुत ही मोहक है और तेरे ये नयन रीझने वाले अर्थात् प्रेमी है ।

नयन प्रेमी हों और रूप मोहक हो, तो प्रेमी होगा क्यों नहीं ?

अलंकार—भ्रम ।

प्रसंग—दूती नायिका के हाथों की सुन्दरता का वर्णन करके नायक को आकर्षित करती है—

> बडे कहावत आप को, गरुवे गोपीनाथ ।
> तौ बदिहौं जौ राखिहौ, हाथन लखि मन हाथ ॥२५७॥

गरुवै = गम्भीर, धैर्यवान । वदिहौं = मान लूगी ।

अर्थ—हे गोपियो के नाथ कृष्ण, तुम अपने आपको वडा और गम्भीर कहलाते हो । परन्तु मैं तो तुम्हारा वडप्पन तव मानूँगी, जव तुम उसके सुन्दर हाथो को देखकर भी अपना मन अपने हाथ मे रख सको ।

भाव यह है कि उसके हाथ इतने सुन्दर है कि चाहे तुम कितने ही धैर्यशाली और अडिग क्यो न होवो, परन्तु उसके हाथो को देख कर तुम्हारा मन अपने हाथ मे न रहेगा ।

अलंकार—सम्भावना ।

प्रसग—दूती नायिका की वाणी का माधुर्य वताते हुये नायक से कह रही है —

छिनकु छवीले लाल वह, जौ लगि नहिं वतराय ।
ऊख महूखपियूख की, लागि भूख न जाय ॥२५८॥

छिनकु = क्षण भर । जौ लगि = जव तक । वतराय = वात करती है । ऊख = गन्ना । महूख = मधु । पियूख = अमृत, पीयूप ।

अर्थ—हे छवीले लाल, जव तक वह तुझसे क्षण भर वात नही कर लेती, तव तक तुम्हारी गन्ना, शहद और अमृत चखने की भूख अर्थात् लालसा जायेगी नही ।

गन्ना, शहद और अमृत मधुर है, परन्तु इनकी मधुरता तभी तक मधुर प्रतीत होती है जव तक उस नायिका की मीठी वोली न सुन ली जाये । उसकी वोली की मधुरता के आगे ये फीके जान पडते हैं ।

अलंकार—सम्वन्धातिशयोक्ति और वृत्त्यनुप्रास ।

अभिसार

प्रसग—परकीया नायिका से उसकी सखी अभिसार के लिए चलने को कह रही है—

गोप अथाइन ते उठे, गोरज छाई गैल ।
चलि वलि अभिसारिके, भली संझौखी सैल ॥ २५९ ॥

अथाइन ते = गोष्ठियो से । गोरज = गौओ के चलने से उडी हुई धूल । गैल = रास्ता । अभिसारिके = अभिसार के लिए अर्थात् प्रियतम मे मिलने के

लिए जाने वाली। सझौखी = सायकालीन। सैल = सैर।

अर्थ—ग्वाले लोग अपनी-अपनी गोष्ठियो से उठ गये है। रास्तो मे गौओ के चलने से उडी हुई धूल छाई हुई है। हे सखी, मैं तुझ पर वलि जाती हूँ तू इस समय प्रियतम से मिलने के लिए चल। सन्ध्या काल की सैर बहुत अच्छी होती है।

भाव यह है कि सन्ध्या का समय है। तू सैर करने का वहाना करके घर से निकल चल। ग्वाले अपनी बैठको मे से उठ ही गये है, इसलिए कोई देख भी नही पायेगा कि तू कहाँ जा रही है।

अलंकार—काव्यलिग।

प्रसग—दूती नायिका को अभिसार के लिए ले जाना चाहती है और नायिका तरह-तरह की शकाएँ करके आनाकानी कर रही है इस पर दूती उनसे कहती है—

उठि ठक ठक एतो कहा, पावस के अभिसार।
जानि परैगी देखियो, दामिनि घन अंधियार ॥२६०॥

ठक ठक = आनाकानी, एतराज। एतौ = इतदा। अभिसार = प्रियतम के पास गमन। दामिनी = विजली। घन अन्धियार = मेघो के कारण हुए अन्धकार मे।

अर्थ—अरी, उठ भी, वर्षा काल के अभिसार में इतने सोच-विचार या आनाकानी की क्या आवश्यकता है ? यदि किसी ने तुझे देख भी लिया, तो भी तू वादलो के कारण हुए अन्धकार मे विजली सी मालूम होगी।

भाव यह है कि तुझे देख कर अधिक से अधिक लोग यही समझ लेंगे कि वादलो मे विजली चमक रही है। इससे अधिक सन्देह किसी को न होगा। तुझे कोई नही पहचान पायेगा।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायक नायिका की सखी से प्रार्थना करता है कि तू नायिका को अभिसार के लिए बुला ला। सखी उसकी लालसा को और बढाने के लिए कहती है कि उसका आना तो कठिन है—

सघन कुंज, घन घनतिमिर, अधिक अँधेरी रात।
तऊ न दुरिहै श्याम यह, दीप सिखा सी जात ॥२६१॥

सघन = घना। घनतिमिर = बादलों का अन्धेरा। दुरिहै = छिपेगी। जात = जाती हुई।

अर्थ—जैसा तुम कहते हो, वह ठीक है कि कुंज खूब घने है बादलो के कारण अन्धेरा भी घना हो गया है और रात भी बहुत अन्धेरी है। परन्तु हे कृष्ण! वह नायिका तो इतने अन्धेरे मे भी आती हुई छिपेगी नही, अपितु अपने लावण्य के कारण दीप शिखा की भाँति दूर से ही चमकेगी। अत उसको यहाँ ला पाना कठिन है।

अलकार—उपमा और विशेषोक्ति।

प्रसग—सखी नायिका को नायक के पास चलने के लिए प्रेरणा देने के निमित्त कह रही है—

उग्यो सरद राका ससी, करति न क्यो चित चेत।
मनो मदन छितिपाल को, छाँहगीर छवि देत ॥२६२॥

राका = पूर्णिमा की रात्रि। चेत = सावधानी, होश। छितिपाल = राजा। छाँहगीर = छत्र या चन्दोवा।

अर्थ—शरद ऋतु की पूर्णिमा का चन्द्रमा आकाश मे उदित हुआ है। वह ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो कामदेव रूपी राजा का चन्दोवा अथवा छत्र तना हुआ हो। तू अब भी सचेत क्यो नही होती?

भाव यह है कि शरद ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि ऐसी मनमोहक और उद्दीपक है कि तुझे अब मान त्याग कर अभिसार के लिए नायक के पास चलना ही चाहिए।

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नायिका सखी से भी छिपा कर अभिसार के लिए चली थी, परन्तु सखी ने उसे जाते देख लिया और यह भी ताड़ लिया कि वह कहाँ चली है। इस पर सखी कह रही है—

निसि अँधियारी, नील पट, पहिरि चली पिय गेह।
करौ दुराई क्यो दुरै, दीप सिखा सी देह ॥२६३॥

नील = काला। दुराई = छिपाने पर। दुरै = छिपे।

अर्थ—हे सखी, यह ठीक है कि रात अन्धेरी है और तू काले वस्त्र पहन

कर प्रियतम के घर की ओर चली है। परन्तु यह दीप शिखा सी कान्तिमान् देह छिपाने से किस प्रकार छिप सकती है? अर्थात् किसी प्रकार भी नही छिप सकती।

अलकार—उपमा और विशेषोक्ति।

प्रसग—नायिका अभिसार के लिए नायक के पास जा रही थी। रास्ते मे चन्द्रमा के छिप जाने से सब ओर अन्धकार छा गया। इस पर घबराई हुई नायिका को उसके साथ चलती हुई सखी सान्त्वना देते हुई कह रही है—

छप्यो छपाकर, छिति छयो, तम ससिहरि न सभारि।
हसति हंसति चलि ससिमुखी, मुख ते घूंघट टारि॥ २६४॥

छप्यो = छिप गया। छपाकर = क्षपा कर, चन्द्रमा। ससिहरि न = घबरा मत। टारि = हटा कर। छिति = पृथ्वी।

अर्थ—अरी लाडली, चन्द्रमा छिप गया है और पृथ्वी पर अन्धेरा छा गया है। इससे घबरा मत। तू अपने आपको सभाल और हे शशिमुखी, अपने मुख पर से घूंघट हटा कर हसती-हसती आनन्द से चल।

भाव यह है कि चन्द्र के छिप जाने से कोई बाधा विशेष इसलिए नही हुई कि तेरा मुख जो चन्द्रमा के समान कांतिमान है, घूघट हटा देने पर चन्द्रमा का काम भली-भांति दे देगा।

अलकार—काव्यलिग।

प्रसग—नायिका चांदनी रात मे अभिसार के लिए जा रही है। उसका वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

जुवति जोन्ह में मिलि गई, नेकु न परति लखाय।
सोंधे के डोरन लगी, अली चली सग जाय॥२६५॥

जुवति = युवती। जोन्ह = ज्योत्स्ना, चान्दनी। नेकु = जरा भी। सोंधे = सुगन्ध। डोरन = डोरी से। अली = १ सखी २ भ्रमर।

अर्थ—वह तरुणी नायिका चान्दनी रात मे अभिसार के लिए जाती हुई चांदनी मे इस प्रकार मिल गई कि जरा भी दिखाई न पडती थी। उसके साथ चलने वाली सखी भी उसे आँखो से नही देख पाती थी, परन्तु उसके

शरीर से निकलने वाली कमल की गध के सहारे ही वह भी भ्रमर की भाँति उसके साथ-साथ चली जा रही थी।

नायिका का रग चान्दनी के तुल्य होने के कारण वह दिखाई ही नही पडती थी। गन्ध से अनुमान होता था कि वह कहाँ है ?

अलकार—मीलित और उन्मीलित।

प्रसग—नायिका को प्रियतम से मिलने की अभिलाषा है, इसलिए ज्यो-ज्यो सायकाल निकट आ रहा है, त्यो-त्यो उसकी अधीरता बढती जा रही है। इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करैं, लगी रहँचटे बाल॥२६६॥

खरी = बहुत। उताल = अधीर। झमकि झमकि = उत्साहपूर्वक,अथवा अपने आभूषणो को झमकाती हुई। टहलैं = घर का काम। रहँचटा = आनद की लालसा, चाट।

अर्थ—ज्यो-ज्यो रात्रि निकट आ रही है, त्यो-त्यो बाला अर्थात् नायिका बहुत ही अधीर होकर जल्दी-जल्दी उत्साहपूर्वक घर का काम समाप्त करने मे लगी है, क्योकि उसके मन में प्रियतम से मिलने की चाट लगी हुई है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—कोई कृष्णाभिसारिका रात्रि के पहले भाग में अभिसार के लिए गई थी। उसका अनुमान था कि वह चन्द्रोदय से पहले ही वापस लौट आयेगी। परन्तु वहाँ उसे बहुत देर लग गई और लौटते समय चन्द्रमा रास्ते मे ही निकल आया। वह इस बात से चिन्तित थी कि कही रास्ते मे लोग उसे देख न लें। परन्तु यह समस्या कैसे हल हुई, इसका वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है—

अरी खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि।
संग लगे मधुपनि लई भागन गली अंधेरि॥२६७॥

खरी = बहुत। सटपट = घबराहट, गडबडी। बिधु = चन्द्रमा। मग = रास्ता। हेरि = देखकर। मधुपनि = भौंरो ने। भागन = भाग्य से।

अर्थ—हे सखी, आधे रास्ते मे चन्द्रमा को उदित होते देख कर मैं तो बहुत ही घबराहट मे पड गई थी। परन्तु मेरे सौभाग्य से मेरे साथ लगे हुए भ्रमरो ने गली को अन्धकारमय कर दिया।

यहाँ कल्पना यह है कि नायिका पद्मिनी है। उसके शरीर से सदा कमल की सुगन्ध निकलती रहती है और उसके लोभ मे भौंरे उनके पास उडते रहते हैं, यहाँ तक कि रात मे भी वे पीछा नही छोडते। वे भौंरे सख्या मे इतने अधिक थे कि उनके कारण सारी गली अधकारपूर्ण हो गई और किसी को नायिका दिखाई न पडी। यह विचित्र कविता है, जिसमे चमत्कार का अश तो है किन्तु रस का अश बिल्कुल नही है और पद्मिनी नायिका के साथ भ्रमरो के होने की कवि प्रौढोक्ति का जिसे ज्ञान न हो, उसके लिए इस दोहे मे कुछ भी आनन्द न होगा।

अलकार—समाधि।

परकीया-मिलन

प्रसग—परकीया नायिका नायक से प्रथम मिलन के समय जो चेष्टाएँ करती है, उनका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

भौंहनि त्रासति, मुख नटति, आँखनि सो लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर, इंची, आगे आवति जाति ॥२६८॥

भौंहनि = भौहो से। त्रासति = डराती है। नटति = मना करती है। ऐंचि = खीचकर। इची = खिची हुई।

अर्थ—वह नायिका भौहो से तो डराती है और मुख से 'नही-नही' कहती है। परन्तु अपनी आँखो से मानो नायक से लिपटती जाती है। अपने हाथ को खीचकर छुडाने का यत्न करती है, फिर भी नायक द्वारा खिची हुई आगे ही आगे आती जाती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका को अपने हृदय से लगाकर नायक कह रहा है—

ज्यों-ज्यो पावक लपट सी, तिय हिय सो लपटात।
त्यों-त्यो छुही गुलाब सी, छतिया अति सियराति ॥२६९॥

पावक = अग्नि । तिय = स्त्री । छुही = छुई हुई । सियराति = शीतल होती है ।

अर्थ—ज्यो-ज्यो आग की लपट के समान कान्तिमान यह स्त्री मेरे हृदय से लिपटती है, त्यो-त्यो मेरी छाती इस प्रकार शीतल होती है, मानो उस पर गुलावजल डाला जा रहा हो ।

अलकार—उपमा और विभावना ।

प्रसंग—नायक नायिका के सम्वन्ध मे अपने किसी मित्र से कह रहा है—

चुनरी श्याम सतार नभ, मुख ससि की अनुहारि ॥
नेह दबावत नींद लौं, निरखि निसा सी नारि ॥२७०॥

सतार = तारो से युक्त । नभ = आकाश । अनुहारि = समान । निसा = रात्रि ।

अर्थ—इसकी चुनरी ऐसी प्रतीत होती है मानो वह तारो से भरा आकाश है । इसका मुख चन्द्रमा के समान है । इस रात्रि जैसी नायिका को देख कर मुझे प्रेम नीद की तरह दवाये लेता है, अर्थात् अपने वश मे किये लेता है ।

जैसे रात आते ही नीद आने लगती है, उसी प्रकार इस नायिका को देख कर मेरे मन मे प्रेम उत्पन्न हो रहा है ।

अलंकार—रूपक और उपमा ।

प्रसग—परकीया नायिका के साथ कुज भवन मे रात भर विहार करने के पश्चात् सोये हुए नायक को जगा कर सखी कह रही है—

कुंज भवन तजि भवन को, चलिये नन्दकिशोर ।
फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर ॥२७१॥

कुज भवन = तरुओ का कुज । भवन = घर । चटकाहट = चट-चट की आवाज ।

अर्थ—हे नन्दकिशोर कृष्ण अब इस कुज-भवन को छोड़कर घर चलिए । गुलाव को कली खिलने लगी है और उनकी चट-चट की आवाज सब ओर उठ रही है ।

भाव यह है कि रात मे तो आप यहाँ विहार करते रहे, अब प्रभात हो गया है और लोग इधर आते होगे । उनके आने से पहले ही आप लोगो का घर लौट जाना भला है ।

अलकार—काव्यलिंग और लाटानुप्रास ।

प्रसग—नायक नायिका की भोली चितवन का स्मरण करके नायिका की सखी से कह रहा है—

> चितवनि भोरे भाय की, गोरे मुख मुसकानि ।
> लगनि लटकि आली गरे, चित खटकति नित आनि ॥२७२॥

भोरे = भोले । भाय = भाव । लगनि = लगना, मिलना । गरे = गले मे । नित = हमेशा ।

अर्थ—उस नायिका की वह भोलेपन के भाव से भरी हुई चितवन अर्थात् दृष्टि, उसके गौर वर्ण मुख पर खेलती हुई मुस्कराहट और उसका अपनी सखी के गले से लटक-लटक कर मिलना नित्य मेरे चित्त मे आ आकर खटकता रहता है ।

ये दृश्य ऐसे है, जिनकी स्मृति नायक के हृदय मे बार-बार आती है और इस स्मृति से उसका चित्र प्रेमातुर हो उठता है ।

अलकार—स्वभावोक्ति ।

प्रसग—नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

> छिन-छिन में खटकति सु हिय, खरी भीर में जात ।
> कहि जु चली अनही चितै, ओठनि ही बिच बात ॥२७३॥

खरी = बहुत । भीर = भीड़ । अनही चितै = बिना देखे ।

अर्थ—उस दिन बहुत भीड मे जाते समय वह बिना मेरी ओर देखे और ओठो ही ओठो मे कुछ बात कह कर जो चली गई थी, वह मेरे हृदय मे प्रति पल खटकती रहती है ।

भीड़ मे नायक को लज्जा के कारण नायिका ने भली भाँति नही देखा और धीमे से ओठो ही ओठो मे कुछ कहकर चली गई । नायक उसे सुन नहीं पाया । यह स्मृति उसके हृदय मे खटका करती है ।

अलंकार—स्मरण ।

प्रसग—नायक अपने मित्र से नायिका की उक्ति और चेष्टाओ के सम्बन्ध मे कह रहा है—

> रह्यो मोह मिलनो रह्यो, यों कहि गहो मरोर ।
> उतै सखिहि उराहनो, इत चितई मो ओर ॥२७४॥

मोह = प्रेम। मिलनो = मिलना जुलना। मरोर = रोषपूर्ण मुद्रा। उराह्नो = उलाहना। चितई = देखा।

अर्थ—एक ओर तो उसने सखियों को यह कह कर रोषपूर्ण मुद्रा बना कर उलाहना दिया कि तुम्हारा तो मेरे साथ सारा प्रेम भी समाप्त हो गया दीखता है और तुमने मिलना-जुलना भी बिल्कुल बन्द कर दिया है, और इसके साथ ही उसने मेरी ओर देखा।

भाव यह है कि नायिका सबकी उपस्थिति मे नायक से जो शब्द नही कह सकती थी, वे शब्द तो उसने उलाहने के रूप मे अपनी सखियो से कह दिये और नायक की ओर देख कर यह भी सकेत कर दिया कि ये वस्तुत नायक के लिए कहे गये है।

अलंकार—गूढोक्ति।

प्रसंग—नायक अपने किसी अन्तरग मित्र से कह रहा है—

देह लग्यो ढिग गेहपति, तऊ नेह निरबाहि।
नीची अंखियन ही इतै, गई कनखियन चाहि ॥२७५॥

देह लग्यो = शरीर से सटा हुआ। ढिग = पास। गेहपति = गृहपति, स्वामी। निरबाहि = निबाह कर। कनखियन = आँखो के कोने से। चाहि = देख कर।

अर्थ—यद्यपि उसका पति उसके शरीर से सटा हुआ पास ही बैठा था, फिर भी वह नीची आँखो से इस ओर कनखियो से देखती हुई प्रेम का निर्वाह कर ही गई।

यहाँ नायिका परकीया है। सम्भवत वह अपने पति के साथ किसी सवारी मे बैठी पास से गुजर रही है। जाते-जाते नीची दृष्टि से आँखो के कोने से उसने नायक को देख लिया है। इसी के सम्बन्ध मे नायक की उक्ति है।

अलकार—विभावना।

प्रसग—नायक नायिका के सम्बन्ध मे उसकी सखी से कह रहा है—

चितई ललचौं हैं चखनि, डटि घू घट पट माह।
छल सो चली छुवाय कै, छिनक छबीली छाँह ॥२७६॥

चितई = देखकर। ललचौं हैं = लालसा भरे।

अर्थ—उसने मुझे घूंघट के वस्त्र के अन्दर से स्थिरतापूर्वक लालसा भरी आँखो से देखा और उसके बाद चालाकी से मेरी छाया से अपनी छाया क्षण-भर के लिए छुवा कर वह सुन्दरी चली गई।

छाया से छाया छुवाने से यह सकेत प्रतीत होता है कि वह नायक से मिलन चाहती है। क्रिया विदग्धा नायिका।

अलकार—युक्ति और वृत्यनुप्रास।

प्रसग—नायिका के सम्बन्ध मे सखी सखी से कह रही—

ढीठौ दे बोलत हंसति, प्रौढ बिलास अपोढ़।
त्यौं त्यो चलत न पिय नयन, छकयेछ की नवोढ॥ २७७॥

ढीठो दै = धृष्टतापूर्वक। प्रौढ विलास = प्रौढा के समान विलास प्रदर्शित करती हुई। अपोढ = अप्रौढा, कच्ची उमर की। छकये = तृप्त कर दिये। छकी = मद से भरी हुई।

अर्थ—प्रौढाओ के सामान विलास प्रदर्शित करने वाली यह अप्रौढा अर्थात् नवयुवतीनायिका ज्यो-ज्यो ढिठाई प्रदर्शित करते हुए बोलती और हसती है, त्यो-त्यो इस मदभरी नवोढा अर्थात् नव विवाहिता के रूप को देख कर तृप्त हुए नायक के नयन उस पर से हिलते ही नही है, अर्थात् एकटक उसी को देखते है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका की चेप्टाओ का स्मरण करके नायक अपने मन मे कह रहा है—

त्रिवली नाभि दिखाय कँ, सिर ढकि सकुचि समाहि।
अली अली की ओट ह्वै, चली भली बिधि चाहि॥२७८॥

त्रिवली = पेट पर पड़ने वाली तीन रेखाएँ। सकुचि = शरमा कर। अली = नायिका। अलीकी=सखी की। भली विविधि = भली-भांति। चाहि= देख कर।

अर्थ—यह नायिका घूंघट निकालने के बहाने पेट पर पड़ने वाली तीनों रेखाओं और नाभि को दिखा कर संकोच में समाती हुई सी सखी की आड़ में होकर मुझे भली-भाँति देख कर चली गई। क्रिया विदग्धा नायिका।

अलकार—अनुप्रास और स्वभावोक्ति।

प्रसंग—नायक को देख कर नायिका ने जो चेष्टाएँ की, उनके सम्बन्ध मे नायक अपने किसी अन्तरग मित्र या सखी से कह रहा है—

देख्यो अनदेख्यो कियो अग अग सबै दिखाय।
पैठति सी तन में सकुचि, बैठी चितहिं लाजाय ॥२७६॥

देख्यो = देखना । अनदेख्यो कियो = अनदेखा करके । पैठति सी = प्रविष्ट होती हुई सी, समाती हुई सी । सकुचि = सकुचा कर । चितहिं = चित्त मे ।

अर्थ—नायिका इस बात को अनदेखा करके कि मैं उसे देख रहा हूँ, अपने सब अग-प्रत्यग मुझे दिखा कर और फिर एकाएक मेरी ओर देख कर, लजा कर सकोच के कारण अपने शरीर मे ही समाती हुई सी बैठी रही।

पहले तो वह, नायक उसे देख रहा है, इस बात को अनदेखा करती रही और अनेक प्रकार की चेष्टाओ से अपने अग-प्रत्यग उसे दिखा दिये। फिर एकाएक ऐसा जताया कि उसने नायक को अभी देखा है और इस कारण लज्जा से सिमटती सी बैठी रही।

अलकार—स्वभावोक्ति और पर्यायोक्ति।

प्रसंग—नायक और नायिका की चेष्टाओ को देख कर सखियाँ परस्पर बाते कर रही है—

बिहसि, बुलाय, बिलोकि उत, प्रौढ तिया रसघूमि।
पुलकि पसीजति पूत को, पिय चूम्यो मुख चूमि ॥२८०॥

बिलोकि उत = उस ओर देखकर। प्रौढ = परिपक्व आयु की अथवा परिपक्व बुद्धि वाली। तिया = स्त्री। रसघूमि = आनन्द मे भर कर। पुलकि = रोमांचित होकर। पसीजति = पसीने से तर होती है। पिय चूम्यो = प्रिय द्वारा चूमा हुआ।

अर्थ—वह परिपक्व यौवन वाली अथवा परिपक्व बुद्धि वाली नायिका आनन्द से भर कर, हस कर, अपने पास बुला कर और उस ओर अर्थात् नायक की ओर देख कर नायक द्वारा चूमे गये पुत्र के मुख को चूम कर रोमांचित होती है और पसीने से तर हो जाती है।

नायक और नायिका दोनो अन्य लोगो के समक्ष है, इसलिए वे एक दूसरे

का चुम्बन नही कर सकते। नायक ने अपने पुत्र का मुख चूमा, तो प्रौढा नायिका ने भी उस पुत्र को पास बुला कर नायक की ओर देखते हुए हँस कर उस पुत्र का मुख चूम लिया। इतने से ही उसे वैसा ही रोमांच और स्वेद हो आया, जैसा कि नायक के चुम्बन से होता।

अलकार—विभावना।

प्रसग—परकीया नायिका अपनी सखी से कह रही—

लरिका लेबैके मिसहि, लंगर मो ढिग आय।
गयो अचानक आगुरी, छाती छैल छुवाय ॥२८१॥

लरिका=लडका। ले वैके=लेने के। मिसहि=बहाने से। लगर=ढीठ। ढिग=पास। छैल-छैला।

अर्थ—वह ढीठ नायक लडके को अपनी गोदी मे लेने के बहाने मेरे निकट आकर अचानक अपनी अँगुली मेरी से छाती छुआ गया।

नायिका बालक को गोद मे लिये वैठी थी। नायक ने उस बालक को अपनी गोदी मे लेने का वहाना किया और उस समय यह शरारत की।

अलकार=पर्यायोक्ति।

प्रसग—इस दोहे मे विहारी ने दूर की कल्पना की है कि नायक वेश वदल कर नाइन के रूप मे नायिका के वाल सँवार रहा है। नायिका हाथ के स्पर्श से और बाल सँवारने की रीति से यह समझ लेती है कि यह नाइन नहीं नायक ही है। वह अपने मन ही मन मे कह रही है—

वेई कर, व्यौरनि वहै, व्यौरा कौन विचार।
जिनहीं उरझ्यो मो हियो, तिनही सुरझे वार ॥२८२॥

व्यौरनि=वाल सँवारने का ढंग। व्यौरा=रहस्य। उरझ्यो = उलझा हुआ है। सुरझे वार = वाल सुलझाये है।

अर्थ—वैसे ही हाथ है और वाल सवारने का ढग भी वही है। सोच कर तो देख कि इनमे क्या रहस्य है। कही यह तो नही कि मेरा हृदय जिनमे उलझा हुआ, वही मेरे वाल सुलझा रहे है?

जैसे नाइन के हाथ और वाल सँवारने का ढग है, वैसे ही नायक के भी है। इन्ही से नायिका अनुमान कर रही है।

अलकार—अनुमान।

प्रसग—नयिका नायक के साथ अटारी पर चढी वादलो को देख रही है। उसी का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

छिनकु चलति ठिठकति छिनकु, भुज प्रीतम गर डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा, विज्जुछटा-सी नारि ॥२८३॥

छिनकु = क्षण भर। ठठकति = ठहर जाती है। गर = गले मे। विज्जु छटा = बिजली की चमक।

अर्थ—वह स्त्री अर्थात् नायिका विजली की छटा के समान है। वह अटारी पर चढ़ी हुई वादलो को देख रही है। कभी वह प्रियतम के गले मे बाहे डाल कर कुछ दूर चलती है और फिर क्षण भर मे ठिठक कर खडी हो जाती है।

नायिका का चलना और खडा हो जाना विजली के चमकने और छिप जाने जैसा प्रतीत होता है। स्वकीया नायिका।

अलकार—अनुप्रास और लुप्तोपमा।

प्रसग—नायिका के पास बैठ कर नायक आसव पीने के लिये तैयार था। परन्तु नायिका के रूप को देख कर वह उसी की ओर देखता रह गया। और आसव पीने की वारी ही नही आई। इसी दृश्य को देख कर एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

रूप सुधा आसव छक्यौ, आसव पियत बनै न।
प्याले ओठ प्रिय बदन, रह्यौ लगाये नैन ॥२८४॥

आसव = मदिरा। छक्यौ = तृप्त। प्रिया वदन = प्रियतमा के मुख की ओर।

अर्थ—प्रियतमा के सुन्दर मुख की सुधा के आसव से तृप्त हुए नायक से मदिरा पीते ही नही बनती। वह प्याले को ओठो से लगाये और अपने नैनो को प्रियतमा के मुख पर गडाये बैठा रह गया।

अलकार—तुल्ययोगिता।

प्रसंग—नायक नायिका के वाल गूँथ रहा है। इस तरह दोनो ने स्वेद अर्थात् पसीना आ रहा है। नायिका अपने स्वेद सात्विक भाव को छिपाने के लिए विनोद में कहती है।

रहौ, गुही बेनी लख्यो, गुहिबे को त्यौनार।
लागे नीर चुचान ये, नीठि सुखाये बार ॥२८५॥

गुही = गूँथ ली। रहौ = रहने दो। बेनी = वेणी। त्यौनार = तरीका कौशल। चुचान लागे = चूने लगे। नीठि = मुश्किल से, कठिनाई से।

अर्थ—रहने दो, तुम से वेणी गूँथ चुकी। तुम्हारा गूँथने का कौशल देख लिया। बडी कठिनाई से तो ये बाल सुखाये थे और तुम्हारे गुथने से इनसे फिर पानी चूने लगा।

अलंकार—विभावना और व्याजोक्ति।

प्रसंग—नायिका ने नाखूनों पर मेंहदी लगाई है। नायक जो उसका पति है पास ही बैठा है। उसकी निकटता के कारण नायिका को स्वेद सात्विक हो रहा है। इस पर नायिका नायक से कहती है—

नेकु उतै उठि बैठिये, कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जाति नहदी छिनकु, महदी सूखन देहु ॥२८६॥

उतै = उधर। गेहु गहि रहे = घर मे घुस बैठे हो। नहदी = नाखूनो मे लगाई हुई।

अर्थ—जरा उठ कर उधर बैठ जाओ। क्या घर घुसने बने हुए हो? अर्थात् घर से बाहर निकलते ही नहीं। यह नाखूनो मे लगाई हुई मेहदी, (पसीना आने के कारण) छुटी जा रही है, जरा इसे सूख तो जाने दो।

भाव यह है कि तुम पास रहोगे तो अँगुलियों मे पसीना आता रहेगा और मेंहदी सूख नहीं पायेगी।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

अर्थ—अरी, तू इस दही की हाँडी को छीके पर मत रख और उसे तू नीचे भी मत उतार। तू इस छीके को छुए हुए बहुत ही भली लग रही है। तू इसी प्रकार खडी रह।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

प्रसंग—नायिका की चेष्टाओ को स्मरण करके धृष्ट नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

मार्‌यौ मनुहारनि भरी, गार्‌यौ खरी मिठाहिं।
वाकौ अति अनखाहटौ, मुसुकाहट बिन नाहिं ॥२८८॥

मार्‌यौ = मार। मनुहारनि = मन हरने वाली चेष्टाएँ। गार्‌यो = गालियाँ। अनखाहटौ = रोष। वाकौ = उसका।

अर्थ—उसकी मार भी मन हरने वाली चेष्टाओ से अथवा प्रेम से भरी हुई होती है। उसकी गालियाँ भी बहुत मीठी प्रतीत होती है। उसका अत्यधिक रोष भी मुस्कराहट से शून्य नही होता।

भाव यह है कि धृष्ट नायक को नायिका का रोष, गालियाँ और मार-पीट भी आनन्द देने वाली चेष्टाएँ ही जान पडती हैं।

अलकार—विरोधाभास।

प्रसंग—उपवन में नायक और नायिका घूमने गये थे। वहाँ नायिका ने ऊँचाई पर लगे हुए फूलो को तोड़ने का यत्न किया। उस दृश्य का वर्णन अपने अन्तरग मित्र से अथवा नायिका की सखी से कर रहा है—

बढ़ति निकसि कुचकोर रुचि, बढ़त गौर भुज मूल।
मन लुटिगो लोटनि चढ़त, चूंटत ऊंचे फूल ॥२८९॥

निकसि = निकल कर। कुच कोर = उरोजो के किनारे। भुजमूल = पखौरा। लुटिगो = लुट गया। खोटनि = त्रिवली पर। चूंटत = चुनते हुए।

अर्थ—जब वह नायिका ऊँचाई पर लगे हुए फूलो को चुनने लगी, तब उसके उरोजो की नोको की कान्ति बढकर बाहर को निकलने लगी और उसके गोरे भुजमूल वस्त्रो से बाहर दिखाई पडने लगे। उसकी त्रिवलियाँ दिखाई पडने लगी और उन पर चढते हुए मेरा मन लुट गया; अर्थात् उसे देख कर मैं मोहित हो गया।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायक नायिका के सम्बन्ध मे अपने किसी अन्तरग मित्र से कह रहा है—

जदपि नाँहि नाहीं नहीं, वदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हासी भरिनु, हा सीयै ठहराति ॥२६०॥

जक = रट। वदन = मुख। हा सीयैं = हाँ जैसी ही।

अर्थ—यद्यपि उस सुन्दरी नायिका के मुख मे तो 'नही-नही' की ही रट लगी रहती है, फिर भी उसकी हसी से भरी भौंहो के कारण वह 'हाँ' जैसी ही प्रतीत होती है।

भाव यह है कि यद्यपि वह मुख से तो 'नही-नही' कहती है, परन्तु हसती हुई भौंहो से 'हाँ' जताती है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नायक अपने मित्र से कह रहा है—

कनक झूंठ ने सवादिली, कौन बात बन जाय।
तिय मुख रति आरम्भ की, 'नहिं' झूठियै मिठाय ॥२६१॥

तनक = थोडा सा। सवादिली = स्वादुता, मजेदार होना। तिय=स्त्री। मिठाय = मिठास।

अर्थ—थोडा सा झूठ मिल जाने से कौन सी वात स्वादिष्ट अर्थात् मजेदार नही वन जाती ? रति अर्थात् सम्भोग के आरम्भ मे स्त्री के मुख से निकली झूठी 'नही-नही' भी मधुर प्रतीत होती है।

अलंकार—दृष्टान्त।

प्रसग—नायक ने एकान्त में नायिका का हाथ पकड लिया था और आलिंगन-चुम्बन करने की चेष्टा की थी। परन्तु नायिका ने लालसाभरी दृष्टि से देखते हुए भी किसी अन्य व्यक्ति के आ पहुँचने के भय से 'नहीं-नहीं' की थी, उसी का वर्णन वह अपने मित्र से कर रहा है—

लहि सूने घर कर गह्यौ, दिखादिखी की ईठि।
गड़ी सुचित नाहीं करनि, करि ललचौंही डीठि ॥२६२॥

लहि = पाकर। कर गह्यौ = हाथ पकड लिया। दिखादिखी = देखा देखी, आँखों की मैत्री। ईठि = मित्रता। ललचौंही = लालसा भरी।

अर्थ—हे मित्र, उससे मेरी देखा देखी का प्रेम था। एक दिन सूने घर मे उसे पाकर मैंने उसका हाथ पकड लिया। उस समय उसने अपनी लालसा भरी दृष्टि से मुझे देखते हुए जो 'नही-नही' की थी, वह उस दिन से मेरे चित्त मे गडी हुई है।

भाव यह है कि नायिका की वह साभिलाष 'नाही' मुझे भुलाये नही भूलती।

अलंकार—स्मरण।

प्रसंग—नायक अपने किसी अन्तरग मित्र के सम्मुख नायिका द्वारा पान दिये जाने का वर्णन कर रहा है—

सहित सनेह सकोच सुख, स्वेद कम्प मुसुकानि।
प्रान पानि करि आपने, पान धरे मो पानि ॥२९३॥

सकोच = सकोच। स्वेद = पसीना। पानि = हाथ।

अर्थ—उस नायिका ने स्नेह, सकोच, आनन्द के साथ कांपते हुए, मुस्कराते हुए और पसीने-पसीने होकर मेरे हाथ पर पान धर दिये। पर इससे पहले उसने मेरे प्राण अपने हाथ मे कर लिये।

अलकार—परिवृत्ति।

प्रसंग—नायक नायिका की सखी से कह रहा है—

ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी मुसकात।
थोरी थोरी सकुच सो, भोरी भोरी बात ॥२९४॥

ढोरी=लत, बान। सकुच = सकोच।

अर्थ—उस गोरी नायिका ने मुस्कुराते हुए थोडे-थोड़े संकोच से भोली-भोली बातें कह कर मुझे वैसी बातो को सुनने की लत सी डाल दी है।

भाव यह है कि नायिका की ससकोच और मुस्कुराते हुए कही गई भोली बाते नायक को ऐसी प्रिय लगी हैं कि वह उन्हे बार-बार सुनते रहना चाहता है।

अलंकार—अनुप्रास।

प्रसंग—नायक नायिका की गति के सम्बन्ध मे नायिका की सखी ने कह रहा है—

डगकु डगति सी चलि ठठकि, चितई चली सभारि ।
लिये जाति चित चोरटी, वहै गोरटी नारि ॥२६५॥

डगकु = एक कदम । डगति = डगमगाती हुई । ठठकि = ठिठक कर । चितई = देख कर । चोरटी = चोर । गोरटी = गोरी ।

अर्थ—दो-एक कदम डगमगाती सी चल कर, फिर ठिठक कर, और फिर मेरी ओर देख कर, अपने आपको सभाल कर वह चल पडी । वह गोरी चोर नायिका मेरे चित्त को चुरा कर लिये जा रही है ।

अलकार—स्वभावोक्ति और छेकानुप्रास ।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से कह रही है —

किती न गोकुल कुल वधू, काहि न किन सिख दीन ।
कौने तजी न कुल गली, ह्वै मुरली सुर लीन ॥२६६॥

किती = कितनी । कुल वधू = भले घरो की बहुएँ । काहि = किस को । सिख = शिक्षा । कुल गली = कुलीनो का मार्ग । लीन = मग्न ।

अर्थ—गोकुल मे कितनी कुलवधुएँ नही थी ? अर्थात् बहुत सी कुल-वधुएँ थी और किसने किसको शिक्षा नही दी ? अर्थात् प्रत्येक ने उन सबको समझाया । परन्तु मुरली के मधुर स्वर मे मग्न होकर किसने कुलीनो का मार्ग नही छोड दिया ? अर्थात् वे सबकी सब कुलीनो के मार्ग को अर्थात् लज्जा और सकोच को छोड बैठी ।

अलंकार—विशेषोक्ति और वक्रोक्ति ।

प्रसग—नायिका अपनी अँगूठी मे जडे शीशे मे अपनी पीठ पीछे खडे नायक का प्रतिबिम्ब देख रही है । इसी का वर्णन एक सखी दूसरी से करती है—

कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिम्बित प्यौ पाय ।
पीठि दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाय ॥२६७॥

कर = हाथ । मुदरी = अँगूठी । आरसी = दर्पण । प्यौ = प्रियतम । पीठि दिये = उसकी ओर पीठ किये हुए भी । निधरक = निश्शक ।

अर्थ—देखो वह नायिका अपने हाथ की अँगूठी के दर्पण मे अपने प्रियतम को प्रतिबिम्बित होता पाकर उसकी ओर पीठ किये किये निश्शक

होकर उसे टकटकी लगा कर देख रही है।

भाव यह है कि क्योंकि उसकी पीठ नायक की ओर है, इसलिए उसे यह भय नहीं है कि कोई उसे यह कहेगा कि वह एकटक नायक को देख रही है।

अलंकार—विभावना।

प्रसंग—राधा ने कृष्ण से बातचीत करने के लोभ में उसकी वंशी छिपा कर रख दी है और कभी वह ऐसा दिखाती है कि बाँसुरी उसके पास है और कभी यह प्रकट करती है कि बाँसुरी उसके पास नहीं है, जिससे बातचीत देर तक चल सके। इसी का वर्णन करते हुए सखी कहती है—

> बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
> सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै नटि जाय॥ २९८॥

बतरस = बातचीत का आनन्द। लाल = प्रियतम, कृष्ण। मुरली = बाँसुरी। लुकाय = छिपा कर। सौंह करै = कसम खाती है। नटि जाय = इन्कार कर देती है।

अर्थ—राधा ने बातचीत का आनन्द लेने के लोभ में कृष्ण की मुरली छिपा कर रख दी है। कृष्ण जब मुरली ढूँढते हुए उससे पूछता है कि क्या मुरली तूने छिपाई है, तो वह कभी कसम खाती है कि मैंने नहीं छिपाई। फिर भौंहों ही भौंहों में हँसने लगती है, जिससे कृष्ण को सन्देह होता है कि अवश्य ही उसने छिपाई है। फिर वह कहती है कि अच्छा मैं बाँसुरी दे दूँगी। फिर कुछ ही देर बाद इन्कार कर देती है, अर्थात् कह देती है कि मैंने छिपाई ही नहीं।

अलंकार—कारक दीपक और स्वभावोक्ति।

प्रसंग—नायक नायिका के मुँह में पान का बीड़ा देते समय जान बूझ कर अँगुली से उसके ओठों को छू लेता है। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> नाक मोरि नाहीं ककै, नारि निहोरे लेय।
> छुवत ओंठ पिय आँगुरिन, बिरी बदन पिय देय॥ २९९॥

करि = करके। निहोरे लेय = प्रार्थना करती है। बिरी = पान का बीडा। तिय = स्त्री।

अर्थ—नायक के बहुत प्रार्थना करने पर नायिका नाक सिकोड कर और 'नहीं-नहीं' करते हुए पान का बीडा अपने मुख मे लेती है और नायक अपनी अंगुलियो से उसके ओठो को छूता हुआ उसके मुख मे पान का बीडा थमाता है।

इसमे नायक की शरारत और नायिका के कुट्टमित हाव का वर्णन है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायक ने नायिका से हठ किया कि वह उसे अपने हाथो से पान का बीडा खिलाये। वह पान कैसे खिलाया गया, इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

हँसि ओठनि विच कर उचै, किये निचौहैं नैनन।
खरे अरे पिय के प्रिया, लगी बिरी मुख दैन॥ ३००॥

विच = बीच मे। उचै = ऊंचा उठा कर। निचौहे = नीचे की ओर भुके हुए। बिरी = पान का बीडा।

अर्थ—प्रियतम के बहुत हठ करने पर प्रिया होठो ही होठो मे हस कर आंखें नीची किये हुए हाथ ऊँचा उठा कर उसके मुख मे पान का बीडा देने लगी।

नीची आंखो से लज्जा की अधिकता सूचित होती है और हँसने से प्रेम प्रकट होता है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायक को अपरिचित मित्रो के साथ देख कर क्रियाविदग्धा नायिका ने जो चेष्टाएँ की, उनके सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

हरषि न बोली लखि ललन, निरखि अमिल सब साथ।
आँखिन ही में हँसि धर्‌यो, सीस हिये धरि हाथ॥ ३०१॥

हरषि = प्रसन्न होकर। ललन = प्रियतम, नायक। निरखि = देख कर। अमिल = अपरिचित, अजनबी। हिये = हृदय पर।

अर्थ—नायक को देख कर नायिका प्रसन्न हुई, परन्तु उसे सब अपरिचित मित्रो के साथ देख कर कुछ बोली नही। उसने आँखो ही आँखो मे हस कर पहले अपने हृदय पर हाथ रखा और फिर सिर पर हाथ रखा।

हृदय और सिर पर हाथ रखने से यह सकेत है कि यह हृदय तुम्हे सौप चुकी हूँ और तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है। क्रियाविदग्धा नायिका।

अलकार—सूक्ष्म।

प्रसंग—नायिका खडी अपनी सखी से बातें कर रही है। उसकी पीठ पीछे नायक खडा है। वह नायक की ओर नही देखती, परन्तु नायक की दृष्टि उसकी पीठ पर पड रही है, इतने से ही उसे रोमांच हो रहा है। इसी को लक्ष्य करके सखी उससे कहती है—

रही फेरि मुंह हेरि इत, हित समुहें चित नारि।
डीठि परत उठि पीठि की, पुलकें कहें पुकारि॥ ३०२॥

हित = प्रेमी। चित = चित्त। डीठि = दृष्टि। पुलकैं = रोमांच।

अर्थ—हे नारी अर्थात् नायिका, तू मुंह फेर कर देख तो इस ओर रही है, परन्तु तेरा चित्त उधर प्रेमी की ओर अभिमुख है। यह बात तेरी पीठ पर प्रेमी की दृष्टि पडने के कारण होने वाला रोमांच पुकार-पुकार कर कह रहा है। अर्थात् ज्योही उस प्रेमी की दृष्टि तेरी पीठ पर पड़ती है, त्योही तेरे रोगटे खडे हो जाते है और यह प्रकट हो जाता है कि तेरा ध्यान मेरी ओर नही, अपितु उस प्रेमी की ओर ही है।

अलकार—अनुमान और अनुप्रास।

प्रसंग—नायिका बैठी सखियो के साथ बातचीत कर रही थी। जब उसे ध्यान आया कि अब प्रियतम के आने का समय हो गया है, तो उसने आँखें झपका कर और जम्हाइयाँ लेकर नीद आने का बहाना करके सखियो को उठा दिया। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

झुकि झुकि झपकौहें पलनि, फिर फिर मुरि जमुहाय।
बींदि पियागम नींद मिस, दीं सब सखी उठाय॥ ३०३॥

झपकौं हैं = झपकनी हुई। पलनि = पलको ने। जमुहाय = जम्हाइयाँ लेकर। बींदि = जानकर। मिस = बहाने से।

अर्थ—नायिका ने प्रियतम के आगमन का समय जानकर बार-बार झुक कर पलकें झपका कर और बार-बार मुड-मुड कर जम्हाइयाँ लेकर नींद का बहाना किया और सब सखियों को अपने पास से उठा दिया।

अलकार—पर्यायोक्ति।

प्रसग—नायक ने अन्य प्रेमिकाओं को तो यह कह कर टाल दिया कि इस समय तेज धूप है, कुंज-भवन मे जाना हमारे बस का नहीं; परन्तु अपनी मनभावती प्रियतम के साथ वह उस धूप मे चला गया। इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> मिस हौ मिस आतप दुसह, दई और बहकाय।
> चले ललन मनभावती, तन की छाह छिपाय ॥३०४॥

मिस = बहाना। आतप = धूप। मनभावती = चहेती। छिपाय = छिपा कर।

अर्थ—असह्य धूप का बहाना बना कर और सब को तो बहका दिया अर्थात् टाल दिया और उनके टल जाने पर नायक अपनी मनपसन्द नायिका को अपने शरीर छाँह मे छिपा कर उसे कुंज भवन ले चले।

जब मनभावती नायिका ने कहा कि धूप बहुत तेज है, तो नायक ने कह दिया कि तुम्हें मैं अपने शरीर की छाया मे छिपा लूँगा तुम्हे धूप नही लगेगी।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

प्रसंग—नायिका स्वय ही नायक से यमुना के किनारे जाने को कहती है, और ध्वनित यह है कि वह स्वय भी वही आकर उससे मिलेगी—

> घरियक घाम निवारिये, कलित ललित अलिपुंज।
> जमुना तीर तमाल तरु, मिलत मालती कुंज ॥३०५॥

घाम = धूप। घरियक = एक घड़ी, घड़ी भर। निवारिये = अर्थ है दूर करिये, गवाँ दें बिता लीजिये। कलित = युक्त। अलिकुंज = भ्रमर-समूह। तमाल = एक वृक्ष का नाम, जिसके पत्ते काले रंग के होते हैं।

अर्थ—आप जमुना के तीर पर जा कर उन सम्पूर्ण तरुओं के तले, जहाँ मालती के घने कुंज हैं और जो सुन्दर भौंरों के समूहों से सुशोभित हैं जाकर घड़ी भर यह धूप का समय बिता लीजिये।

ध्वनि यह है कि आप इस कड़ी दुपहरी मे यमुना तीर पर एकान्त तमाल मालती कुंज मे चले जइये, वहाँ घड़ी भर इन्तजार कीजिये। मैं पानी भरने के बहाने यमुना तट पर पहुँचूँगी। 'कलित अलिकुंज' से एकान्त ध्वनित है। क्योकि एकान्त न होता, तो भ्रमर समूह वहाँ न रहते। 'मिलत मालती कुंज' से यह ध्वनित है कि वह स्थान विहार और मिलन के लिये उपयुक्त है।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

प्रसंग—नायक और नायिका मकान की छत पर है और दोनो के बीच मे मुंडेर का व्यवधान है। नायिका परकीया है। दोनो ने उस ऊँची मुंडेर के व्यवधान को पार करके किस प्रकार से एक दूसरे का चुम्बन किया, इस का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

अंगुरिन उचि भरु भीति दै, उलनि चितै चख लोल।
रुचि सों दुहूँ दुहून के, चूमे चारु कपोल ॥३०६॥

उचि = उचक कर। भरु = भार, बोझ। भीति = दीवार। उलमि = झुक कर। लोल = चचल। चख = नेत्र। रुचि सों = प्रेम से।

अर्थ—नायक और नायिका ने पैरो की अँगुलियो पर उचक कर और मुंडेर की दीवार पर अपना बोझ डाल कर थोडा झुक कर और चचल नेत्रो से सब ओर देख कर बडे प्रेम से एक दूसरे के सुन्दर कपोलो को चूमा—

चारो ओर देखना इस आशका को व्यक्त करता है कि कहीं कोई देख तो नही रहा।

अलंकार—अन्योन्य और अनुप्रास।

प्रसग—नायक और नायिका अंधेरी गली मे आमने-सामने से आ रहे थे। दिखाई पड़ने से वे एक दूसरे को पहचान न सके, परन्तु आपस मे टकरा जाने पर स्पर्श से उन्होंने एक दूसरे को पहचान लिया। इसका वर्णन एक सखी से दूसरी सखी कर रही है—

गली अंधेरी सांकरी, भौ भटभेरा आनि।
परे पिछाने परसपर, दोऊ परस पिछानि ॥३०७॥

सांकरी = तग, सकीर्ण। भटभेरा = टक्कर। पिछानि = पहचान।

अर्थ—अंधेरी सकरी गली मे उन दोनों की आपस मे टक्कर हो गई। तब उन दोनो ने स्पर्श की पहचान से एक-दूसरे को पहचान लिया।

यहाँ नायिका स्वकीया है और दोनों को एक दूसरे के स्पर्श का इतना स्पष्ट ज्ञान है कि अधेरे मे भी उन्होने केवल छू जाने मात्र से एक दूसरे को पहचान लिया।

अलकार—उन्मीलित और यमक।

प्रसग—विवाह सस्कार के समय एक दूसरे का हाथ पकडने से नायक और नायिका दोनो को स्वेद हो आया और रोमांच हो गया। उसी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

सेद सलिल रोमांच कुस, गहि दुलही अरु नाथ।
हियो दियो संग हाथ के, हथलेवा ही हाथ ॥३०८॥

सेद सलिल = पसीने का जल। रोमांच कुस = रोयें रूपी कुशा, घास। गहि = पकड कर। दुलही = दुलहिन। हथलेवा = पाणिग्रहण।

अर्थ—पाणिग्रहण सस्कार के समय ही नायक और नायिका ने पसीने रूपी जल और रोमांच रूपी कुशा लेकर एक दूसरे के हाथ अपना हृदय भी दे दिया।

विवाह के समय वर-वधू एक दूसरे को जल और कुशा देते हैं। यहाँ सात्विक स्वेद और रोमांच ही जल और कुशा बन गये। एक दूसरे के हाथ मे अपना हाथ देते हुए उन्होने साथ ही अपने हृदय भी दे डाले।

अलंकार—रूपक।

प्रसंग—एक सखी नायिका के सम्बन्ध मे दूसरी सखी से कह रही है—

मानहु मुख दिखरावनी, दुलहिनि करि अनुराग।
सासु सदन मन ललन हू, सौतिन दियो सोहाग ॥३०९॥

मुख दिखरावनि = मुँह दिखाई। यह एक प्रथा है कि वधू का मुख पहली बार देखने पर उसे कुछ भेंट दी जाती है। सदन = घर। ललन = प्रियतम, नायक। सोहाग = सौभाग्य, पति प्रेम।

अर्थ—जब दुलहिन पति के घर आई, तो मुँह दिखाई की विधि के तौर मानो उसके प्रेम के कारण सास ने उसे अपना घर सौंप दिया, नायक ने उसे अपना मन सौंप दिया और उसकी सौतों ने उसे अपना सौभाग्य सौंप दिया।

भाव यह है कि नायिका को पति गृह में आते ही सारे घर का अधिकार, प्रियतन का हृदय और सोतो का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और तुल्ययोगिता।

प्रसग—नायिका के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे कवि अपनी ओर से विनोद-पूर्वक कह रहा है—

कन देबो सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप रहँचटें लगि लग्यौ, मागन सब जगआनि॥३१०॥

कन = कण। थुरहथी = छोटे-छोटे हाथो वाली। रहचटें = लोभ के कारण या लालच के कारण।

अर्थ—ससुर ने तो भिक्षा देने का काम बहू को यह सोचकर सौंपा कि उसके हाथ छोटे-छोटे है, इसलिए खर्च कम होगा। परन्तु उसके सौन्दर्य के लालच में सारा ससार ही भिखारी बन कर मांगने के लिए आने लगा।

ससुर ने तो खर्च कम करने के लिए बहू को यह काम सौपा था। परन्तु पहले भिखारियो की सख्या कम थी, अब भिखारियों की सख्या बढ गई। खर्च कम होने के बदले उल्टा बढ गया।

अलंकार—विषादन।

प्रसग—नायिका के गौने की बात चली है। इसके कारण उसको कितना आनन्द हुआ है, इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

चाले की बातें चलीं, सुनत सखिन के टोल।
गोयेऊ लोचन हसत, बिकसत जात कपोल॥३११॥

चाला = गौना, विवाह के पश्चात् दूसरी बार पत्नी का पति के घर जाना। टोल = समूह। गोयेऊ = छिपाने पर भी। लोयन = लोचन। बिक-सत जात = खिले जाते हैं।

अर्थ—सखियो के समूह मे चल रही अपने गौने की बात को सुनकर छिपाने का यत्न करने पर भी नायिका के नैन हँस रहे है और उसके कपोल खिले जा रहे है।

इस अर्थ मे नायिका स्वकीया है, जिसका अपने पति से प्रेम है और उससे मिलन की उत्सुकता के कारण उसे आनन्द हुआ है। परन्तु कुछ लोग

'चली' का अर्थ टली लेते है; अर्थात् गौने की वात टल गई, यह जानकर नायिका को आनन्द हुआ। इस दशा मे यह कल्पना करनी पडेगी कि नायिका का अपने मायके मे ही किसी से प्रेम है और वह अपने पति के पास जाने के लिए उत्सुक नही है।

अलकार—प्रहर्षण।

जल-क्रीड़ा

प्रसग—नायिका पानी मे स्नान कर रही है। इस जल विहार का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

> लै चुभकी चलि जाति जित, जित जल केलि अधीर।
> कीजत केसर नीर से, तित-तित के सर नीर ॥३१२॥

चुभकी = डुबकी। जित = जिधर। केलि = क्रीडा। अधीर = चचल। केसर = कुकुम। सर नीर = सरोवर का जल।

अर्थ—वह नायिका जल मे केलि करती हुई अधीरता से डुबकी लेकर जिधर भी चली जाती है, उधर ही सरोवर का नीर केसर के जल जैसा हो जाता है।

नायिका का रग कंचन या केसर के समान गौर है। पानी मे उसके इधर-उधर जाने से उसके शरीर की आभा के कारण पानी सुनहला-सा दिखाई पडने लगता है।

अलकार—यमक, तद्गुण और उपमा।

प्रसग—नायक और नायिका जल विहार कर रहे है। नायक ने हाथ की पिचकारी वनाकर उससे पानी नायिका की आँखो मे फेंका। इसे देख कर नायिका की सौत अर्थात् नायक की दूसरी पत्नी की आँखें लाल हो उठी। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> छिरके नाह नवोढ दृग, कर पिचकी जल जोर।
> रोचन रंग लाली भई, बिय तिय लोचन कोर ॥३१३॥

छिरके = छिडक दिये। नवोढ = नव विवाहिता। कर पिचकी = हाथो को मिलाकर वनाई हुई पिचकारी। रोचन = गोरोचना, इसका रग लाल होता है। बिय तिय = दूसरी स्त्री।

अर्थ—जल विहार के समय नायक ने हाथो को मिलाकर बनाई हुई पिचकारी से पानी की धारा नवविवाहिता नायिका की आंखो मे छिड़क दी अर्थात् पानी की धार उसकी आंखो पर फेंकी। इससे दूसरी स्त्री अर्थात् सौत की आंखो की कोरो मे गोरोचना के रग की सी लाली आ गई।

सौत की आंखो में लाली ईर्ष्या के कारण आई। पानी पडा नायिका की आंखो मे और लाली आई सौत की आंखो मे।

अलकार—असगति।

प्रसग—नायिका स्नान करने घाट पर आई है। उसी समय सयोग से अथवा यत्नपूर्वक नायक भी वहां आ पहुंचा है। उस समय की नायिका की दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

नहिं अन्हाय नहिं जाय घर, चित चिहुट्यौ लखि तीर।
परसि फुरहरी लै फिरति, बिहसति धसति न नीर ॥३१४॥

अन्हाय = नहाती है। चिहुट्यौ = अनुराग युक्त हो गया। परसि = छूकर। फुरहरी लै = कांपती हुई। विहसति = मुस्कराती है।

अर्थ—नायक को तीर पर देख कर उसके हृदय मे अनुराग उत्पन्न हो गया है। वह न तो नहाती ही है और न विना नहाये घर ही लौटती है। वह पानी को छूकर कांपने का अभिनय करती हुई मुस्कराती हुई कभी इधर, कभी उधर फिर रही है और पानी मे घुसती नही है।

वह देर तक नायक के निकट रहना चाहती है, इसलिए 'अहा, पानी बडा ठडा है' कह कहकर कांपने का बहाना करके नहाने मे देर लगा रही है।

अलकार—पर्यायोक्ति।

प्रसंग—नायिका के सरोवर या नदी पर स्नान करते समय नायक सयोग से आ पहुंचा है। तब नायिका ने जो चेष्टाएं की, उनके सम्बन्ध मे वह अपने किसी अन्तरग मित्र से कह रहा है—

सुनि पग धुनि चितई इतै, न्हात दिये ई पीठि।
चकी, झुकी, सकुची, डरी, हसी कजीली डीठि ॥३१५॥

पग धुनि=पैरो के चलने की आवाज। चितई = देखा। इतै=इस ओर। चकी=चकित रह गई, चौंक उठी। झुकि=खीझ उठी। दीठि=दृष्टि।

अर्थ—उस नायिका ने मेरे पैरो की आवाज सुनकर मेरी ओर देखा। वह मेरी ओर पीठ किये नहा रही थी। मुझे वहाँ देखकर वह चौंक उठी। कुछ खीझी, कुछ सकुचाई, कुछ डरी और फिर लज्जा भरी दृष्टि से मेरी ओर देख कर हसी। चकित होने इत्यादि के कारण मनोभावो का अनुमान सरल है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका के स्नान का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

मुँह पखारि, मुडहरि भिजै, सीस सजल कर छ्वाय।
मौरि उचै घूटेन नै, नारि सरोवर न्हाय ॥३१६॥

पखारि=धोकर। मुडहरि=सिर का अगला भाग। मौरि=सिर। उचै=ऊँचा करके। घूटेन नै=घुटनो के बल झुक कर।

अर्थ—वह स्त्री सरोवर मे नहा रही है। उसने पहले अपना मुँह धोया, फिर सिर के अगले हिस्से को भिगोया। उसके बाद गीले हाथ अपने सारे सिर पर फेर लिए। फिर घुटनो के बल झुक कर सिर ऊँचा किए वह तालाब मे स्नान करने लगी।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका सरोवर मे स्नान करके गीले वस्त्र पहने किनारे की ओर आ रही है। उसका वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

विहसति सकुचति सी हिये, कुच आंचर विच वाहि।
भीजे पट तट को चली, न्हाय सरोवर माँहि ॥३१७॥

वाहि=बाहो मे। आचर=आंचल। सरोवर=तालाव, सर।

अर्थ—वह नायिका सरोवर मे स्नान करने के बाद उरोजो को और आंचल को अपनी बाहो के बीच मे दबा कर मुस्कराती हुई और मन मे सकुचाती हुई गीला वस्त्र पहने हुए किनारे की ओर चली आ रही है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका यमुना के किनारे बैठी हाथ मुँह धो रही है। उसका वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

मुह धोवति एंडी घसति, हंसति अनगवति तीर।
घसति इन्दीवर-नयनि, कालिन्दी के नीर ॥३१८॥

अनगवति = कामाविष्ट। इदीवर नयन = नील कमल के समान नेत्र वाली। कलिंदी = यमुना।

अर्थ—वह नायिका यमुना नदी के किनारे नायक को देख कर कामाविष्ट हो गई है। वह किनारे पर बैठी हुई कभी मुँह धोती है, कभी एडी को रगड-रगड कर धोती है और हँसने लगती है। परन्तु वह स्नान के लिए यमुना के जल मे अन्दर नही घुसती।

यहाँ भी नायक को देख कर विलम्ब करना ही प्रयोजन है।

अलंकार—अनुप्रास और स्वभावोक्ति।

प्रसंग—नायिका स्नान करके घर की ओर चली। उसी सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

न्हाय, पहिरि पट, झट कियो, बेंदी मिस परनाम।
दृग चलाय घरको चली, बिदा किये घनश्याम ॥३१९॥

मिस = बहाने से। दृग चलाय = कटाक्ष फेंक कर।

अर्थ—स्नान करने के बाद चटपट वस्त्र पहन कर बिन्दी लगाने के बहाने उस नायिका ने कृष्ण (नायक) को प्रणाम किया और कटाक्ष फेंक कर अपने घर की ओर चल पड़ी और इस प्रकार कृष्ण को विदा कर दिया।

ऊपर के दोहो मे वर्णित टालमटोल के बाद नायिका ने अन्त मे स्नान कर लिया और कृष्ण अथवा नायक से प्रेम जता कर घर की ओर लौट चली।

अलकार—पर्यायोक्ति और सूक्ष्म।

प्रसग—नायक और नायिका स्नान कर चुके है और जप करने का बहाना करते हुए तिरछे नेत्रो से एक दूसरे की ओर देख रहे है। इनी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

चितवति जितवति हित हिये, किये तिरीछे नैन।
भीजे तन दोऊ कपन, क्यो हू जप निबरे न ॥३२०॥

चितवति = देखती है। जितवत = जताते हुए। हित = प्रेम। तिरीछे = तिरछे। कपन = काँप रहे है। निबरै न = समाप्त नही होता।

अर्थ—वह नायिका तिरछे नयन कर नायक की ओर देख रही है और अपने हृदय का प्रेम जता रही है। वे दोनो भीगे शरीर खडे हुए काँप रहे है, फिर भी उनका जप समाप्त होने मे ही नही आता।

जव समाप्त हो जायेगा, तो कपडे पहन कर घर चल देना होगा। इसलिए वे एक दूसरे से देखा-देखी करने के लिए जप को लम्वा किये जा रहे है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रेम क्रीड़ाएँ

प्रसग—नायक नायिका की आँखमिचौनी का वर्णन करते हुए सखी कह रही है—

> दृग मींचत मृग लोचनी, भर्यौ उलटि भुज बाथ।
> जानि गई तिय नाथ के, हाथ परस ही हाथ ॥३२१॥

मृगलोचनी = मृगनयनी । वाथ = अक, अकवार, आलिगन। जानि गई = पहचान गई।

अर्थ—पति ने पीछे से आकर पत्नी के नेत्र मीच लिये। इस पर उस मृगनयनी ने तुरन्त उलट कर पति को वाहो मे पकड लिया, क्योकि हाथ के स्पर्श से ही वह पहचान गई कि ये हाथ उसके पति के ही हैं।

अलंकार—अनुमान।

प्रसंग—नायक नायिका की आँखमिचौनी का वर्णन एक सखी अन्य सखी से कर रही है—

> प्रीतम दृग मींचत प्रिया, पानि परस सुख पाय।
> जानि पिछानि अजान लौं, नेकु न होति लखाय ॥३२२॥

पानि परस = हाथ का स्पर्श। जानि पिछानि = जान-पहचान कर भी। नेकु न होति लखाय = कुछ पता नही चल रहा।

अर्थ—नायिका ने नायक की आँखें पीछे से आकर मीच ली है। इस पर उसके हाथों के स्पर्श का सुख पाकर नायक जान पहचान कर भी अनजान की भाँति कहता है कि कुछ पता नही चल रहा कि यह किसका हाथ है ?

आँख-मिचौनी मे आँख मीचने वाला व्यक्ति दूसरे की आंखो को तब तक मीचे रहता है, जब तक कि वह मीचने वाले का नाम ठीक-ठीक न बता दे। नायक जान बूझ कर नायिका का नाम बताने मे इसलिए देर करता है, जिससे वह उसकी आंखो को कुछ और देर तक मीचे रहे और उसे नायिका के स्पर्श का आनन्द मिलता रहे।

अलकार—पर्यायोक्ति।

प्रसग—नायक और नायिका का आँख-मिचौनी के खेल का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

दोऊ चोर मिहीचनी, खेल न खेलि अघात।
दुरत हिये लपटाय कै, छुवत हिये लपटाय ॥३२३॥

चोर मिहीचनी = आँख मिचौनी। अघात = तृप्त होते। दुरत = छिपते है। हिये लपटाय = छाती से लिपट कर।

अर्थ—नायक और नायिका आँख-मिचौनी का खेल खेलते हुए अघाते ही नही, अर्थात् तृप्त ही नही होते। वे जब जा कर छिपते हैं, तो भी एक दूसरे मे चिपट जाते है और जब ढूँढते हुए एक दूसरे को छूते है, तो भी एक दूसरे को छाती से लगाते है।

आँख-मिचौनी मे एक व्यक्ति दूसरे छिपे हुए व्यक्तियो को ढूँढता है। जब नायक और नायिका छिपाते है, तो भी एकान्त स्थान पाकर परस्पर आलिगन करते है, और जब नायक या नायिका की ढूंढने की बारी होती है, तब भी, वे एक दूसरे को छूकर हँसते हुए आपस मे चिपट जाते है।

अलकार—पर्यायोक्ति और विशेषोक्ति।

प्रसग—झूला झूलती हुई नायिका सखियो के सावधान करने पर, और ऊँचा पैंग बढाने से रोकने पर और भी उत्साह से झूलती है। इसी का वर्णन करते हुए सखी कहती है—

बरजे दूनी हठ चढे, ना सकुचै, न सकाय।
टूटति कटि दुमची मचक, लचकि लचकि बचि जाय ॥३२४॥

बरजै = रोकने पर। दूनी = दुगनी । सकुचे = सकुचाती। सकाय = डरती। दुमची = पतली छड़ी। मचक=झटका।

अर्थ—सखियों के मना करने पर (कि इतना ऊँचा पैंग मत बढ़ाओ) नायिका को और भी अधिक हठ हो जाता है। वह न तो सकुचाती है (कि झूलते हुए उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो जायेंगे) और न गिरने की ही उसे शका होती है। उसकी कमची जैसी पतली कमर पैंग के झटके से टूटने लगती है, परन्तु लचक-लचक कर बच जाती है।

भाव यह है कि यदि वह कमर लचकीली न होती, तो पतली होने के कारण इतने झटके से अवश्य टूट जाती।

अलकार—विभावना और उत्प्रेक्षा।

फाग खेलने का वर्णन

प्रसंग—नायक अपने मित्र से नायिका के सम्बन्ध मे कह रहा है—

पीठ दिये ही नेकु मुरि, कर घूँघट पट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सौं, गई मूठि सी मारि॥३२५॥

नेकु=जरा सा। टारि=हटाकर। मूठि सी मारि गई=मुट्ठी मार गई। यह तान्त्रिक प्रयोग है, जो किसी के मारने के लिए किया जाता है।

अर्थ—वह मेरी ओर पीठ किये खड़ी थी। वैसे ही खड़े-खड़े उसने जरा सा मुड़ कर हाथ से घूँघट का कपड़ा उठाया और गुलाल से भरी हुई मुट्ठी मुझे लगा दी और इस प्रकार वह मुझ पर मुट्ठी मारने का तान्त्रिक प्रयोग सा कर गई, जिसके फलस्वरूप मैं विवश-सा होकर उस पर मुग्ध हो गया हूँ।

अलंकार—यमक और उत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायिका ने नायक के साथ होली खेली है, जिससे उसकी आँख मे थोड़ा-सा गुलाल पड गया है। उसी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

दियो जो पिय लखि चखन में, खेलत फागु खियाल।
बाढ़त हू अति पीर सु न, काढ़त बनत गुलाल॥३२६॥

चखन मे=आँखो मे। खियाल=खेल। पीर=दर्द।

अर्थ—उसकी विचित्र दशा देखो। प्रियतम ने फाग का खेल खेलते समय जो उसकी आँख मे गुलाल डाल दिया था (अनजाने आँख मे पड गया था) उसके कारण नायिका को यद्यपि बहुत कष्ट हो रहा है, फिर भी वह उस गुलाल को आँख मे से निकालना नही चाहती।

भाव यह है कि प्रियतम का लगाया हुआ गुलाल कष्टदायक होने पर भी अच्छा लगता है।

अलंकार—प्रत्यनीक और विशेषोक्ति।

प्रसग—नायक और नायिका के होली खेलते समय का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

छुटत मुठी संग ही छुटी; लोक लाज कुल चाल।
लगु दुहुनि इक बेर ही, चलि चित, नैन गुलाल ॥३२७॥

मुठी=गुलाल से भरी हुई मुट्ठी। लोक लाज=लोक मर्यादा। लगे=परस्पर मिल गये। कुल चाल=सत्कुल की रीति।

अर्थ—गुलाल से भरी हुई मुट्ठियाँ खुलते ही लोक-लज्जा और अपने कुल की प्रतिष्ठा का ध्यान जाता रहा। गुलाल के लगते ही दोनो के चित्त और नयन एक दूसरे से जा लगे।

भाव यह है कि एक दूसरे को गुलाल लगाते समय सारी मर्यादा त्याग कर दोनो के नेत्र परस्पर मिले और मन भी मिल गये। नायिका परकीया है।

अलंकार—सहोक्ति।

प्रसग—नायक और नायिका के होली खेलने का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

जुज्यौं उझकि झाँपति वदन, झुकति विहसि सतरात।
तुत्यौं गुलाल झुठी मुठी, झझकावत पिय जात ॥३२८॥

जूज्यो=ज्यो-ज्यो। उझकि=घबरा कर। झाँपति=ढकती है। सतरात=डरती है। झुठी मुठी=झूठी मुट्ठी अर्थात् जिस मुट्ठी मे गुलाल नही है, वह। झझकावत=डराता हुआ।

अर्थ—ज्यो-ज्यो नायिका घबरा कर अपना मुँह ढकती है झुक कर मुस्कराती है और डरती है, त्यो-त्यो प्रियतम अर्थात् नायक गुलाल की झूठी

मुट्ठी से ही उसे बार-बार डराता जाता है।

अलकार—स्वभावोक्ति और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायक और नायिका के होली खेलने का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

रस भिजये दोऊ दुहुनि, तऊ टिक रहे टरैं न।
छवि सौं छिरकत प्रेमरंग, भरि पिचकारी नैन॥३२६॥

रस=१ प्रेम २ रग। भिजये=भीगे हुए। टरे न=भागते नही है। छवि=सुन्दरता। पिचकारी नैन=नयन रूपी पिचकारियो से।

अर्थ—नायक और नायिका दोनो ने एक दूसरे को रग से खूब भिगो दिया है, फिर भी दोनो एक दूसरे के सामने डटे हुए है और वहाँ से हिलने का नाम नही लेते। वे दोनो अपनी नयन रूपी पिचकारियाँ भर-भर कर मानो एक दूसरे पर अपनी सुन्दरता से प्रेम का रग छिड़क रहे हैं।

भाव यह है कि होली का रग तो एक दूसरे पर डाल ही चुके, अब आँखो की पिचकारियों से एक दूसरे पर प्रेम का रग डाल रहे है।

अलकार—विशेपोक्ति और रूपक।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से नायक और नायिका के होली खेलने का वर्णन कर रही है—

गिरे कप कछु, कछु रहै, कर पसीजि लपटाय।
सीन्हीं मुठी गुलाल भरि, छुटत झुठी ह्वै जाय॥३३०॥

कम्प=काँपना। पसीजि=पसीज कर। सीन्ही=भरी हुई। झुठी ह्वै जाय=झूठी हो जाती है, अर्थात् उसमे से रग न बिखरने के कारण वह विफल रहती है।

अर्थ—जब नायिका गुलाल लगाने के लिए मुट्ठी भरती है, तो हाथ के काँपने के कारण कुछ गुलाल तो पहले ही गिर जाता है, और कुछ हाथ मे पसीना आ जाने के कारण हाथ मे ही चिपका रह जाता है, इसलिए जब नायिका पूरी मुट्ठी भर कर भी गुलाल फेंकती है, तो भी वह मुट्ठी झूठी ही हो जाती है, अर्थात् उसमे से गुलाल बिखरता ही नही।

यहाँ पर कम्प और स्वेद सात्विक भाव है, जो नायक को देखने के कारण नायिका मे उत्पन्न होते है।

अलकार—अनुप्रास और काव्यलिंग।

प्रसग—नायिका नायक से फगुवा अर्थात् होली खेलने का पुरस्कार माँग रही है। उसी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

ज्यौं-ज्यौं पट झटकति हठति, हसति, नचावति नैन।
त्यौं-त्यौं निपट उदारहू, फगुवा देत बनै न ॥३३१॥

हठति=जिद करती है। निपट=बहुत। फगुवा=फाग अर्थात् होली खेलने के बदले दिया जाने वाला पुरस्कार मिष्टान्न इत्यादि।

अर्थ—वह नायिका नायक से फगुवा माँगते हुए ज्यो-ज्यो उसके कपडे खीचती है, हठ करती है, हसती है और आँखें नचाती है, त्यो-त्यो बहुत अधिक उदार हृदय होते हुए भी नायक से फगुवा अर्थात् फाग खेलने का पुरस्कार देते नही बनता।

वैसे तो नायक बहुत उदार है और फाग खेलने का पुरस्कार तुरन्त दे सकता है, परन्तु नायिका की ये आकर्षक मुद्राएँ उसे इतनी भली लग रही है कि वह उन्हे कुछ और देर तक देखते रहना चाहता है, इसलिए फगुवा देने मे विलम्ब करता है।

अलंकार—विशेषोक्ति।

रति-वर्णन

प्रसग—नायिका ने पति के सकेत को समझ कर किस प्रकार सब सखियो को चलता किया, उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

पति रति की बतियां कही, सखी लखीं मुसुकाय।
कै-कै सबै टलाटली, अली चलीं सुखपाय ॥३३२॥

रति=सभोग या प्रेम। लखी=देखा। टलाटली=बहाना।

अर्थ—पति ने प्रेम की बातचीत शुरू की, तो नायिका ने सखियों की ओर मुस्करा कर देखा। इससे वे सब भी नायिका की इच्छा समझ गई और मन ही मन प्रसन्न होती हुई कोई न कोई बहाना बना कर चल दीं।

अलंकार—पर्यायोक्ति और अनुप्रास।

प्रसग—सखी नायक से नायिका के सम्बन्ध मे कह रही है कि मदिरा पान से उस नायिका का सौंदर्य और भी अधिक बढ जाता है—

खलित वचन, अधखुलित दृग, ललित स्वेद कन जोति।
अरुन वदन छबि मद छकी, खरी छबीली होति ।।३३३।।

खलित=लडखडाते हुए, स्खलित। अधखुलित=अधखुले। जोति=कान्ति। छकी=पीकर तृप्त हुई। खरी=बहुत अधिक।

अर्थ—उस नायिका के अरुण वदन की छवि मदिरा पी लेने के बाद और भी अधिक सुन्दर हो जाती है, क्योकि तब उसकी आवाज लडखडाने लगती है, उसकी आँखें अधखुली होती है और मुख पर सुन्दर स्वेद बिन्दु झलक आते है।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका की सखी नायक को लुभाने के लिए कह रही है—

निपट लजीली नवल तिय, बहकि बारुनी सेय।
त्यौं त्यौं अति मीठी लगै, ज्यौं-ज्यौं ढीठ्यौ देय ।।३३४।।

निपट=बिल्कुल। बहकि=बहक कर। बारुनी=शराब। सेय=सेवन करके। ढीठ्यौ देय=ढिठाई प्रकट करती है।

अर्थ—वह नई नवेली वधू यद्यपि स्वभावत: तो बहुत ही लज्जालु है, परन्तु मदिरा का सेवन करके उसके नशे मे बहक कर वह ज्यो-ज्यो ढिठाई प्रकट करती है त्यो-त्यो और भी अधिक मीठी अर्थात् मधुर प्रतीत होती है।

अलकार—विभावना।

प्रसग—मद पान करके आपे से बाहर हुई नायिका का वर्णन करते हुए उसकी सखी कह रही है—

बाम तमासो करि रही, बिवस बारुनी सेय।
झुकति, हसति, हसिहसि, झुकति, झुकि झुकि हँसि हँसि देय ।।३३५।।

बाम = स्त्री। बारुनी = शराब, मदिरा। सेय = सेवन करके।

अर्थ—मदिरा का सेवन करके विवश होकर अर्थात् आपे से बाहर होकर नायिका अच्छा खासा तमाशा कर रही है। कभी वह झुकती है, कभी हँसती है, हँस-हँस कर झुकती है और झुक-झुक कर हँस देती है।

अलकार—स्वभावोक्ति ।

प्रसंग—मदिरा पीकर उन्मत्त हुई नायिका का वर्णन करते सखी कह रही है—

हंसि हसि हेरति नवल तिय, मद के मद उमदाति ।
बलकि बलकि बोलति बचन, ललकि ललकि लपटाति ॥३३६॥

हेरति = देखती है । नवल = नई नवेली । मद के मद = मदिरा के नशे में । उमदाति = उन्मत का सा आचरण करती है । बलकि बलकि = बहक-बहक कर । ललकि ललकि = लज्जा और सकोच को त्याग कर ।

अर्थ—नई नवेली स्त्री मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर हँस-हँस कर देखती हैं, बहक-बहक कर बातें करती है और लज्जा और सकोच को त्याग कर प्रियतम से लिपट जाती है ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

प्रसग—सखी नायक नायिका की रति का वर्णन दूसरी सखी से कर रही है—

लखि दौरत पिय कर कटक, बास छुडावन काज ।
बरुनी बन दृग गढ़नि में, रही गुढ़ौ करि लाज ॥३३७॥

दौरत = दौडते हुए । कटक = सेना । बास छुडावन काज = १ वस्त्र हटाने के लिए २. दुर्ग मे से निवास छुडाने के लिए । बरुनी = पलक । गढनि = गढ मे । गुढौ करि = छिप कर ।

अर्थ—जब नायिका ने प्रियतम के हाथ रूपी सेना को वस्त्र छुडाने के लिए दौडते देखा अथवा लज्जा को उसके दुर्ग से हटाने के लिये आक्रमण करते देखा, तो नायिका की लज्जा पलको के बन और आँखो के दुर्ग मे छिप कर रहने लगी ।

भाव यह है कि जब नायक ने रति के निमित्त नायिका के वस्त्र हटाये, तो नायिका की आँखो मे लज्जा भर आई ।

अलंकार—रूपक ।

प्रसग—सखी नायक और नायिका की रति का वर्णन करते हुए कह रही है—

सकुच सुरति आरम्भ ही, बिछुरी लाज लजाय।
ढरकि ढार ढरि ढिग भई, ढीठ ढिठाई आय ॥३३८॥

सकुच = सकोच सहित अथवा कुचो के स्पर्श सहित। सुरति = सभोग। बिछुरी = पृथक् हो गई। लजाय = लजा कर। ढरकि = धीरे से। ढरि = प्रसन्न होकर। ढार = उपाय।

अर्थ—सकोच सहित सभोग शुरू होते ही लज्जा मानो लजा कर दूर चली गई। उसके स्थान पर धृष्टतापूर्ण ढिठाई आ गई और वह नायिका धीरे-धीरे प्रसन्न होकर नायक के निकट हो गई अर्थात् उससे लिपट गई।

अलकार—स्वभावोक्ति और अनुप्रास।

प्रसंग—एक सखी दूसरी सखी से नायिका के विषय मे कह रही है।

दीप उजेरेहू पतिहि, हरत बसन रति काज।
रही लपटि छवि की छटनि, नेकौ छुटी न लाज ॥३३९॥

उजेरेहू = उजाले मे ही। बसन = वस्त्र। छटनि = शोभा मे।

अर्थ—जब पति ने दीपक के उजाले मे ही रति के निमित्त वस्त्र हटा दिये, तब वह अपनी कान्ति की शोभा मे ही ऐसी लिपटी रह गई कि उसकी लज्जा तनिक भी न गई।

भाव यह है कि नायक का ध्यान उसके सौन्दर्य की कान्ति की ओर गया, उसकी नग्नता की ओर न गया।

अलकार—विशेषोक्ति।

प्रसग—नायक के विपरीत रति की प्रार्थना पर नायिका ने जो कुछ किया, उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

रमन कह्यौ हठि रमनि सो, रति बिपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर, सलज, सरोष, सहास ॥३४०॥

रमन = नायक या प्रियतम। हठि = हठपूर्वक। रमनि = नायिका। चितई = देखा। सतर = टेढे, तर्जना करते हुए।

अर्थ—जब प्रियतम ने हठपूर्वक प्रियतमा से विपरीत रति का आनन्द लेने के लिये अनुरोध किया, तब नायिका ने लज्जा, रोष और हसी के साथ तिरछे नयन करके देखा।

लज्जा, क्रोध और हँसी के साथ देखने का अर्थ स्वीकृति प्रदान करना है। ये तीनो भाव इसी क्रम से एक के पश्चात् एक उत्पन्न हुए।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से नायिका के विषय मे कह रही है—

बिनती रति बिपरीत की, करी परसि पिय पाय।
हँसि अनबोले ही दियो, उतर दियो बताय ॥३४१॥

परसि=छूकर। पाय=पैर। दियो बताय=दिये की ओर सकेत करके। कुछ पुस्तको मे 'बुताय' पाठ मिलता है। उस दशा मे अर्थ होगा दीपक को बुझा कर।

अर्थ—प्रिय अर्थात् नायक ने नायिका के पैर छूकर विपरीत रति के लिए अनुरोध किया। इस पर नायिका ने हँस कर बिना बोले ही दीपक की ओर सकेत करके उत्तर दिया।

दीपक की ओर सकेत करने से अभिप्राय यह है कि दीपक के जलते रहते तुम्हारा अनुरोध स्वीकृत नही हो सकता। यदि 'बुताय' पाठ माना जाये, तो अर्थ यह होगा कि नायिका ने दीपक को बुझा कर उत्तर दे दिया, अर्थात् नायक की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

अलंकार—सूक्ष्म।

प्रसग—नायक और नायिका विपरीत रति मे मग्न है। उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

पर्‌यो जोर बिपरीत रति, रूपी सुरति रनधीर।
करत कुलाहल किकनी, गह्यो मौन मंजीर ॥३४२॥

पर्‌यो जोर=जोड पड गया है, अर्थात् दोनो पहलवान एक दूसरे से गुथ गये है। रुपी=डटी हुई है। कुलाहल=शोर। किकनी=रशना, कमर मे पहनने का आभूषण। मजीर=बिछुवा।

अर्थ—हे सखी, ऐसा लगता है कि विपरीत रति मे नायक और नायिका का जोड पड गया है, अर्थात् दोनो एक दूसरे से गुँथे हुए हैं और धीर नायिका सुरति रूपी रण मे डटी हुई है। यही कारण है कि किकणी कोलाहल कर रही है और नूपुर चुप हो गये है।

विपरीत रति मे किकणी का कोलाहल करना स्वभाविक है। परन्तु रत्नाकर जी ने इसमे से यह भी ध्वनि सूचित की है कि किकिणी स्त्रीलिग होने के कारण नायिका की विजय पर प्रसन्न हो रही है और नूपुर पुल्लिग होने के कारण नायक के नीचे पडे होने पर मौन धारण किये हुए है।

अलकार—रूपक और अनुमान।

प्रसग—कृष्ण और राधिका के सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

राधा हरि, हरि राधिका, बनि आये सकेत।
दपति रति विपरीत सुख, सहज सुरत हू लेत ॥३४३॥

बनि=बनकर। सकेत=पहले से नियत किये हुए स्थान पर। सहज=स्वभाविक।

अर्थ—राधा कृष्ण का रूप धारण करके और कृष्ण राधा का रूप धारण करके सकेतित अर्थात् पहले से नियत स्थान मे आये है। इस प्रकार एक दूसरे का रूप धारण किये हुए होने के कारण वे दम्पति स्वभाविक रति मे भी विपरीत रति का आनन्द ले रहे हैं।

अलकार—विभावना।

प्रसग—एक सखी दूसरी सखी से नायक और नायिका के सुरतान्त का वर्णन कर रही है—

सकुचि सरकि पिय निकट तें, मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आचर की ओट करि, जमुहानि मुख मोरि ॥३४४॥

सरकि=हट कर। मुलकि=मुस्करा कर। तनतोरि=अगडाई लेकर। जमुहानी=जम्भाई ली।

अर्थ—रति के अन्त मे वह नायिका सकोच के साथ प्रियतम के निकट मे सरक कर अलग हट गई। मुस्करा कर उसने अगडाई ली, फिर अपने हाथ और आचल की ओट करके और प्रियतम की ओर से मुँह मोड कर उसने जम्भाई ली।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसंग—कोई काम-लोलुप व्यक्ति रति और मुक्ति की तुलना करके क.
है—

चमक, तमक, हांसी, सिसक, मसक, झपट, लपटानि।
ये जिहि रति सो रति मुकुति, और मुकुति अति हानि ॥३५४॥

चमक=चौकना। तमक=उत्तेजना। हासी=हास्य। सिसक=सीत्कार मसक=दबाना, मलना। लपटानि = लिपट जाना। मुकुति = मोक्ष।

अर्थ—जिस रति मे चौकना, उत्तेजित हो जाना, हँस उठना, सी-सी करना, दबाना और झपट कर लिपट जाना, ये बातें हो, वही वस्तुत मुक्ति है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मुक्ति होती हो, तो वह घाटे का ही सौदा है।

भाव यह है कि इस प्रकार की रति की तुलना मे मुक्ति भी हेय है।

अलकार—व्यतिरेक और स्वभावोक्ति।

प्रसग—सखी प्रभात काल मे उठती हुई नायिका के आलस्य का वर्णन करते हुए कह रही है—

लखि लखि अखियन अधखुलिन, आग मोरि अगराय।
आधिक उठि लेटत लटकि, आलस भरी जभाय ॥३४६॥

अखियन = आँखो से। आग = अंग, शरीर। अगराय = अगडाई लेकर। आधिक = लगभग आधी। जभाय = जभाई ले कर।

अर्थ—वह नायिका अधखुली आँखो से बार-बार देख कर अर्थात् यह देख कर कि नायक उसके पास लेटा है या नही, और अग मरोड कर, अगडाई लेकर, आधी उठ कर फिर आलस्य भरी जभाई लेकर शिथिल होकर लेट जाती है।

यह रति के कारण श्रान्त नायिका का वर्णन है।

अलकार—कारक दीपक और स्वभावोक्ति।

प्रसंग—प्रभात मे आलस्य से भरे हुए नायक और नायिका का वर्णन करते हुए एक सखी अन्य सखी से कह रही है—

नीठि नीठि उठि बैठि कै, प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरे खरे, गरे लागि गिर जात ॥३४७॥

नीठि नीठि=अत्यन्त कठिनता से। प्यौ प्यारी = प्रियतम और प्रियतमा। गरे लागि = गले लग कर।

अर्थ—प्रात काल के समय नायक और नायिका दोनो वडी कठिनाई से जैसे-तैसे उठकर वैठते है, परन्तु दोनो वहुत अधिक नीद मे भरे होने के कारण एक दूसरे के गले लग कर फिर विस्तर पर ही गिर जाते है।

भाव यह है कि रति की श्रान्ति और निद्रा के आधिक्य के कारण प्रात काल वे उठना ही नही चाहते।

अलकार—स्वभावोक्ति।

प्रसग—सखी नायिका के कह रही है कि तेरे लक्षण ही इस वात को वता रहे है कि तूने रात मे नायक के साथ रति की है—

लाज गरब आलस उमंग, भरे नैन मुसक्यात।
राति रमी रति देत कहि, औरै प्रभा प्रभात ॥३४८॥

गरव = गर्व। राति रति रमी = रात मे रति की है।

अर्थ—तेरे लज्जा, गर्व, आलस्य और उमग से भरे हुए नयन मुस्करा रहे है। इस प्रभात काल मे तेरी निराली शोभा ही इस वात को वताये दे रही है कि रात मे तू अपने प्रियतम के साथ रमी है।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति और अनुमान।

प्रसग—सखी रति श्रान्ता नायिका से कह रही है—

यह बसन्त न खरी अरी, गरम न सीतल वात।
कहि क्यों प्रगटे देखियत, पुलक पसीजे गात ॥३४९॥

वात = वायु। पुलक = रोमांच। पसीजे = स्वेद युक्त।

अर्थ—अरी, यह तो वसन्त ऋतु है। अभी तो वहुत गर्मी नही हुई और न ठडी हवा ही चल रही है। फिर तेरे अग-प्रत्यग किसलिए स्वेदयुक्त और रोमांच युक्त दिखाई पड रहे है?

भाव यह है कि पसीना गर्मियो मे आता है और रोगटे ठडी वायु के कारण खडे होते है। इस वसन्त ऋतु मे ये दोनो ही वातें नही है। इसलिए तेरे रोमांच और स्वेद का कारण अवश्य प्रियतम के साथ मिलन ही है।

अलकार—विभावना और अनुमान।

प्रसग—नायिका ने सारी रात नायक के साथ रति मे विताई है। उसी को लक्ष्य करके एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

रगी सुरत रग, पिय हिये, लगी जगी सब राति।
पैंड पैंड़ पर ठठकि कै एँड भरी ऐंडाति ॥३५७॥

सुरत रग रग रगी = सुरत के आनन्द मे मग्न। हिये = हृदय। राति = रात। पैंड = कदम। ठठकि कै = रुक कर। एँड = गर्व, घमड। ऐंडाति = ऐंठ-ऐंठ कर चल रही है।

अर्थ—यह नायिका सभोग के आनन्द मे डूबी हुई प्रियतम के हृदय से लगी हुई सारी रात जागती रही है। इसीलिए अब वह कदम-कदम पर रुक कर गर्व के साथ ऐंठ ऐंठ कर चल रही है।

अलकार—अनुमान।

प्रसग—नायिका की आँखे उनीदी है। पूछने पर वह कारण वताती है कि किसी समारोह मे उसे रात्रि जागरण करना पडता है। इस पर सखी कहती है—

सही रगीली रतिजगे, जगी पगी सुख चैन।
अलसौ हैं सौंहैं किये, कहैं हसौ हैं नैन ॥३५१॥

रगीली = रस रग मे मस्त रहने वाली। रतिजगा = (१) किसी उत्सव के निमित्त रात्रि जागरण (२) रति के निमित्त जागरण। पगी = डूबी हुई, सरावोर। अलसौ है = आलस्य से भरे हुए। सौहैं किये = शपथ करते हुए। हसौ है = हासपूर्ण।

अर्थ—अरी रसरग में मस्त रहने वाली, तू ठीक कहती है कि सुख-चैन मे डूबी हुई तू रतिजगा करती रही है। आलस्य से भरे हुए और हँसते हुए तेरे नयन शपथ खा-खाकर यही वात कह रहे है।।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति, लाटानुप्रास।

प्रसग—नायिका ने विपरीत रति की है इस वात को वह सखी से छिपाना चाहती है, परन्तु सखी वास्तविकता को पहचान कर उससे कहती है—

मेरे वूझत बात तू, कत वहरावति बाल।
जग जानी विपरीत रति, लखि विंदुली पिय भाल ॥३५२॥

बूझत = पूछने पर। कत = क्यो। बहरावति = बहला रही है, टाल रही है। विंदुली = बिन्दी। पिय भाल = प्रियतम के मस्तक पर।

अर्थ—अरी बाला, तू मेरे पूछने पर बात को टालती क्यो है? तेरे प्रियतम के माथे पर लगी बिन्दी को देखकर सारी दुनिया ने यह जान लिया है कि उसने विपरीत रति की थी। फिर मुझसे तो यह बात छिपेगी ही क्या?

अलकार—अनुमान।

प्रसग—सुरत के अन्त मे नायिका ने लज्जा और श्रान्ति से अवखुली दृष्टि से जिस प्रकार नायक को देखा था, उसी का स्मरण करके नायक अपने किसी अन्तरग मित्र से कह रहा है—

लहि रतिसुख लगियै गरे लखी लजौहीं नीठि।
खुलत न मो मन बँधि रही, वह अधखुली डीठि॥३५३॥

लगियै गरे = गले लगे लगे ही। लजौ ही = लज्जाभरी। नीठि = कठिनाई से।

अर्थ—रति का आनन्द प्राप्त करने के बाद मेरे गले लगे लगे ही उसने जैसे-तैसे बड़ी कठिनाई से लज्जा भरी दृष्टि से अधखुली आँखो से मेरी ओर देखा था, उसकी वह दृष्टि ही, मेरे मन मे बँधी हुई है, किसी प्रकार खुलने मे ही नही आती।

भाव यह है कि वह अधखुली दृष्टि मुझे इतनी प्रिय लगी कि किसी प्रकार भूलती ही नही। इसमे यह चमत्कार भी है कि अधखुली दृष्टि खुलने मे ही नही आती।

अलकार—विरोधाभास।

प्रसग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

यो दलमलियत निरदई, दई कुसुम से गात।
कर धर देखौ धरधरा, अजौं न उर ते जात॥३५४॥

दलमलियत = मसलना। दई = हे भगवान। धरधरा = धड़कन।

अर्थ—हे भगवान, यही ये फूल जैसे कोमल अंग इस प्रकार निर्दयता से

मसले जाते है ! उसकी छाती पर हाथ तो रख कर देखो; उसकी धडकन अभी तक नही गई है।

सखी बडी कुशलता से नायक को नायिका की ओर आकर्षित कर रही है। एक ओर तो वह उसकी पहली रति का स्मरण दिलाती है और दूसरी ओर उसे नायिका की छाती पर हाथ रख कर देखने के लिए कहती है।

अलंकार—भाविक और लाटानुप्रास।

प्रसंग—नायिका के ओठ नायक द्वारा चूमे जाने के कारण लाल हो उठे है। उस लाली को नायिका ने पान की लाली से छिपा रखा था। पर अब पान की लाली छूट जाने पर दन्तक्षत की लाली स्पष्ट दीखने लगी है। इसी को लक्ष्य करके सखी नायिका से कह रही है—

सुदुति दुराये दुरति नहिं, प्रकट करति रति रूप।
छुटे पीक औरे उठी, लाली अधर अनूप ॥३५५॥

सुदुति=सुन्दर छटा। दुराये=छिपाये। दुरति=छिपती। रति=समागम या नायक के साथ मिलन। पीक=पान की लाली। अनूप=अद्‌भुत।

अर्थ—ओठ की जिस सुन्दर कान्ति को तू छिपाना चाहती है, वह पान की पीक से छिपाये छिपती नही, वह नायक के साथ हुए तेरे समागम को प्रकट कर रही है। पान की लाली छूट जाने पर तेरे ओठो में दन्तक्षत की और ही अद्‌भुत लाली दिखाई पडने लगी है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति और उन्मीलित।

प्रसंग—चुम्बन के समय प्रियतम के दाँत से नायिका का ओठ कट गया है। उसे देखते हुए वह कैसे दिन बिताती है, इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

छनक उघारति, छन-छुवति, राखति छनक छिपाय।
सब दिन पिय खंडित अधर, दरपन देखत जाय ॥३५६॥

छनक=क्षण भर। उघारति=उघाडती है, अनावृत करती है। पिय खंडित=प्रियतम द्वारा काटे गये।

अर्थ—वह नायिका सारे दिन प्रियतम द्वारा चुम्बन के समय खंडित कर दिये गये अपने होठ को दर्पण मे देखती रहती है। कभी वह उसे उघाडती है,

फिर कभी उसे छूती है और फिर उसे छिपा लेती है।

उघाडने से ध्वनि यह है कि वह उसे अपनी सपत्नियो को दिखाना चाहती है, छूने से ध्वनित यह है कि वह उस मिलन का आनन्द करके मुदित होती है और छिपाने मे यह व्यजना है कि वह लज्जा प्रदर्शित करके यह जता देना चाहती है कि यह ओठ प्रियतम के दन्तक्षत से ही कटा है, अन्य किसी प्रकार नही।

अलकार—कारक दीपक।

प्रसग—किसी गर्भवती स्त्री को देख कर कवि कह रहा है—

दृग थिरकौहैं अधखुले, देह थकौहैं ढार।
सुरत सुखित सी देखियत, दुखित गरभ के भार ॥३५७॥

थिरकौहै=चचल। ढार=सी, समान। सुरत सुखित=सम्भोग से आनन्दित। गरभ के भार=गर्भावस्था के बोझ के कारण।

अर्थ—उस स्त्री की आँखे चचल है। उसका शरीर थका हुआ सा है। वह गर्भ का बोझ धारण करने के कारण इस अवस्था मे है, परन्तु देखने से लगता है कि वह सम्भोग के बाद आनन्दित हो रही है।

वस्तुत यहाँ सुरत सुखित और गरभ के भार दुखित में समानता दिखाई गई है।

अलकार—विभावना।

अन्य संभोग दुःखिता

प्रसग—नायिका ने पडोसिन के हाथ मे एक अँगूठी देखी और देखते ही पहचान लिया कि यह तो नायक की दी हुई है। उसने चालाकी से वह अँगूठी पडोसिन से ले ली और उसे नायक को दिखाया। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

छला परोसिन हाथ ते, छल करि लियो पिछानि।
पियहिं दिखायो लखि बिलखि, रिस सूचक मुसुकानि ॥३५८॥

छला=अँगूठी। छलकरि=चालाकी से। पिछानि=पहचान कर। बिलखि=दुखी होकर।

अर्थ—नायिका ने पडौसिन के हाथ मे नायक की दी हुई अँगूठी को देख कर पहचान लिया और चालाकी से उसके हाथ से ले लिया। फिर उस अँगूठी को ध्यान से देख कर दुखी होकर क्रोध सूचक मुस्कराहट से उसे नायक को दिखाया।

भाव यह है कि नायिका ने पहले तो उस अँगूठी को दुखी होकर स्वय देखा और उसके बाद क्रोध भरी मुस्कुराहट के साथ नायक को दिखाया। क्रोध भरी मुस्कुराहट मे क्रोध, बेबसी और प्रेम तीनो का सम्मिश्रण है।

अलकार—सूक्ष्म और लाटानुप्रास।

प्रसग—नायिका ने सौत के पैरो पर फैला हुआ महावर देखा। तव उसकी जो दशा हुई उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

बिथुर्‌यो जावक सौति पग, निरखि हंसि गहि गास।
सलज हंसौ हीं लखि लियो, आधी हँसी उसांस ॥३५९॥

विथुर्‌यो=फैला हुआ। जावक=महावर। गहि गास=व्यग्य करते हुए। हँसौ ही=हँसती हुई। उसास=लम्बा सांस, उच्छ्‌वास।

अर्थ—वह नायिका सौत के पैरो पर फैले हुए महावर को देख कर व्यगपूर्वक हँसी (यह सोच कर हँसी कि इसे पैरो पर ठीक तरह महावर लगाना भी नही आता कि जो इस बुरी तरह दूर-दूर तक फैला लिया है) परन्तु उसे लज्जापूर्वक मुस्काराते देखकर उसने हँसी के बीच मे ही लम्बा सांस लिया।

भाव यह है कि सौत को लज्जापूर्वक हँसते देख कर उसने यह समझ लिया कि यह महावर सौत ने स्वय नही लगाया, अपितु उनके पैरो पर नायक ने लगाया है और यह समझते ही उसकी हँसी अध-बीच मे हो रह गई और उसने एक लम्बा सांस लिया जो खिन्नता अथवा दुःख का सूचक था।

अलकार—व्याघात।

प्रसग—नायिका ने स्वय एक हार गूँथ कर आग्रहपूर्वक नायक को पहनाया। नायक ने सौत के माँगने पर वह हार उसे दे दिया। जब नायिका ने सौत के गले मे उस हार को देखा तो वह महादेव के हार, अर्थात् साँप जैसा दिखाई पडने लगा। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

हठि, हित करि प्रीतम दियो, कियो जु सौति सिगारु।
अपने कर मोतिन गुह्यो, भयो हरा हर हारु ॥३६०॥

हठि=जिद, बल पूर्वक। हित=प्रेम। सिगारु=शृ गार। हरा=हर। हर हारु=महादेव का हार अर्थात् साँप।

अर्थ—अपने हाथ से मोतियो से हार गूँथ कर हठ और प्रेमपूर्वक जिसे प्रियतम को पहनाया था, उसी हार से जब सौत ने अपना शृँगार किया, तो वह हार नायिका को हर-हार महादेव के हार अर्थात् साँप की तरह दिखाई पडा।

अलकार—व्याघात।

प्रसग—नायिका की सखी नायिका से कह रही है—

आज कछू औरै भयो, ठये नये ठिकठैन।
चित के हित के चुगुल ये, नित के होंहि न नैन ॥३६१॥

औरै=और ही, विलक्षण, ठये नये ठिकठैन=नये ही ठाठवाट हैं। हित=प्रेम। चुगुल=चुगली करने वाले।

अर्थ—हे सखी! क्या वात है, आज तो तुम्हारे ठाठवाट कुछ नये और विलक्षण ही हैं। हृदय के प्रेम की चुगली करने वाले (अर्थात् उसका रहस्य खोल देने वाले) ये तुम्हारे नेत्र नित्य के से नही है (अर्थात् कुछ विलक्षण ही जान पडते हैं)।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति।

प्रसग—अन्यसभोग दुखिता नायिका कह रही है—

औरै ओप कनीनिकनि, गनी घनी सिरताज।
मनी घनी के नेह की, बनी छनी पट लाज ॥३६२॥

औरै=विचित्र ही। ओप=चमक। कनीनिकनि=आँख की पुतलियों में। गनी=गिनी गई। धनी=पति। मनी=मणि, रत्न। लाज पट छनी=लज्जा के वस्त्र में से छनी हुई।

अर्थ—हे सुन्दरी, आज तेरी आँखो की पुतलियो मे निराली ही चमक है। अब तू बहुतो मे अर्थात् बहुत सी सपत्नियो मे सिरताज अर्थात् श्रेष्ठ गिनी गई है, क्योंकि तू लज्जा के वस्त्र मे छनी हुई अर्थात् लज्जा युक्त होकर पति के स्नेह की मणि बनी है।

भाव यह है कि अन्य सपत्नियो की उपेक्षा करके पति ने तुझे स्नेह दिया है, इसीलिए तेरी आँखो में निराली चमक है।

अलकार—वृत्त्यनुप्रास, भेदकातिशयोक्ति और अनुमान।

प्रसंग—नायिका ने दूती को नायक के पास भेजा था। परन्तु नायक ने दूती के साथ ही रति की। इस बात को पहचान कर नायिका दूति को उलाहना देते हुए कह रही है—

नटि न सीस, साबित भई, लुटी सुखनि की मोट।
चुप करिए चारी करत, सारी परी सरोट ॥३६३॥

नटि न=इन्कार मत कर। सुखनि की मोट लुटी=तूने सुख की गठरी लूटी है अर्थात् खूब आनन्द किया है। चारी=चुगली। सारी=साड़ी। सरोट=सलवट।

अर्थ—अब तू इन्कार मत कर। यह बात सिद्ध हो गयी है कि तूने सुखो की गठरी लूटी है। अर्थात् नायक के साथ रति की है। अब चुप रह, यह तेरी साडी मे पडी हुई सलवट ही तेरी चुगली कर रही है अर्थात् तेरा रहस्य खोल रही है।

अलंकार—अनुमान।

प्रसंग—अन्य सभोग दु खिता नायिका दूती से कह रही है—

मोसो मिलवति चातुरी, तू नहिं भानति भेव।
कहे देत यह प्रगट ही, प्रकट्यु पूस पसेव ॥३६४॥

चातुरी मिलवति=चालाकी करती है। भेव भानति=भेद खोलती, असली बात बताती। पूस पसेव=पौष मास मे आने वाला पसीना।

अर्थ—तू मुझ से इतनी चतुराई कर रही है और अपने भेद की सही-सही बात नही बताती, पर इस पूस के महीने मे प्रकट होता हुआ पसीना ही तेरे भेद को प्रकट किये दे रहा है।

वह भेद यह है कि तू नायक के साथ रमण करके आई है।

अलकार—विभावना और अनुमान।

प्रसग—नायक ने परकीया नायिका के साथ रात बिताई है। नायिका के मोतियो के हार के कारण नायक की छाती मे उनके निशान गड्ढो की तरह बन गये है। उन्हे देख कर खडिता स्वकीया नायिका कहती है—

वेई गडि गाडै परीं, उपट्यो हार हियै न।
आन्यो मोरि मतग मनु, मारि गुरेरन मैन ॥३६५॥

गाडै=गड्ढे। उपट्यो=उभर आया है। हारु=हार। आन्यो=लाया है। मतग=हाथी। मनु=मन। गुरेरन=गुलेलो से। मैन=कामदेव।

अर्थ—तुम्हारे वक्षस्थल पर ये हार के निशान नही उभरे हुए है, अपितु ऐसा लगता है कि कामदेव गुलेल से मार-मार कर तुम्हारे मन रूपी हाथी को यहाँ लाया है और गुलेल की उन चोटो के ही ये निशान है।

'हार' से अभिप्राय किसी अन्य स्त्री के कठ मे पहने हुए हार से है। यह भी ध्वनित है कि यदि कामदेव आपको यहाँ न लाता, तो आप अब भी न आते।

अलकार—शुद्धपह्नुति और रूपक।

प्रसग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

दच्छिन पिय ह्वै बाम बस, बिसराई तिय आन।
एकै बासर के बिरह, लागी बरष बिहान ॥३६६॥

दच्छिन पिय=दक्षिण नायक। यह वह नायक होता है, जो एक साथ बहुत सी स्त्रियो से समान रूप से प्रेम करता है। बाम=१ स्त्री २ उल्टा या टेढा। बिसराई=भुला दी। आन=१ अन्य २ गौरव, बडप्पन। बासर=दिन। बिहान लागे=बीताने लगे।

अर्थ—हे नायक, तुमने दक्षिण नायक होकर भी एक वाम अर्थात् कुटिल स्त्री के वश मे होकर अन्य अर्थात् अपनी पहली स्त्री को (अथवा अपनी स्त्री

के गौरव को) भुला दिया है। अब तुम्हारे विरह मे उसका एक-एक दिन वर्ष के समान बीतता प्रतीत होता है।

अलकार—विरोधाभास, अत्युक्ति।

प्रसग—नायक ने रात्रि घर से बाहर किसी अन्य स्थान पर बिताई है। रात भर उसकी प्रतीक्षा करने के बाद प्रभात मे नायिका अपनी सखी से कह रही है—

> नभ लाली, चाली निसा, चटकाली धुन कीन।
> रति पाली आली अनत, आये बनमाली न ॥३६७॥

चाली=चल पडी। चटकली=चिडियो का समूह। चटक का अर्थ कई टीकाकारो ने गौरैया किया। उनकी आली अर्थात् समूह। धुन=ध्वनि। रति=प्रेम। अनत=अन्यत्र। वनमाली=कृष्ण।

अर्थ—आकाश मे प्रभात की लाली छा गई। रात्रि आकाश से चल पडी। पक्षियो का समूह कोलाहल करने लगा। कृष्ण आज यहाँ नही आये। ऐसा लगता है कि आज उन्होने किसी अन्य स्थान पर प्रेम निवाहा है, अर्थात् किसी अन्य स्त्री से प्रेम किया है।

अलकार—अनुमान और अनुप्रास।

प्रसंग—सौत के प्रति अनुरक्त नायक को उलाहना देते हुए धीरा नायिका कहती है—

> मोहि दयो मेरो भयो, रहत जु मिलि जिय साथ।
> सो मन बाँधि न सौंपिये, पिय सौतिन के हाथ ॥३६८॥

जिय=प्राण। पिय=प्रियतम।

अर्थ—हे प्रियतम, आपने जो अपना मन मुझे दिया था, वह मेरा हो गया और अब वह मेरे प्राणो के साथ मिल कर रहता है (अर्थात् आपका मन मेरे प्राणो से घुल-मिल गया है), अब उस मन को बांध कर बलपूर्वक सौत के हाथ मत सौंपिये।

भाव यह है कि आपके मन के साथ मेरे प्राण जुडे हुए है और यदि आपने अपना मन सौत को सौंप दिया, तो मेरे प्राण भी उनके साथ ही चले जायेंगे।

अलंकार—काव्यलिंग।

प्रसंग—नायक ने कभी नायिका से प्रेम किया था, पर अब वह उससे विमुख हो चला है। इस पर उलाहना देते हुए नायिका नायक से कहती है—

आपु दियो मन फेरि लै, पलटै दीन्हीं पीठि।
कौन चाल यह रावरी, लाल लुकावत डीठि ॥३६९॥

फेरि लै=वापस ले कर। पलटे=बदले में। पीठि दीन्ही=मेरी ओर पीठ कर ली, अर्थात् मुँह मोड लिया। रावरी=तुम्हारी। लुकावत=छिपाते हो।

अर्थ—तुमने अपना मन मुझे दिया था, उसे तुमने वापस ले लिया और उसके बदले में पीठ दी अर्थात् मुँह मोड लिया। हे लाल, यह तुम्हारी क्या रीति है, जो अब तुम आँखें तक छिपाते हो (अर्थात् नजर भी बचाकर चलते हो)

अलंकार—परिवृत्ति।

प्रसंग—परकीया नायिका ने नायक की पत्नी से बहनापा जोड लिया। पर नायक की पत्नी की सहेली उसे सलाह देते हुए कह रही है—

बहकि न इहिं बहिनापने, जब तब बीर बिनासु।
बचै न बडी सबील हू, चील्ह घोसुआ मासु ॥३७०॥

बहकि न=धोखे मे मत आ। बहिनापने=बहनापे के। बीर=मित्र। सबील=उपाय।

अर्थ—हे सखी, यह जो बहनापे का ढोंग करके आती है, इसके बहनापे के धोखे मे मत आ। क्योंकि कभी न कभी विनाश होकर रहेगा। कितना ही बडा उपाय क्यों न कर लो, चील के घोंसले में रखा हुआ माँस बच नहीं सकता।

भाव यह है कि यह जो बहनापे का बहाना करके यहाँ आती है, यह कोई न कोई उपाय करके तेरे पति को अपने वश में कर लेगी और तू देखती रह जायेगी।

अलंकार—दृष्टान्त और लोकोक्ति।

खंडिता नायिका

प्रसग—खडिता नायिका नायक को ताना देते हुए कह रही है—

कत लपटैयत मो गरे, सो न जु ही निसि सैन।
जिहि चम्पकबरनी किये, गुल्लाला रंग नैन ॥३७१॥

लपटैयत=लिपटते हो। निसि=रात मे। सैन=शय्या। चम्पकबरनी =चम्पक के समान रग वाली। गुल्लाला=एक लाल रग का फूल।

अर्थ—मेरे गले से किसलिए लिपट रहे हो ? मैं वह नही हूँ, जो रात तुम्हारी सेज पर थी। जिस चम्पक के समान रग वाली सुन्दरी ने रात भर जगा कर तुम्हारे नेत्रो को गुल्लाला के रग का कर दिया है।

इस दोहे मे चमत्कार यह है कि इसमे शब्द ऐसे प्रयुक्त किये गये है, जो अनेक फूलो के नाम है। लपटैया, मोगरा, सोनजुही,निशिशयन अर्थात् कमल, चपक, वरनी अर्थात् पर्णा, गुल्लाला और नैन अर्थात् पचनैना, ये सब फूलो के नाम है। यद्यपि इनका इस दोहे के अर्थ मे कोई प्रयोजन नही है, फिर भी चमत्कार तो यह है ही।

अलकार—मुद्रा और पूर्णोपमा।

प्रसग—खण्डिता नायिका नायक से कह रही है—

पल सौंहे पगि पीक रंग, छल सो हे सब बैन।
बल सौंहें कीजियत, ए अलसौं हे नैन ॥३७२॥

पल=पलके। पीक=पान की पीक। बैन=वचन। बल=जबरदस्ती। अलसौ हे=अलसाये हुए हैं। सौहै=सामने।

अर्थ—आपकी पलकें पान की पीक के रग से सुशोभित है। आपके सब वचन छल से भरे हुए है। अब इन अलसायी हुई आँखो को बलपूर्वक मेरे सामने क्यो उठा रहे है ?

भाव यह है कि पलको पर लगी पीक इस बात की सूचक है कि किसी अन्य स्त्री ने आपकी पलकें चूमी है। झूठी बातें बना कर इसे छिपाना चाहते है। आपके अलसाये नयन लज्जित होकर नीचे झुक रहे हैं, पर अपनी निर्दोषता जताने के लिए आप उन्हे बलपूर्वक उठा रहे है।

अलंकार—यमक।

प्रसंग—नायक रात भर किसी अन्य स्त्री के पास रह कर सवेरे घर आया है। इस पर नायिका की सखी नायक को बुरा-भला कहती है, तब नायिका अपनी सखी को रोकते हुए और नायक को ताना देते हुए कहती है—

भये बटाऊ नेह तजि वादि बकति बेकाज।
अब अलि देत उराहनो, उर उपजति अति लाज ॥३७३॥

बटाऊ=पथिक। नेह=प्रेम। वादि=व्यर्थ। बकति=बकझक करती है। अलि=सखी। उराहनो=उलाहना।

अर्थ—हे सखी, अब तो इन्होने मुझे छोड दिया है और राह के बटोही हो गये है। अब तू इन से व्यर्थ क्यो बकझक करती है? उसका कोई लाभ न होगा। अब तो हालत यह हो गई है कि इन्हे उलाहना देते हुए भी मुझे मन मे बडी लज्जा होती है।

उलाहना उसे दिया जाता है, जिस पर अपना कुछ जोर हो और जिस पर उसका कुछ असर हो।

अलकार—आक्षेप और वृत्यनुप्रास

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

सुभरु भर्‌यौ तुव गुन कननि, पकयौ कपट कुचाल।
क्यौं धौं दार्‌यौ लौं हियो, दरकत नाहिन लाल ॥३७४॥

सुभरु भर्‌यौ=अच्छी तरह भर गया। कननि=दानो से। पकयौ=पक गया। दार्‌यौ=अनार, दाडिम। दरकत=फटता है। नाहिन=नही।

अर्थ—हे लाल, मेरा हृदय तुम्हारे गुण रूपी दानो से भली-भाँति भर गया है और तुम्हारे छल और दुष्ट आचरणो से वह पक भी गया है। अचरज नही है कि अब यह अनार की भाँति फट क्यो नही रहा।

अनार जब पक जाता है, तो वह फट जाता है। 'गुण' शब्द यहाँ आक्षेप करते हुए अवगुणो के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अलकार—रूपक और उपमा।

प्रसंग—नायक ने रात्रि कही अन्यत्र विताई है। प्रभात मे वह श्रान्त हो कर घर लौटा है। इस पर खडिता नायिका उससे कहती है—

> मै तपाय त्रय ताप सो, राख्यौं हियो हमाम।
> मकु कबहूं आवै इहाँ, पुलक पसीजे स्याम ॥३७५॥

हमाम=स्नान घर। त्रय ताप=तीन प्रकार के कष्ट अथवा गर्मी। मकु=सम्भवत। पुलक पसीजे=पसीने से तरबतर।

अर्थ—मैंने अपने हृदय रूपी हमाम अर्थात् स्नानागार को तीनो तापो मे तपा कर तैयार कर रखा है। क्योकि मुझे आशा थी कि शायद कभी श्याम अर्थात् नायक यहाँ पसीने से तर होकर आ पहुँचे।

भाव यह है कि जब नायक पसीने से तर होकर वहाँ पहुँचे, तो हमाम में जाकर स्नान कर सके। यहाँ हमाम नायिका का हृदय है जो मदनताप, विरह ताप और असूया ताप से तप रहा है।

कोई-कोई लोग श्याम का अर्थ कृष्ण अर्थात् भगवान करते हैं और त्रयताप का अर्थ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक कष्ट करते है। उस दशा मे इस दोहे का अर्थ भक्ति परक हो जायेगा। अर्थात् कोई भक्त कह रहा है कि मैंने अपने हृदय को तीन प्रकार के तापो से तपा कर हमाम बनाया हुआ है, जिससे शायद कभी भगवान करुणा करके इसमे आ जायें।

अलंकार—रूपक।

प्रसग—नायक किसी अन्य स्त्री के साथ रात बिता कर घर लौटा है। उसका खण्डिता नायिका के साथ प्रश्नोत्तर इस दोहे मे वर्णित है—

> बाल, कहा लाली भई, लोयन कोयन माह।
> लाल, तिहारे दृगन की, पड़ी दृगन में छाह ॥३७६॥

कोयन=पुतलियो में। तिहारे=तुम्हारे।

अर्थ—नायक पूछता है हे बाला, तेरी आखो की पुतलियो मे यह लाली किसलिए आ गई है? नायिका उत्तर देती है लाल, यह तुम्हारे नेत्रो का प्रतिबिम्ब मेरी आंखो मे पड रहा है।

वस्तुत नायिका की आँखें क्रोध के कारण लाल हैं और नायक की रात्रि-

जागरण के कारण। नायिका अपने उत्तर से यह सूचित करती है कि उसने नायक की आँखो की लाली का कारण जान लिया है।

अलकार—गूढोत्तर।

प्रसग—नायिका नित्य नयी-नयी स्त्रियो से प्रेम करने वाले नायक को समझाते हुए कह रही है—

फिरत जु अटकत कटनि बिन, रसिक सुरस न खियाल।
अनत अनत नित नित हितन, कत सकुचावत लाल ॥३७७॥

अटकत फिरत=उलझते फिरते हो। कटनि=प्रेम। सुरस=रसपूर्ण अथवा सच्चा प्रेम। खियाल=समझ।। अनत=अन्यत्र। हितन=प्रेमो के द्वारा। सकुचावत=लज्जित करते हो।

अर्थ—हे लाल, तुम जो प्रेम के बिना ही नयी-नयी स्त्रियो से उलझते फिरते हो, उससे मुझे ऐसा ख्याल होता है कि तुम सुरस के रसिक नही हो, अर्थात् सच्चे प्रेम का रस लेना नही जानते। नित्य प्रति नयी-नयी जगह प्रेम करके तुम मुझे किसलिए लज्जित करवाते हो ?

भाव यह है कि तुम नित्य नयी स्त्रियो से प्रेम करते हो, इस कारण मुझे लज्जित होना पडता है कि मैं अपने सच्चे प्रेम द्वारा तुम्हे बाँध कर नही रख पाती।

अलकार—विभावना और पर्यायोक्ति।

प्रसग—नायिका नायक की आँखो मे अपना प्रतिबिम्ब देखती है और उसे कोई अन्य स्त्री समझ कर नायक को उलाहना देते हुए कहती है—

जो तिय तुव मन भावती, राखी हिये बसाय।
मोहि खिजावति दृगनि ह्वै, वहिये उझकति आय ॥३७८॥

तिय=स्त्री। मन भावती=पसन्द, प्रिय। खिजावति=खिझाती है। दृगनि ह्वै=आँखो मे से होकर। उझकति=बाहर की ओर झाँकती है।

अर्थ—हे लाल, तुमने जो अपने हृदय मे अपनी मनभाती स्त्री वसा रखी है, वही तुम्हारी आँखो मे से आ आकर बाहर झाँकती है और मुझे चिटाती है।

अलकार—भ्रम।

प्रसग—खडिता नायिका शठ नायक से कह रही है—

मोहिं करत कत बावरी, किये दुराव दुरै न।
कहे देत रंग राति के, रग निचुरत से नैन ॥३७६॥

बावरी=पागल। दुराव किये=छिपाने से। राति के रग=रात्रि के आनन्द। रग निचुरत से=रग टपकाते से।

अर्थ—तुम मुझे इधर-उधर की बाते बना कर पागल क्यो बनाना चाहते हो? तुम्हारे ये रग टपकाते हुए से नेत्र (अर्थात् खूब लाल-लाल आँखें) रात के आनन्द को (अर्थात् तुमने गत रात्रि मे किसी अन्य स्त्री के साथ जो आनन्द किया है उसे) कहे दे रहे है। अब वे आनन्द तुम्हारे छिपाने से छिप नही सकते।

अलंकार—अनुमान और उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नायक प्रातःकाल घर लौटा है। उसकी आँखो मे पान के रग की रेखा अर्थात् लाली को देखकर नायिका कहती है—

पट सौं पोछि परे करो खरी भयानक भेख।
नागिन ह्वै लागति दृगनि, नागबेलि की रेख ॥३८०॥

खरी=बहुत। भेख=वेश। नागबेलि=पान।

अर्थ—तुम्हारी आँखो में यह पान की लाल रेखा दिखाई पड रही है, इसका रूप बहुत ही भयानक है। इसे वस्त्र से पोछ कर परे कर दो, क्योंकि यह मेरी आँखो मे नागिन-सी बन कर लग रही है।

जैसे नागिन के डसने से कष्ट होता है, उसी प्रकार तुम्हारी आँखो की इस लाली को, जो किसी अन्य स्त्री के साथ रात्रि-जागरण करने के कारण हुई है देख कर मुझे भी विष चढने की सी व्यथा हो रही है। यहाँ 'दृगनि' शब्द का अन्वय 'दृगनि लागति' और 'दृगनि नागबेलि' दोनो ओर किया जायेगा।

अलकार—उपमा और देहरी दीपक।

प्रसंग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

ससि बदनी मोकों कहत, हौं समुझी निजु बात।
नैन नलिन प्यौ रावरे, न्याय निरखि नैं जात ॥३८१॥

ससि वदनि=चन्द्रमुखी। निजु=ठीक-ठीक। नैन नलिन=नयन रूपी कमल। न्याव=ठीक ही। नै जात=झुक जाते है।

अर्थ—हे प्रिय, तुम जो मुझे चन्द्रमुखी कहा करते हो, वह बात आज मैं ठीक-ठीक समझ पाई हूँ। मै चन्द्रमुखी हूं, इसीलिए तुम्हारे नयन रूपी कमल मुझे देखकर ठीक ही झुक जाते है।

अन्य स्त्री के साथ विहार करने के कारण नायक नायिका के सम्मुख आँखें नही उठा पा रहा है, इसी पर यह नायिका का व्यंग है। कमल सूर्य को देख कर खिल उठते हैं और चन्द्रोदय होने पर मुकुलित होकर झुक जाते हैं।

अलंकार—परिकर और रूपक।

प्रसग—खडिता नायिका धृष्ट नायक से कह रही है—

दुरै न निघर घटौ दियै, या रावरी कुचाल।
विष सी लागति है बुरी, हंसी खिसी की लाल ॥३८२॥

निघर घटौ=अपने घर और घाट का (अर्थात् गति विधि का) पता निश्शक होकर बता देना। कुचाल=बुरे आचरण। खिसी की हंसी=खिसियाहट से भरी हुई हँसी।

अर्थ—आप जो निश्शक होकर अपनी गतिविधियाँ बतला रहे है, उससे आपकी कुचाल अर्थात् बुरा आचरण छिप नही सकता। हे लाल, आपकी यह खिसियाहट से भरी हुई हँसी विष जैसी बुरी लगती है।

'निघर घटौ' का अर्थ रत्नाकर जी ने निर्लज्जता या धृष्टता किया है। नायक इतना धृष्ट है कि वह नायिका के पूछताछ करने पर उल्टे-सीधे बहाने बना कर कुछ-कुछ कहता जाता है और खिसिया कर हँसता जाता है। इस पर नायिका उसकी भर्त्सना कर रही है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

प्रसग—खंडिता नायिका नायक से कह रही है—

जिहिं भामिनि भूषन रच्यो, चरण महावर भाल।
उहीं मनौं अँखियाँ रँगी, ओठनि कै रंग लाल ॥३८३॥

भामिनि=स्त्री। भूषन=सजावट।

अर्थ—जिस भामिनी अर्थात् स्त्री ने अपने चरणों के महावर से तुम्हारे

माथे पर सजावट कर दी है, अर्थात् अपने पैर का महावर तुम्हारे माथे पर लगा दिया है, उसी ने मानो अपने ओठो के रग से तुम्हारी आँखो को भी रग दिया है।

नायक ने किसी अन्य स्त्री के पैरो मे पडकर उसे मनाया, जिससे उसके पैरो का महावर माथे पर लग गया। फिर उसी के साथ रात भर जागने के कारण नायक की आँखें लाल हो गई है।

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायक के माथे पर किसी अन्य स्त्री के पैर का महावर लगा हुआ है। उसी की ओर सकेत करके खडिता नायिका नायक से कह रही है—

पावक सो नैननि लगै, जावक लाग्यो भाल।
मुकुर होहुगे नेकु मे, मुकुर बिलोको लाल ॥३८४॥

पावक=अग्नि। जावक=महावर। मुकुर होहुगे=मुकर जाओगे, इनकार कर दो। मुकुर बिलोको=शीशा देखो।

अर्थ—हे लाल, तुम्हारे माथे पर लगा हुआ यह जावक अर्थात् महावर मेरी आँखो मे आग-सा लग रहा है। तुम अभी शीशा देख लो, नहीं तो बाद मे मुकुर जाओगे अर्थात् यह कह दोगे कि मेरे माथे पर तो महावर था ही नही।

'आँखो मे आग सा लग रहा है' का भाव यह है कि इसे देखकर मेरे मन मे आग लग रही है।

अलकार—उपमा और यमक।

प्रसंग—नायिका ने स्वप्न मे नायक को किसी अन्य स्त्री के साथ रति करते देखा, इसी से उसे इतना क्रोध आया कि वह जागते हुए भी नायक के हृदय से लगना नही चाहती। इसी का वर्णन एक सखी से कर रही है—

रही पकरि पाटी सुरिस, भरे भौंह चित नैन।
लखि सपने पिय आन रति, जगतहूँ लगति हिय न ॥३८५॥

पाटी=चारपाई की बाही। सुरिस=बहुत क्रोध। भरे=क्रोध से भरे। आन रति=अन्य के साथ रति।

अर्थ—स्वप्न मे अपने पति को किसी अन्य स्त्री से रति करते देख कर

उसकी भौहे, चित्त और नेत्र क्रोध से भर गये। वह चारपाई की पाटी पकड कर एक ओर को लेट गई। यद्यपि वह जाग रही थी, फिर भी वह अपने पति की छाती से नही लगती थी।

अलकार—भ्रम और विशेषोक्ति।

प्रसग—नायक प्रभात काल मे घर लौटा है। उसकी आँखें लाल है। उन्हे देख कर खडिता नायिका उलाहना देते हुए कहती है—

रह्यौ चकित चहुँघा चितै, चित मेरो मति भूलि।
सूर उदै आये रही, दृगन साँझ सी फूलि ॥३८६॥

चकित=विस्मित। चहुँधा=चारो ओर। चितै=देख कर। मति भूलि=मूढ सा होकर। सूर उदै=सूर्योदय होने पर। दृगनि साझ सी फूलि रही=आँखो मे साँझ-सी खिल रही है।

अर्थ—मेरा मन चारो ओर देख कर किंकर्त्तव्यविमूढ-सा होकर चकित हो रहा है। इसका कारण यह है कि तुम सूर्योदय होने पर यहाँ आये हो फिर भी तुम्हारी आँखो मे सध्या सी छाई हुई है।

जैसे सन्ध्या के समय आकाश लाल हो जाता है, वैसे ही तुम्हारी आँखें लाल हो रही हैं। विस्मय का कारण यही है कि एक ओर सूर्योदय और दूसरी ओर सन्ध्या के समान लाल आँखो को देखकर यह समझ नही पडता कि इस समय प्रात काल है या सायकाल।

अलकार—उत्प्रेक्षा और विरोधाभास।

प्रसग—नायक रात भर घर से बाहर रहा सवेरे उसके लौटने पर नायिका को क्रोध तो बहुत आया परन्तु नायक को लज्जित देखकर वह अपना क्रोध प्रकट न कर सकी। यही बात वह अपनी सखी को बता रही है—

अनत बसे निसि की रिसनि, उर बरि रही बिसेषि।
तऊ लाज आई उझकि, खरे लजौं हैं देखि ॥३८७॥

अनत=दूसरी जगह, अन्यत्र। रिसनि=क्रोध। बरि रही=जल रही। बिसेपि=बहुत अधिक। उझकि आई=उमड आई।

अर्थ—उनके रात मे किसी और जगह रहने के कारण मेरे मे क्रोध की

आग बहुत जोर से जल रही थी। परन्तु उन्हे बहुत अधिक लज्जित देख कर मेरे मन में लज्जा उमड ही आई।

यदि नायक लज्जित न होता, तो नायिका उसे खूब खरी-खोटी सुनाती, परन्तु उसे बहुत लज्जित देख कर वह कुछ कह न सकी।

अलंकार—हेतु ।

प्रसंग—सौत के पैरो पर महावर लगा देख कर ही नायिका को कुछ क्षोभ हुआ, पर जब उसने नायक की उँगलियो को देखा, तो उसके क्रोध की सीमा न रही। यही बात एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

सुरंग महावर सौति पग, निरखि रही अनखाय।
पिय अगुरिन लाली लखे, खरी उठी लगि लाय ॥३८८॥

अनखाय=क्षुब्ध होकर। लाय लगि उठी=आग लग गई।

अर्थ—सौत के पैरो मे सुन्दर महावर को ही वह नायिका कुछ क्षुब्ध होकर देख रही थी। (क्योकि उसे लगता था कि महावर से रगे सौत के पैर सुन्दर दीखते है) पर जब उसने प्रियतम अर्थात् नायक की अँगुलियो की लाली देखी, तो उसके हृदय मे एकदम आग ही लग गई।

नायक की अँगुलियो की लाली से यह बात पता चलती थी कि उस नायक ने अपने हाथो से वह महावर सौत के पैरो मे लगाया है।

अलंकार—हेतु ।

प्रसग—नायिका धृष्ट नायक से कह रही है—

कत सकुचत, निधरक फिरौ, रतियौ खोरि तुम्हैं न।
कहा करौ जो जायं ये, लगैं लगौंहैं नैन ॥३८९॥

सकुचत=शर्माते हो। निधरक=निडर। रतियौ=रत्ती भर भी। खोरि=दोष। लगौं है=लग जाने वाले, प्रेमी।

अर्थ—शर्माते किसलिए हो? बेखटके जहाँ-तहाँ फिरो। तुम्हे इसमे रत्तीभर भी दोष नही लगेगा। क्योकि यदि ये चट लग जाने वाले नयन किसी से जा कर लग जायें, तो तुम कर ही क्या सकते हो?

यहाँ नायिका यह कहना चाहती है कि तुम बहुत ही बेशर्म हो, जो आज किसी पर और कल किसी पर रीझ कर उनके यहाँ आते-जाते रहते हो।

अलंकार—व्यक्त आक्षेप ।

प्रसंग—नायिका नायक को ताना देते हुए कहती है—

> प्रान प्रिया हिय में बसै, नख रेखा ससि भाल ।
> भलो दिखायो आनि यह, हरिहर रूप रसाल ॥३६०॥

नख रेखा=नाखूनो के चुभने का चिह्न । आनि=आकर । हरिहर रूप=विष्णु और महादेव का सम्मिलित रूप ।

अर्थ—हे प्रियतम, तुम्हारे हृदय मे तो तुम्हारी प्राणप्रिया अर्थात् वह अन्य स्त्री, जिसे तुम चाहते हो, निवास करती है और तुम्हारे मस्तक पर नखक्षत के चिह्न के रूप मे चन्द्रमा सुशोभित है । हे रसिक, तुमने यहाँ आकर अपना यह विष्णु और महादेव का सम्मिलित रूप बहुत ही भला दिखाया ।

विष्णु लक्ष्मी को अपने हृदय मे धारण किये हुए है । प्राणप्रिया के हृदय मे धारण करने के कारण नायक की विष्णु से समता की गई है । चन्द्रमा शिव के मस्तक पर सुशोभित रहता है । नाखूनो के चिह्न मस्तक पर बने होने से नायक की बराबरी शिव के साथ व्यंजित की गई है ।

अलंकार—रूपक ।

प्रसंग—खंडिता नायिका नायक से कह रही है—

> ह्यां न चलै बलि रावरी, चतुराई की चाल ।
> सनख हिये खिनखिन नटत, अनख बढ़ावत लाल ॥३६१॥

रावरी=तुम्हारी । बलि=बलि जाती हूँ । चाल=चलाकी । सनख=नख चिह्नो से युक्त । खिनखिन=बार-बार । नटत=मना करते हो । अनख=क्रोध ।

अर्थ—हे लाल, मैं तुम्हारी सूझ-बूझ पर बलि जाती हूँ । परन्तु तुम्हारी यह चतुराई की रीति मेरे सामने न चल पायेगी । आपकी छाती पर नाखूनो के चिह्न बने हुए है और फिर भी आप बार-बार सच्चाई से इन्कार किये जा रहे है । इससे आप स्वयं ही मेरा क्रोध बढ़ा रहे है ।

नोट । सनख और अनख का चमत्कार ध्यान देने योग्य है ।

अलंकार—हेतु और विरोधाभास ।

प्रसंग—नायिका नायक को उलाहना देते हुए कहती है—

न करु न डरु सब जग कहत, कत बेकाज लजात।
सौंहैं कीजै नैन जो, साची सौंहैं खात ॥३९२॥

बेकाज=अकारण। लजात=लज्जित होते हो। सौंहै=सामने। सौं हैं खात=शपथ करते हो।

अर्थ—सारी दुनिया यही कहती है कि न कर, न डर। अर्थात् अपराध किया नही, तो डरने की आवश्यकता नही। फिर तुम अकारण ही क्यो लज्जित हो रहे हो ? यदि तुम सच्ची शपथ उठा रहे हो, तो आँखे सामने करो न।

रात भर जागने के कारण नायक की आँखे अलसाई हुई और लाल है। आंखे सामने करने पर नायिका उन्हें देख लेगी, इसीलिए वह इधर-उधर ताकते हुए वात कर रहा है।

अलकार—यमक और लोकोक्ति।

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

कत कहियत दुख देन को, रचि रचि बचन अलीक।
सबै कहाउ रहै लख, भाल महाउर लीक ॥३९३॥

रचि रचि=बना-बना कर। अलीक=मिथ्या। कहाउ=कथन। भाल=माथा। महाउर लीक=महावर की रेखा।

अर्थ—तुम मुझे दु ख देने के लिए झूठ-मूठ बना-बना कर वचन क्यो वोल रहे हो ? तुम्हारे माथे पर महावर की लकीर देख लेने के वाद तुम्हारी सव वाते रखी रह जाती हैं।

अर्थात् अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हो जाने पर फिर तुम्हारा कोई भी वहाना काम नही आ सकता।

अलकार—अनुप्रास।

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

नख रेखा सौंहैं नई, अलसौंहैं सब गात।
सौंहैं होत न नैन ये, तुम सौंहैं कत खात ॥३९४॥

सौंहै=१ शोभा देती है, २ शपथें, ३ सामने। अलसौंहे=आलस से युक्त।

अर्थ—तुम्हारे वक्षस्थल पर नई अर्थात् ताजी नख रेखाएँ सुशोभित है;

तुम्हारे अग-अग आलस्य से भरे हुए है, तुम्हारे ये नेत्र मेरे सामने नही होते, फर तुम सौहें अर्थात् कसमे किसलिए खा रहे हो ?

भाव यह है कि तुम्हारे लक्षण स्पष्ट बता रहे है कि तुमने किसी अन्य स्त्री के साथ रति की है। फिर तुम व्यर्थ ही झूठी कसमे क्यो खा रहे हो ?

अलकार—यमक।

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

लाल सलोने अरु रहे, अति सनेह सो पागि।
तनक कचाई देत दुख, सूरन लौं मुह लागि ॥३९५॥

सलोने=(१) लावण्य युक्त (२) नमक युक्त। सनेह सो पागि=(१) प्रेम से भरे हुए (२) चिकनाई से युक्त। कचाई=(१) कपट (२) कच्चा रह जाना। मुँह लागि=(१) मुँह लग कर अर्थात् धृष्ट बन कर (२) मुँह मे जलन या काट करके। सूरन=जिमीकन्द।

अर्थ—हे लाल, तुम सलोने हो और अत्यन्त स्नेह से भरे हुए हो। फिर भी जरा से कपट के कारण तुम धृष्ट होकर उसी प्रकार कष्ट देते हो, जैसे जिमीकन्द नमक युक्त और घी या तेल की चिकनाई से पगा होने पर भी तनिक कच्चा रह जाने पर मुँह मे लग कर दु ख देता है।

जिमीकन्द को नमक मे डाल कर घी या तेल मे भूनने से वह स्वादिष्ट लगता है, परन्तु यदि उसका कुछ अंग कच्चा रह जाये, तो वह मुँह और गले मे जलन कर देता है।

अलंकार—श्लेष और उपमा।

प्रसग—नायक से क्रुद्ध होकर नायिका उसके प्रति अत्यधिक आदर जता रही है, उसी से शकित होकर नायक कहता है—

खरो अदब इठलाहटो, उर उपजावति त्रास।
दुसह सक विष की करै, जैसे सोंठि मिठास ॥३९६॥

खरो=बहुत अधिक। अदब=आदर। इठलाहटो=गर्वयुक्त चेष्टा। त्रास=भय। सक=शका। सोंठि मिठास=सोठ का मीठा होना। कहा जाता है कि मीठी सोठ विष तुल्य होती है।

अर्थ—तुम्हारा बहुत अधिक आदर दिखलाना और गर्वयुक्त चेष्टाएँ करना मेरे हृदय मे भय उत्पन्न कर रहा है, ठीक वैसे ही, जैसे कि सोठ की मिठास से मन मे विष की भयानक शका उत्पन्न हो जाती है।

भाव यह है कि यह आदर का प्रदर्शन अस्वाभाविक है और इसीलिए शका उत्पन्न करने वाला है। "अत्यादर शकनीय"।

अलकार—उदाहरण।

प्रसग—नायिका क्रुद्ध होकर नायक को खरी-खोटी सुना रही है। इस पर नायक उससे कहता है—

सकत न तुव ताते वचन, मों रस को रस खोय।
खिन खिन औटैं खीर लौं, खरो सवादिल होय ॥३९७॥

ताते=तप्त, रोषयुक्त। रस=प्रेम। रस=आनन्द। औटे=देर तक उबाले गये। खीर=दूध। सवादिल=स्वादिष्ट।

अर्थ—तेरे क्रोधयुक्त वचन मेरे प्रेम के आनन्द को विगाड नहीं सकते (अर्थात् तेरे कठोर वचन कहने पर भी तेरे प्रति मेरा प्रेम ज्यो का त्यो बना रहेगा) उल्टे इन तप्त वचनो से मेरा प्रेम औटे हुए दूध की भाँति और भी अधिक स्वादिष्ट होता जाता है।

अलंकार—उपमा और विशेपोक्ति।

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

पलनि पीक अजन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हो लाल ॥३९८॥

पलनि=पलको मे। पीक=पान की लाली। महावर=पैरो पर लगाये जाने वाला आलता।

अर्थ—लाल, आज तुम बहुत ही सुन्दर बने हुए हो, क्योकि तुमने आँखो की पलको मे पान की पीक लगाई हुई है, ओठो पर अजन पोता हुआ है और माथे पर महावर लगाया हुआ है। यह तो अच्छा ही हुआ कि तुम आज ही मिल गये।

पलको पर लगी पीक पर स्त्री द्वारा नायक के नेत्रो पर चुम्बन को सूचित करती है, अधरो पर लगा अंजन इस बात का सूचक है कि नायक ने

उस स्त्री की पलकों को चूमा है। भाल पर लगा महावर बताता है कि नायक ने उसके पैरो पर सिर रखा है। 'आज ही मिल गये' मे यह ताना है कि जब ऐसी स्त्री मिल गई थी, तो आज तुम्हारा यहाँ आना आश्चर्य और सौभाग्य की ही बात है।

अलकार—असगति, अनुमान और काकुवक्रोक्ति ।

प्रसग—नायक ने रात घर से बाहर बिताई है। पहले तो नायिका ने यह समझा कि शायद किसी अन्य कारणवश बाहर रहना पडा होगा, इसलिए वह प्रेम की बातें कहने ही लगी थी कि नायक को देखकर उसे यह अनुमान हुआ कि उसने किसी अन्य स्त्री के साथ रात बिताई है, तो वह उन प्रेम की बातो को कहते-कहते बीच मे ही रुक गई। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

गहकि गाँस औरै गले, रहे अधकहे बैन।
देखि खिसौं हैं प्रिय नयन, किये रिसौं हैं नैन ॥३९९॥

गहकि=उमग कर। गाँस=वैमनस्य, क्रोध। खिसौ हैं=खिसियाये हुए। रिसौ हैं=रोषयुक्त।

अर्थ—नायक के घर आने पर वह उमग से बातें करने लगी थी कि प्रियतम के खिसियाये हुए नेत्रो को देख कर उसके वचन अधकहे ही रह गये। उसने कुछ रूखापन प्रकट किया और उसकी आँखें रोषयुक्त हो गईं।

अलकार—अनुमान और छेकानुप्रास।

प्रसग—नायक के गालो पर लाल चिह्न उभरा हुआ है, इससे नायिका यह समझती है कि यह किसी अन्य स्त्री के चुम्बन का चिह्न है। इस पर वह आँखें तरेर कर देखती है, तब सखी उसे समझाते हुए कहती है—

तेह तरेरे त्यौर करि, कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की, श्रुतिमनि झलक कपोल ॥४००॥

तेह=क्रोध के साथ। तरेरे त्यौर करि=त्यौरियाँ अर्थात् भौहे तरेर कर। कत=क्यो। लीक=रेखा। श्रुति मनि=कान मे पहना हुआ रत्न।

अर्थ—अरी लाडली, तू क्रोध के कारण भौंहे टेढी करके आँखो को चचल क्यो करती है (अर्थात् क्रोध से क्यो देखती है)? यह जो गालो पर लाली

का चिन्ह दीखता है, यह पान की पीक की रेखा नही, अपितु कान मे धारण किये हुए लाल रत्न की कपोल पर पडती हुई झलक है।

अलंकार—भ्रान्त्यपह्नुति।

प्रसंग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

तरुन कोकनद बरन वर, भये अरुन निसि जागि।
वाही के अनुराग दृग, रहे मनो अनुरागि ॥४०१॥

तरुन=ताजे। कोकनद=कमल। बरन=रग। अनुरागि=प्रेम से भरे हुए।

अर्थ—हे प्रियतम, तुम्हारे नेत्र रात भर जागने के कारण ताजे कमल के रग के हो रहे है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये उसी के प्रेम के रग मे रग रहे है, जिसके यहाँ तुम रात भर रहे हो।

कवियो ने प्रेम का रग लाल माना है। नेत्र मानो प्रेम की लाली से ही लाल हो रहे है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—नायक के शरीर पर केसर के फूल की पँखुरियाँ लगी है। उन्हे किसी अन्य स्त्री का नखक्षत समझ कर खडिता नायिका क्रुद्ध होती है। उसे शान्त करने के लिए सखी कह रही है—

केसर केसरि कुसुम के, रहे अंग लपटाय।
लगे जानि नख अनखुली, कत बोलत अनखाय ॥४०२॥

केसर=किंजल्क, बारीक पँखुरियाँ। केसरि=केसर का फूल। अनखुली=मन ही मन क्रोधित हुई। अनखाय=रूखेपन से, नाराज होकर।

अर्थ—अरी लाडली नायक के शरीर मे तो केसर के फूल के किंजल्क अर्थात् बारीक-बारीक पखुरियाँ लगी हुई है। तू उन्हे किसी के नाखून लगे समझ कर क्यो क्रुद्ध होकर बोलती है और मन ही मन मे रूठती है।

अलकार—भ्रान्त्यिपह्नुति काकुवक्रोक्ति, लाटानुप्रास।

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

सदन सदन के फिरन की, सद न छुटै हरिराय।
रुचै तितै विहरत फिरौ कत विहरत उर आय ॥४०३॥

सदन=घर। सद=आदत। रुचै=रुचता है, अच्छा लगता है। तितै=वहाँ। विहरत=विदीर्ण करते हो। उर=हृदय।

अर्थ—हे हरिराय, तुम्हारी घर-घर भटकने की आदत किसी तरह नही छूटती। यदि यही बात है तो तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाकर घूमो फिरो फिर यहाँ आकर मेरा हृदय क्यो चीरते हो अर्थात् मेरा जी क्यो जलाते हो?

अलकार—आक्षेप और यमक।

प्रसग—खडिता नायिका नायक के होठ पर किसी अन्य स्त्री के दाँत के घाव का निशान देखकर कहती है—

पट के ढिग कत ढाँपियत, सोभित सुभग सुवेख।
हद रदछद छबि देत यह, सद रदछद की रेख ॥४०४॥

पट के ढिक=वस्त्र से। ढाँपियत=छिपाते हो। सुभग=सुन्दर। सुवेख=सुशोभित। हद=बेहद, अत्यधिक। रदछद=ओठ। सद=ताजा, सद्य। रदछद=रद क्षत, दाँत से कटने का निशान।

अर्थ—हे लाल, यह ताजे दाँत के घाव की रेखा से युक्त तुम्हारा होठ तो अत्यन्त शोभा दे रहा है। उसे वस्त्र से क्यो छिपाते हो? यह तो बहुत ही सुन्दर और सुशोभित दिखाई पड रहा है।

अलकार—यमक और वृत्त्यनुप्रास।

प्रसग—नायिका से बात करते समय नायक के मुँह से किसी अन्य स्त्री का नाम निकल गया। इससे नायिका ने समझ लिया कि नायक उससे प्रेम करता है। इस पर उलाहना देते हुए वह कहती है—

मोहू सो बातनि लगे, लगी जीह जिहि नाव।
सोई लै उर लाइये, लाल लागियत पाँव ॥४०५॥

बातनि लगे=बात करते हुए। जीह=जीभ। लागियत पाँव=मैं आपके पैर पडती हूँ।

अर्थ—मुझसे बातें करते समय भी आपकी जीभ जिसके नाम से लगी हुई है अर्थात् आप जिसका नाम ले रहे है, उसी को पकड कर छाती से लगाइये। मैं आपके पैरो मे पडती हूँ।

भाव यह है कि जब आपका मन उसकी ओर इतना लगा है, तो आप

मुझसे प्रेम क्यो जताते है ? जाकर उसी को छाती से लगाइये।

अलकार—आक्षेप।

प्रसग—नायक के रात्रि जागरण से लाल हुए नेत्रो को देख कर खडिता नायिका उसे कह रही है—

लालन लहि पाये दुरै, चोरी सौंह करैं न।
सीस चढे पनहां प्रकट, कहैं पुकारे नैन ॥४०६॥

लालन=हे लाल। लहि पाये=पकडे जाने पर। दुरै=छिपती है। सौह करे=शपथ करने से। पनाहां=गुप्तचर, चोरी का खोज निकालने वाले।

अर्थ—हे लालन, यदि चोरी पकडी जाये, तो वह शपथ खाने से छिपती नही। तुम्हारे सिर पर चढे हुए नयन रूपी ये दो गुप्तचर प्रकट रूप से पुकार कर रहे हैं।

भाव यह है कि तुम्हारी आँखें ही गुप्तचर की तरह तुम्हारा रहस्य खोले दे रही है कि तुम कही रात भर जागे हो। तुम्हारे शपथ खाकर निषेध करने से यह बात छिप नही सकती।

अलंकार—रूपक।

प्रसग—खडिता नायिका नायक से कह रही है—

तुरत सुरत कैसे दुरत, मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंडी दै गुन रावरे, कहत कनौडी डीठि ॥४०७॥

तुरत=ताजा, हाल का। सुरत=सभोग। दुरत=छिपता है। जुरि=मिलकर। नीठि=कठिनाई से। डौडी दे=ढिढोरा पीटकर। कनौडी=सापराध, लज्जित।

अर्थ—हे लाल, हाल ही मे की हुई रति किस प्रकार छिप सकती है ? तुम्हारे नेत्र मुश्किल से मेरे नेत्रो से मिलते है और उसके बाद तुरन्त मुड जाते है, अर्थात् दूसरी ओर देखने लगते है। तुम्हारी यह अपराधपूर्ण अथवा लज्जित दृष्टि ही तुम्हारे गुणो का ढिढोरा पीट रही है।

यहाँ 'गुण' शब्द का प्रयोग व्यग मे किया गया है, जिससे अर्थ हो जाता है—अवगुण।

अलकार—अनुप्रास, लोकोक्ति।

प्रसग—खडिता नायिका नायक के शरीर पर लगे हुए नखक्षत के चिह्न को देखकर कह रही है—

मकर भाजन सलिल गत, इन्दुकला के वेष।
झीन झगा में झलमलत, स्याम गात नख रेख ॥४०८॥

मरकत=पन्ना, हरे रग का एक रत्न। भाजन=वर्तन। इन्दुकला=चन्द्रमा की कला। झीन=पतला। झगा=वस्त्र। नखरेख=नाखून के चुभने से बनी रेखा।

अर्थ—हे लाल, आपके श्यामवर्ण शरीर पर लगी हुई नाखून की रेखा पतले वस्त्र मे से इस प्रकार झिलमिला रही है, मानो मरकत के पात्र मे भरे हुए पानी मे चन्द्रमा की कला झिलमिला रही हो।

जल मे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखना अशुभ माना जाता है इसी से नायिका यह व्यजित करना चाहती है कि आपके शरीर पर लगी यह नखरेखा मेरे लिए अशुभ है।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसग—नायक किसी अन्य स्त्री के साथ विहार करके आया है। देर तक स्त्री का सिर बाँह पर पडे रहने के कारण वहाँ वेणी का चिह्न उभर आया है। उसी को लक्ष्य करके खडिता नायिका नायक से कहती है—

वैसी यै जानी परति, झगा ऊजरे माह।
मृगनैनी लपटी जु हिय, वेनी उपटी बाँह ॥४०९॥

वैसी यै=वैसी ही। ऊजरे=उज्ज्वल, श्वेत। वेनी=चोटी (का चिह्न) उपटी=उभर आई।

अर्थ—वह जो मृगलोचनी तुम्हारे हृदय से लिपटी थी, उसकी वेणी का चिह्न तुम्हारी बाँह पर उभर आया है। वह सफेद उज्ज्वल वस्त्र मे से अब भी ज्यों का त्यों दिखाई पड रहा है। उससे वह ज्यो की त्यो पहिचानी जाती है।

भाव यह है कि अभी तुम्हें उस अन्य स्त्री के साथ विहार किये इतनी देर भी नहीं हुई कि तुम्हारी बाँह पर उभरा हुआ उसकी वेणी का यह चिह्न

मिट जाता। फिर भी तुम सीधे यहीं चले आये हो।

अलंकार—अनुप्रास

प्रसंग—उत्तमा खंडिता नायिका यह जानते हुए भी कि नायक अन्य किसी स्त्री से प्रेम करता है, नायक से कहती है—

वाही को चित चटपटी, धरत अटपटे पाय।
लपट बुझावत बिरह की, कपट भरेहू आय ॥४१०॥

चटपटी=चाह, अभिलाषा। अटपटे=टेढे-मेढे। कपट भरेहू=कपट से भरे होने पर भी।

अर्थ—हे लाल, तुम तो अपने मन मे उसी की अभिलाषा लिये रहते हो, इसलिए यहाँ टेढे-मेढे कदम रखते हुए आते हो। परन्तु तुम्हारा हृदय कपट भरा होने पर भी तुम्हारे आने से मेरी तो विरह की ज्वाला शान्त हो ही जाती है।

भाव यह है कि यद्यपि तुम्हारा मन मेरे पास आते भी किसी अन्य रमणी की ओर लगा रहता है, फिर भी मेरा मन तुम्हारे प्रति इतना अनुरक्त है कि तुम्हारे इस कपटपूर्ण व्यवहार को जानते हुए भी वह तुम्हे देख कर ही आनन्दित हो जाता है।

अलकार—अनुमान और विभावना।

प्रसंग—किसी अन्य स्त्री के पास विहार करते समय उस स्त्री के गले मे पहनी हुई माला के गड्ढे नायक की छाती पर उभर आये है। मनको के तो गड्ढे पडे, परन्तु उनमे पिरोये हुए धागे का निशान पड ही नही सकता था, इसलिए नायक की छाती पर उभरी हुई यह चिह्नो की पक्ति बिना धागे की माला के समान जान पडती है। उसी को लक्ष्य करके खंडिता नायिका कहती है—

कत बेकाज चलाइयत, चतुराई की चाल।
कहे देत यह रावरे, सब गुन बिन गुन माल ॥४११॥

बेकाज=व्यर्थ। चतुराई=निपुणता, धूर्तता। चाल=चालाकी। रावरे=तुम्हारे। गुन=गुण, यहाँ व्ययार्थ है अवगुण। बिन गुन माल=बिना धागे की माला।

अर्थ—तुम यह धूर्तता भरी चालाकी की बातें व्यर्थ ही क्यों किये जा रहे हो ? तुम्हारे हृदय पर उभरी हुई यह बिना धागे की माला ही तुम्हारे सारे गुण जताये दे रही है।

भाव यह है कि इस माला से यह असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जाता है कि तुमने किसी अन्य स्त्री के साथ विहार किया है। बिन गुन की माला में श्लेष भी है। एक अर्थ है बिना धागे की माला और दूसरा अर्थ होगा अवगुणों की माला।

अलंकार=विरोधाभास, यमक और श्लेष।

प्रसंग—नायक किसी स्त्री का चित्र देख रहा है और मुग्ध हो रहा है नायिका उसे छिप कर देख रही है और संशयग्रस्त होकर स्तब्ध सी खड़ी हुई है। उनकी इस दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> दुचितै चित हलति न चलति, हसति न झुकति बिचारि।
> लखत चित्र पिय लखि चितै, रही चित्र सी नारि ॥४१२॥

दुचितै=संशयग्रस्त होकर। चित=मन। हलति न चलति=हिलती डुलती नहीं। झुकति=रुष्ट होती है।

अर्थ—नायक को किसी चित्र को देखते हुए देखकर नारी अर्थात् नायिका चित्र-सी खड़ी रह गई। वह संशयग्रस्त मन के कारण न हिलती है, न डुलती है और न हँसती है और न खीझती ही है।

भगवानदीन जी की पुस्तक में 'लखत' के स्थान पर 'लिखत' पाठ है। उस दशा में अर्थ होगा किसी स्त्री का चित्र बना रहा है और उसे देख कर नायिका की यह दशा हो गई है।

अलंकार—उपमा, और देहरी दीपक। 'न' का अन्वय दोनों ओर होगा।

मान वर्णन

प्रसग—कोई गोपी मोर चन्द्रिका को लक्ष्य करके कह रही है—

मोर चन्द्रिका स्याम सिर चढि कत करति गुमान।
लखिबी पायन पै लुठत सुनियत राधा मान ॥४१३॥

कत्=क्यो। लखिबी=देखेंगे। लुठत=लौटते हुए। सुनियत=सुना जाता है।

अर्थ—ओ मोर के पखो की चन्द्रिका, तू कृष्ण के सिर पर चढ कर इतना अभिमान क्यो कर रही है? अभी जल्दी हम तुझे पैरो पर लोटते देखेंगे, क्योकि ऐसा सुना जाता है कि राधा मान करके बैठ गई है।

भाव यह है कि जो मोर-चन्द्रिका कृष्ण के सिर पर बैठ कर फूलती नही समा रही, उसे राधा के चरणो मे लोटना होगा, क्योकि कृष्ण राधा को मनाने के लिए उनके पैरो पर सिर रखेंगे।

अलकार—अन्योक्ति।

प्रसग—शठ नायक मानिनी नायिका से उसे मनाने के लिए कह रहा है—

तू मति मानै मुकुतई, किये कपट बत कोटि।
जौ गुनही तौ राखिये, आँखिन माहि अगौटि ॥४१४॥

मुकुतई=छुटकारा। कपट बत=छलभरी बातें। गुनही=अपराधी। अगोटि=बन्द करके।

अर्थ—तू यह मत समझ कि कपटभरी करोडो बाते कहने से छुटकारा मिल जायेगा। यदि तू मुझे अपराधी समझती है, तो मुझे अपनी आँखो मे ही बन्द करके रक्खा कर।

इस दोहे की रचना बहुत स्पष्ट नही है। रत्नाकर जी ने भी इसकी पहली पंक्ति को नायिका की और दूसरी पंक्ति को नायक की उक्ति माना है। इस प्रकार की कल्पना से अर्थ तो ठीक बैठ जाता है, परन्तु बिहारी के दोहो मे ऐसी कल्पना अन्यत्र कहीं पाई नही जाती। भगवानदीन जी ने इसका अर्थ भक्तिपरक बताने का भी यत्न किया है, परन्तु वह बहुत विश्वासोत्पादक नही है।

अलकार—पर्यायोक्ति ।

प्रसग—नायिका की दूती मान किये हुए नायक से कह रही है—

वाल बेली सूखी सुखद, यहि रूखे रुख घाम ।
फेरि डहडही कीजिये, सुरस सींचि घनश्याम ॥४१५॥

वाल=बाला । रूखे रुख=रुखाई । घाम=ग्रीष्म । डहडही=हरी। भरी । सुरस=(१) प्रेम (२) जल । घनश्याम=(१) कृष्ण (२) काला बादल ।

अर्थ—हे सुख देने वाले नायक, वह बाला रूपी बेल तुम्हारी इस रुखाई रूपी ग्रीष्म से सूख रही है । हे घनश्याम रूपी घनश्याम, उसे अपने प्रेम रूपी जल से सींच कर फिर हरा-भरा कीजिये ।

अलकार—रूपक और श्लेष ।

प्रसग—नायिका शिशिर ऋतु मे मान किये बैठी है । उसकी सखी उससे कह रही है—

तपन, तेज तापन-तपन, तूल-तुलाई माह !
सिसिर-सीत क्योंहु न मिटै, बिन लपटे तिय नाह ॥४१६॥

तपन तेज=सूर्य की गर्मी । तापन तपन=आग तापना । तूल तुलाई=रूई की रजाई । तिय नाह=स्त्री और पति ।

अर्थ—शिशिर ऋतु की सर्दी न तो सूर्य की गर्मी से ही दूर होती है, न आग सेकने से ही मिटती और न रूई की रजाई मे लेटने से ही मिटती है । चाहे और कुछ भी क्यों न कर लो, किन्तु वह स्त्री-पुरुष के परस्पर आलिगन के बिना किसी प्रकार दूर नहीं होती ।

अलकार—परिसख्या और यमक ।

प्रसग—मानिनी नायिका को मनाते हुए उसकी सखी कह रही है—

सुरग कोप तजि रगरलि, करति जुवति जग जोय ।
पावस बात न गूढ़ यह, बूढ़न हू रग होय ॥४१७॥

सुरग=सुन्दर शरीर । कोप=क्रोध । रगरलि=आनन्द की क्रीड़ा । जुवति=युवतियाँ । जोय=देखो । गूढ़=छिपी हुई । बूढ़न=(१) बुड्ढों मे (२) बीरबहूटियों मे ।

अर्थ—देखो वर्षा ऋतु मे सभी युवतियाँ गलत तरीके अर्थात् मान और कोप अर्थात् क्रोध को त्याग कर आनन्द से खेल करती है। यह बात तो किसी से छिपी नही है कि वर्षा ऋतु मे तो बूढियो पर भी (अथवा बीर वहूटियो पर भी) रग आ जाता है।

बूढियो पर भी रग आ जाता है का भाव है कि बुढियाओ मे भी युवतियो की-सी उमग जाग उठती है और बीर वहूटियो का रगीन होना तो प्रत्यक्ष ही है।

अलंकार—श्लेष और काव्यलिंग।

प्रसग—नायक की पडौसिन से गुप्त प्रीति थी। एक दिन पडौसिन ने नायिका की हिताकांक्षिणी बनकर नायक से कहने के लिए कुछ सन्देशे कहे। उनका आशय यह था कि आजकल मेरे घर पर कोई है नही, अत तुम्हारे पति अर्थात् नायक मेरे कुछ काम कर देंगे। इस सब बात से नायिका समझ गई कि यह नायक को एकान्त मे अपने घर बुलाना चाहती है। उसने नायक से वे सारे सन्देशे तो कह ही दिये। और अन्त मे मुस्कराहट द्वारा अपना मान प्रक्ट कर दिया। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> ढीठि परोसिन ईठि ह्वै, कहे जु गहे सयान।
> सबै सदेसे कहि कह्यौ, मुसकाहट मैं मान ॥४१८॥

ढीठि=धृष्ट। ईठि=शुभचिन्तक। गहे सयान=चालाकी के साथ।

अर्थ—ढीठ पडौसिन ने हितचिन्तक बन कर बडी चालाकी के साथ जो सदेशे नायक को देने लिए कहे थे, वे सब नायिका ने नायक को दे दिये और उसके बाद मुस्कराहट के द्वारा अपना मान प्रकट कर दिया।

भाव यह है कि मुस्कराहट कर नायिका ने यह सूचित कर दिया कि मैं इन सब बनावटी सदेशो का रहस्य जानती हूँ। मुझे मालूम है कि तुम उमसे प्रेम करते हो।

अलकार—अनुमान।

प्रसंग—नायक के प्रेम मे गर्विता नायिका अपनी सखी मे कह रही है—

> रात दिवस हौंसे रहत, मान न ठिकु ठहराय।
> जैतो औगुन ढूंढिये, गुनै हाथ परि जाय ॥४१६॥

हौंसे=हवस अर्थात् अभिलाषा हो। ठिकु=ठीक। औगुन = अवगुन।

अर्थ—मुझे रात-दिन मान करने की हवस ही बनी रहती है। परन्तु कभी मान करने का ठीक अवसर ही नही मिलता। मैं रूठने के लिए उस नायक मे अवगुण ढूंढने का जितना यत्न करती हूँ, उतने ही उसके गुण मेरे हाथ पड जाते है। अर्थात् मैं उसमे दोष ढूंढती हूँ, तो दोष कोई दिखाई नही पडता, अपितु गुण ही हाथ पडते है।

अलकार—विषादन।

प्रसग—नायक से प्रेम करने वाली नायिका अपनी सखी से कह रही है—

> सतर भौंह, रुखे वचन, करत कठिन मन नीठि।
> कहा करौं ह्वै जाति हरि, हेरि हंसौंही डीठि ॥४२०॥

सतर=टेडी। रुखे=प्रेम रहित। नीठि=कठिनाई से।

अर्थ—हे सखी, मैं जैसे-तैसे भौंहो को टेढा कर लेती हूँ, वचनो को भी रूखा अर्थात् प्रेम रहित बना लेती हूँ और जैसे-तैसे मन को कठोर कर लेती हूँ, परन्तु इस बात का क्या उपाय करूँ कि कृष्ण को देखते ही मेरी दृष्टि हास्य-युक्त हो जाती है? (अर्थात् मेरी आँखो मे हँसी झलकने लगती है।)

भाव यह है कि मैं मान करने का ढोंग तो करती हूँ, परन्तु आँखो मे हँसी झलक आने के कारण वह निभ नही पाता।

अलकार—विभावना।

प्रसग—नायक से प्रेम करने वाली नायिका अपनी सखी से कह रही है—

> मो हौ को छुटि मान गो, देखत ही ब्रजराज।
> रह्यो घरिक लौं मान सो, मान करे की लाज ॥४२१॥

हौ=हृदय या मन। गो=गया। घरिक लौं=एक घटी भर।

अर्थ—मैंने तेरे बतलाने के अनुसार मान किया, परन्तु वह ब्रजराज अर्थात् कृष्ण को देखते ही छूट गया। मान करने की लज्जा घटीभर अवश्य मान जैसी बनी रही।

भाव यह है कि कृष्ण से प्रेम होने के कारण मैं मान तो न कर सकी,

परन्तु मैंने मान किया था, इस बात से लज्जित होकर उसी प्रकार गुमसुम-सी बैठी रही जैसे कि मान करके बैठती।

अलकार—चपलातिशयोक्ति और उपमा।

प्रसग—नायक ने किसी अन्य स्त्री के साथ विहार करने का अपराध किया था, इससे नायिका मान किये बैठी थी। अन्त मे दोनो के नेत्र मिलने पर वह मान किस प्रकार समाप्त हो गया, इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

खिचे मान अपराध तें, चलिगे बढे अचैन।
जुरत दीठि तजि रिस खिसी, हसे दुहुन के नैन।।४२२।।

अचैन=बेचैन। दीठि जुरत=दृष्टि मिलते ही। खिसी=लज्जा। रिस=रोष।

अर्थ—नायिका के नेत्र मान के कारण खिचे हुए थे और नायक के नेत्र अपराध के कारण खिचे हुए थे अर्थात् दोनो एक दूसरे की ओर देखते नही थे। परन्तु जब बेचैनी बढी तो उनके नेत्र एक दूसरे की ओर चल पडे। जब दोनो की दृष्टि मिली, तो क्रोध और लज्जा को त्याग कर दोनो के नेत्र हँसने लगे।

भाव यह है कि दृष्टि मिलने पर नायिका ने क्रोध त्याग दिया और नायक ने लज्जा त्याग दी और दोनो हँस पडे।

अलकार—यथासख्य और चपलातिशयोक्ति।

प्रसग—नायिका अपने नेत्रो की चचलता के कारण नायक से मान नही कर पाती, इस बात से व्याकुल होकर वह अपनी सखी से कह रही है—

दहै निगोडे नैन ये, गहै न चेत अचेत।
हौं कसुकै रिसहे करौं, ये निसिखे हँसि देत।।४२३।।

दहै=जल जाये। निगोडे=चचल अथवा दुष्ट। चेत अचेत न गहै=बात की सुधि नहीं रखते। कसुकै=यत्नपूर्वक। रिस=रोषयुक्त। निसिखे=अशिक्षित।

अर्थ—मेरे ये निगोडे नयन जल जाये, ये भले-बुरे की कोई सुध ही नही

रखते। मैं तो इन्हे यत्नपूर्वक रोषयुक्त बनाती हूँ, परन्तु ये सीख को न समझने वाले व्यक्ति अर्थात् अशिक्षित की भाँति हँस देते है।

भाव यह है कि मैं तो इन्हे सिखाती हूँ कि तुम रोषयुक्त बने रहना, जिस से नायक हमारे वश मे हो जायेगा, परन्तु ये उसे देखते ही हँस देते है और इस प्रकार मुझसे मान करते नही बनता।

अलकार—विभावना।

प्रसग—सखी ने नायिका को मान करने की सलाह दी है, इस पर नायिका से उत्तर देते हुए कहती है—

तुहू कहै, हौं आप हू, समुझति सबै सयान।
लखि मोहन जो मनु रहै, तौ राखौं मन मान ॥४२४॥

तुहू=तू भी। सयान=समझदारी। मनु=मन।

अर्थ—तू भी मुझने कहती है और मैं स्वय भी इन सब समझदारी की बातो को मन मे समझती हूँ। परन्तु नायक को देख कर यदि मेरा मन मेरे वश मे रहे, तब तो मैं मान करूँ। अर्थात् यदि मेरा मन ही मेरे काबू मे न हो तो मान कैसे कर पाऊँगी।

अलकार—विशेषोक्ति और सम्भावना।

प्रसग—सखी नायिका को समझाती है कि तू मान करके नायक को अपने वश मे कर, नहीं तो वह तेरी उपेक्षा करना शुरू कर देगा। यह ठीक नही कि उनके आते ही तू उनसे लिपट जाती है। इस पर नायिका उत्तर देती है—

मुझे यह पता ही नही चलता कि मान किधर गया, ठीक उसी प्रकार जैसे कि सूर्योदय होने पर ओस का कुछ पता ही नही चलता।

अलङ्कार—पूर्णोपमा।

प्रसग—नायक और नायिका दोनो एक दूसरे से मान किये बैठे है। उनकी इस दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

दोऊ अधिकाई भरे, एकै गौं गहराइ।
कौन मनावै को मनै, मानै मति ठहराइ॥४२६॥

अधिकाई = उत्कर्ष। गहराई = विवाद करते है। एकै गौ = एक जैसा ही। मानै मति ठहराइ = मान किये रहने का निश्चय किये हुए है।

अर्थ—दोनो (अर्थात् नायक और नायिका) उत्कर्ष अर्थात् रूप और यौवन से सम्पन्न है। दोनो एक समान ही गर्व से भरे है। अब वे इसी प्रतीक्षा मे है कि कौन पहले मनाना शुरू करता है और कौन मानता है। इसीलिए वे दोनो ही अपने मान पर दृढ है—

भाव यह है कि दोनो मे से कोई भी एक दूसरे को मनाने के लिए उद्यत नही है।

अलकार—अन्योन्य और काव्यलिग।

प्रसग—नायिका ने मान किया है उसी सम्बन्ध मे नायिका की सखी नायक से कह रही है—

पति रितु अवगुन गुन बढत, मान माह को सीत।
जात कठिन ह्वै अति मृदौ, रमनीमन नवनीत॥४२७॥

अवगुन=दोष। माह=माघ का महीना। कठिन = कठोर। मृदौ = मृदु होने पर भी। नवनीत =मक्खन।

अर्थ—पति और ऋतु के अवगुणो और गुणो से स्त्री का मान और माघ मास का शीत बढता है और उसके फलस्वरूप स्त्री का मन और मक्खन बहुत कोमल होने पर भी कठोर हो जाता है।

इस दोहे मे सज्ञाएँ यथाक्रम रखी गई है। इस बात को समझने पर अर्थ सरल हो जायेगा। पति के अवगुणो मे और ऋतु के गुण से मान और शीत मे वृद्धि होती है।

अलकार—यथासख्या।

प्रसग—मानिनी नायिका को मनाते हुए उसकी सखी नायक के सामने ही कह रही है—

> हँसि हँसाय, उर लाय उठि, कहि न रुखौंहै बैन।
> जकित थकित से ह्वै रहे, तकत तिलौंछे नैन ॥४२८॥

हँसि = हंस कर। रुखौंहे = रूखे। जकित = स्तभित। तिलौंछै = स्नेह रहित।

अर्थ—हे सखी, तू हँस पड और नायक को हँसा कर और उठ कर उसे छाती से लगा ले। इस समय रूखे वचन मत बोल। देख तो, तेरे स्नेह रहित नयनों को देख कर यह नायक कैसा स्तभित और थका हुआ सा हो गया है।

अलकार—हेतु।

प्रसग—मानिनी नायिका को मनाने के लिए उसकी सखी उससे कह रही है—

> हठ न हठीली करि सकै, यह पावस ऋतु पाय।
> आन गाँठ घुटि जाति ज्यों, मान गाठ छुटि जाय ॥४२९॥

हठीली=हठ करने वाली। आनि=अन्य। घुटि जात=कस जाती है। सख्त हो जाती है। छुटि जाय=खुल जाती है।

अर्थ—इस वर्षा ऋतु के आजाने पर कोई भी हठीली स्त्री अपना हठ बनाये नहीं रख सकती। इस ऋतु में जिस प्रकार अन्य गाठें, (बाल, सन इत्यादि की रस्सियों में लगी गांठे) वर्षा की शील से कस जाती हैं, वैसे ही मान की गांठ छूट जाती है अर्थात् ढीली पड जाती है या खुल जाती है।

अलकार—काव्यलिंग।

प्रसग—नायिका मान किये बैठी है, उसे नायक के पास ले चलने के उद्देश्य से सखी कहती है—

> फूली फाली फूल सी, फिरति जु बिमल बिकास।
> भोर तरैया होहुगी, चलत तोहि पिय पास ॥४३०॥

फूली फाली = प्रसन्न, खिली हुई। विकास=[illegible]। भोर तरैयां = प्रभात की तारिकाएं।

अर्थ—तेरे मान करके अलग बैठी रहने से जो तेरी सौतें फूल-सी खिली हुई और प्रसन्न फिर रही हैं, वे तेरे प्रियतम के पास चलते ही प्रभात की तारिकाएँ अर्थात् निष्प्रभ हो जायेंगी।

भाव यह है कि जब तक तू प्रियतम से दूर है, तब तक तेरी सौतें आनन्द मना रही है, पर जब तू उसके पास पहुँचेगी, तो वह उन सबकी उपेक्षा करके तेरा ही आदर करेगा।

अलकार—उपमा।

प्रसग—मानिनी नायिका से नायक कह रहा है—

नहिं नचाय चितवति चखन, नहिं बोलत मुसकाय।
ज्यो ज्यो रुखो रुख करति, त्यो-त्यो चित चिकनाय॥४३१॥

चखन=नेत्रो को। रूखो=कठोर, रुखाई से भरा। चिकनाय=प्रेम होता जाता है।

अर्थ—आज तू आँखो को नचा कर मेरी ओर नहीं देखती और न मुस्कराते हुए बोलती ही है। तू मेरे प्रति जितना अधिक रूखा रुख दिखा रही है, उतना ही मेरा चित्त तेरे प्रति प्रेमपूर्ण होता जा रहा है।

अलका—विभावना।

प्रसग—कलहान्तरिता नायिका अपना मान तोडते हुए नायक से कह रही है—

अपनी गरजनि बोलियत, कहा निहोरो तोहिं।
तू प्यारो मो जीव को, मो जिय प्यारो मोहिं॥४३२॥

गरजनि=गरज से। निहोरो=अहसान। जिय=जीव, प्राण।

अर्थ—मैं अपनी गरज से अर्थात् अपने प्रयोजन से तुमसे बोलती हूं, तुम पर अहसान किसी बात का नही है। तुम मेरे प्राणो के प्यारे हो और मेरे प्राण मुझे प्यारे है।

नायिका रूठ गई थी। नायक के मनाने पर वह मान गई है। नायक के कृतज्ञता प्रदर्शित करने पर वह कहती है कि तुम पर अहसान करने के लिए मैं नही मानी हूँ, अपितु इसलिए मानी हूँ कि मुझे अपने प्राणो की रक्षा करनी है और उन प्राणो को तुम प्रिय हो।

अलकार—एकावली।

प्रसग—नायिका ने मान लिया है। नायक को उसका रूठना भी भला लगता है, इसलिए वह मनाते-मनाते बीच मे कुछ ऐसी बात कह देता है कि नायिका मानते-मानते फिर रूठ जाती है। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

मन न मनावन को करै, देत रुठाइ रुठाइ।
कौतुक लागे प्रिय प्रिया, खिझहू रिझवति जाइ ॥४३३॥

मनावन को=मनाने को। रुठाइ रुठाइ=बार-बार नाराज कर देता है। कौतुक=विनोद अथवा खिलवाड। खिझहू=खीझ मे भी। रिझवति जाइ=रीझने जाते है।

अर्थ—नायक को नायिका के मनाने की इच्छा नही है। इसलिए वह नायिका को बार-बार खिझा देता है। प्रियतम और प्रियतमा दोनो इस रिझाने और खिझाने के विनोद मे ऐसा आनन्द अनुभव कर रहे है कि वे खीझ मे भी एक दूसरे पर रीझते जा रहे है।

भाव यह है कि नायिका की खीझने की मुद्रा नायक को अच्छी लगती है। इसलिए वह मनाते-मनाते भी बीच मे नायिका को खिझाने वाली कोई बात कह देता है। नायिका भी इस बात को समझती है और इसलिए खीझ कर और भी अधिक रिझाने वाली मुद्राएँ बनाती है। इस प्रकार दोनो खीझ मे भी एक दूसरे पर अनुरक्त होते जाते है।

अलकार—विभावना।

चिनगारियाँ खाता है। भूखा होने पर भी वह अन्य किसी तीसरी वस्तु का सेवन नही करता।

भाव यह है कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। यदि तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त न हो, तो मैं विरह रूपी अँगारो का सेवन करता रहूँगा, पर यह सम्भव नही है कि मैं किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगूँ।

अलकार—लोकोक्ति और अनुप्रास।

प्रसग—नायिका ने रूठ कर नायक से मान कर लिया है। उसी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

चितवनि रूखे दृगन की, बिन हासी मुसकानि।
मान जनायो मानिनी, जानि लियो पिय जानि ॥४३५॥

चितवनि=दृष्टि। रूखे=शुष्क, स्नेह रहित। हासी=हँसी। मुस्कानि=मुस्कराहट। जनायो=जताया। जानि=ज्ञानी।

अर्थ—उस मानिनी नायिका ने अपनी आँखो की स्नेह रहित दृष्टि से और बिना हँसी की मुस्कराहट द्वारा यह जताया कि उसने मान किया हुआ है और इन्हे देख कर ही ज्ञानी अर्थात् समझदार नायक ने यह बात जान ली कि इसने मान किया है।

अलकार—हेतु और अनुमान।

प्रसग—नायिका मान करके शय्या से दूर खडी है। इसी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

बिलखी लखै खरी खरी, भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैन न भजै, लखि बैनी के दाग ॥४३६॥

बिलखी=बेचैन। खरी=खडी हुई। अनख=रोष। बैराग=विरक्ति। सैन=पलग, सेज। बेनी=वेणी। दाग=निशान।

अर्थ—शय्या पर किसी अन्य स्त्री की वेणी के निशानो को देख कर यह मृगनयनी नायिका क्रोध और विरक्ति से भरी हुई बहुत ही बेचैन हो कर सेज से दूर खडी हुई देख रही है और किसी प्रकार सेज पर नही बैठती।

अलकार—स्वभावोक्ति और अनुप्रास।

कपट सतर भौंहैं करीं, मुख सतरौंहैं बैन।
सहज हसौंहैं जानिकै, सौंहैं करति न नैन ॥४३९॥

कपट=छल। सतर=तनी हुई। सतरौंहैं=क्रोधयुक्त। हँसौंहैं=हसने वाले। सौंहैं=सामने।

अर्त—उस नायिका ने बनावटी तौर पर भौंहें टेढी कर ली और मुँह से वचन भी रोषयुक्त कहे। परन्तु यह समझ कर कि उसकी आँखें हसोड हैं, वह उन्हें नायक के सामने नही करती।

भाव यह है कि वह जानती है कि यदि आँखें नायक की ओर की, तो अवश्य हँसी आ जायेगी और इस कपट-मान का रहस्य खुल जायगा।

अलकार—यमक, अनुप्रास और स्वभावोक्ति।

प्रसग—नायिका मान करके सोने का बहाना करके लेट गई है। उसकी दशा का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

सोवत लखि मन मान धरि, ढिग सोयो प्यौ आय।
रही सुपन की मिलन मिलि, तिय हिय सों लपटाय ॥४४०॥

ढिग=पास। प्यौ=प्रियतम। सुपन=स्वप्न।

अर्थ—नायिका को मान धारण करके सोते हुए देखकर प्रियतम भी उसके पास ही आकर सो गया। तब प्रेमावेश के कारण नायिका का मान छूट गया और वह उसके हृदय से इस प्रकार लिपट गई, मानो स्वप्न मे मिल रही हो (अर्थात् सोते-सोते उसके हृदय से लग रही हो)।

यहाँ पर नायक और नायिका के लिए 'सोना' शब्द का प्रयोग वस्तुत लेटने के अर्थ मे किया गया है, क्योकि नायिका सोई नही है, सोने का बहाना करके लेटी भर हुई है।

अलकार—पर्यायोक्ति।

प्रसंग—नायिका की सखी मान करके बैठी हुई नायिका से कह रही है—

लग्यो सुमन ह्वैहै सुफल, आतप रोस निवारि।
बारी बारी आपनी, सींचि सुहृदता बारि ॥४४१॥

सुमन=(१) अच्छा मन, (२) फूल। सुफल=(१) अच्छा फल

से ये स्वभावत हस उठने वाली भौंहें रोषयुक्त की भी जायेंगी ?

यहाँ 'उलटि सौह दिवावति' मे यह भी चमत्कार है कि सौह को उलट देने से 'हसौ' शब्द बन जायगा। सखी यही कहना चाहती है कि तुम मान मत करो और नायक से खूब हँसो बोलो।

अलकार—आक्षेप और दृष्टिकूट।

प्रसग—नायिका ने कही से यह सुन लिया है कि नायक किसी अन्य स्त्री पर मुग्ध है। इसलिए वह मान करके बैठ गई है। इस पर कुशल सखी उसे मनाते हुए कहती है—

खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक कली न रली करै, अली अली जिय जानि ॥४४४॥

खरी=बहुत। कान की पातरी=कान की पतली, कान की कच्ची, जो सुना, उसे बिना तर्क-वितर्क किये मान लेने वाली। बहाऊ=बुरी, नाश करने वाली, बहक जाने वाली। बानि=आदत। रली=विहार। अली=(१) सखी (२) भौरा।

अर्थ—अरी ! सखी तू तो कान की बहुत ही कच्ची है। यह तूने क्या बहकने की आदत डाल ली है ? मन मे तू यह बात समझ ले कि भौरा कभी आक की कली पर विहार नही करता।

भाव यह है कि तूने जो यह समझ लिया है कि नायक किसी अन्य स्त्री पर मुग्ध है, वह गलत है, क्योकि तेरी तुलना मे वह दूसरी स्त्री आक के फूल के समान है।

अलकार—अनुप्रास, और यमक।

प्रसग—नायिका मान किये बैठी है। उस पर सखी यह कह कर कि तुझ से मान किया ही नही जायेगा, उसे मनाने का यत्न करती है—

रुख रुखे, मिस रोष मुख, करति रुखौंहे बैन।
रूखे कैसे होत ये, नेह चीकने नैन ॥४४५॥

रुख=चेष्टा। रुखौंहे=स्नेह रहित।

अर्थ—यद्यपि तूने क्रोध के बहाने अपनी चेष्टाएँ प्रेमशून्य बनाली है और मुख से तू रोषयुक्त वचन बोल रही है, परन्तु तेरे ये स्नेह से चिकनाये हुए

प्रसग—नायिका की सखी मान किये बैठी नायिका से कह रही है—

विधि बिधि कौन करै टरै, नहीं परेहू पानु।
चितै कितै ते लै धर्यो, इतो इतै तनु मानु ॥४४८॥

विधि=भाग्य, हे भगवान। विधि=तरीका। परेहू पानु=पैर पडने पर भी। चितै=देखो। कितै—कहाँ से। इतो=इतना सारा। इतै=इतने। मानु=मान।

अर्थ—हे भगवान, उस नायक ने कितनी विधियाँ अर्थात् उपाय कर लिये परन्तु तेरा मान तब भी नही टला, जबकि वह तेरे पैरो पर गिर पडा। देख तो सही कि तेरे इतने से इस शरीर मे इतना सारा मान तूने कहाँ से ला कर रख लिया है?

शरीर तो छोटा-सा है और मान उसमे इतना अधिक है।

अलकार—विशेषोक्ति, अनुप्रास और अधिक।

प्रसग—नायिका को ऐसा विश्वास हो गया है कि नायक किसी अन्य स्त्री पर अनुरक्त है, इसलिए उसने मान किया हुआ है। नायिका की सखी उसे मनाते हुए कह रही है—

तो रस राच्यो आन बस, कहै कुटिल मति कूर।
जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाखि अंगूर ॥४४९॥

रस=प्रेम। राच्यौ=रगा हुआ। आन बस=किसी अन्य के वश मे है। कुटिल=धूर्त। कूर-क्रूर। निबौरी=नीम का फल। बौरी=बावली।

अर्थ—तेरे प्रेम मे रमा होने के बाद वह नायक किसी अन्य के वश मे हो सकता है, इस बात को केवल कुटिल मति और क्रूर लोग ही कह सकते है। अरी बावली, तू स्वय सोच कर देख कि अंगूर को चख लेने के बाद निबौली को जीभ क्यो लगेगी? (अर्थात् जीभ को निबौली क्यो रुचेगी?)

अलकार—अर्थान्तरन्यास।

प्रसग—नायिका मान किये बैठी है। उसे मनाने के लिए श्रेष्ठ दूती कहती है कि तेरे रूठने से तेरी सौते प्रसन्न हैं। अब तू प्रसन्न हो जा, तो तेरी सौतें दुखी हो—

हा हा बदन उघारि दृग, सुफल करैं सब कोय।
रोज सरोजनि के परै, हसी ससी की होय ॥४५०॥

कहा लेहुगे खेल में, तजौ अटपटी बात।
नेकु हंसौ हीं है भई, भौंहं सौंहें खात ॥४५२॥

लेहुगे=पाओगे। अटपटी=टेढी। नेकु=तनिक।

अर्थ—इस तरह का खिलवाड करके अर्थात् उल्टी-सीधी वाते करके क्या पाओगे? इन वेढगी वातो को छोड दो मेरे वार-वार शपथ लेने पर उनकी सौंहे कुछ-कुछ सहास्य हुई हे (अर्थात् उसका मन कुछ द्रवित हुआ है)।

रत्नाकर जी ने इसका प्रसग यह वताया है कि नायक ने नायिका के सम्मुख किसी अन्य स्त्री का नाम लिया था, जिसकी ईर्ष्या के कारण नायिका ने मान किया था। अव जव नायिका का मान टूटने को हुआ, तो नायक ने फिर उसे चिढाने के लिए खेल-खेल मे उसी स्त्री का नाम लिया।

अलकार—हेतु।

प्रसग—नायक और नायिका की सखी, दोनो मानवती नायिका को मनाने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। अव नायिका की अनुपस्थिति मे सखी नायक से कह रही है—

सकुचि न रहिये स्याम सुनि, ये सतरौं हं वैन।
देत रचौं हं चित्त कहे, नेह नचौंहं नैं ॥४५३॥

सकुचि=लजा कर। सतरौंहें=कठोर, तीव्र। वैन=वचन। रचौहें=प्रेमपूर्ण। नचौंहें=चचल।

अर्थ—हे कृष्ण, उसके तीव्र वचनो को सुन कर आप सकुचित अर्थात् लज्जित होकर न वैठ जाइयेगा। उसके स्नेह से चचल नयन इस वात को स्पष्ट वताये दे रहे हे कि उसका चित्त अनुराग युक्त हो रहा है।

अलकार—अनुमान और वृत्यनुप्रास।

प्रसंग—सखी नायक को मानवती नायिका के पास जाने के लिए मनाते हुए कहती है—

चलो चलै, छुटि जायगो, हठ रावरे सकोच।
खरे चढाये ही तवै, आये लोचन लोच ॥४५४॥

रावरे=तुम्हारे। हठ=जिद। लोच आये=कुछ नरमी पर आ गये है।

गई, परन्तु किसी प्रकार उसे न तो शह लगती है और न मात ही होती है (अर्थात् वह किसी प्रकार वश मे नही आती या हार नही मानती)। अब आप चलिये और उसके मान रूपी सुदृढ गढ़ को सुरग लगा कर अर्थात् प्रेम द्वारा अथवा प्रेम रूपी सुरग लगा कर जीत लीजिये।

अलंकार—श्लेष और रूपक।

प्रसग—नायिका और नायक मान किये बैठे है। उनमे मेल कराने के लिए एक अन्य सखी दोनो को सुनाते हुए कह रही है—

> वाही निसी तें ना मिटो, 'मान' कलह को भूल।
> भले पधारे पाहुने, ह्वै गुडहर को फूल ॥४५७॥

मान=रूठ जाना। कलह=विवाद। पाहुने=अतिथि। गुडहर=एक पेड का नाम।

अर्थ—'उसी रात्रि से' कलह का मूल मान मिटा नही है। यह तो अच्छा अतिथि है, जो गुडहल का फूल बन कर यहाँ आ पहुँचा है।

उसी रात्रि से अभिप्राय उस रात्रि से है, जिसमे नायक ने किसी अन्य स्त्री के साथ विहार किया था।

गुडहल के फूल की यह विशेषता बताई जाती है कि वह जिस घर मे रहता है, वहाँ अवश्य झगडा होता है।

मान को पाहुना कहने मे यह भी अर्थ ध्वनित है कि जिस तरह पाहुने का देर तक टिके रहना अच्छा नही लगता, उसी प्रकार मान भी क्षण भर के लिये ही अच्छा लगता है।

अलंकार—रूपक और पर्यायोक्ति।

प्रसग—नायिका ने किसी अन्य स्त्री पर अनुरक्त होने के कारण नायक से मान किया था। नायक उसे मनाने आया है, परन्तु भूल से उस अन्य स्त्री द्वारा दी गई अँगूठी पहनने ही चला आया है। उसी को लक्ष्य करके सखी कह रही है—

> आये आपु भली करी, मेटन मान मरोर।
> दूरि करौ यह देखिहै, छला छिगुनिया छोर ॥४५८॥

मान मरोर=मान की ऐंठन। मेटन=मिटाने के लिए। छला=छल्ला,

अर्थ—अरी, तू बताती क्यो नही कि नन्दकिशोर कृष्ण ने तुझसे क्या कहा है ? तू अपनी वडी-वडी आँखो के बल पर इतनी वडवोली क्यो होती जाती है ?

ध्वनित यह है कि नायिका ने अपने रूप के अभिमान मे नायक से कुछ ऐसी वात कह दी, जिससे वह रूठ गया। अव वह अकेली वैठी और कडी-कडी वातें कह रही है। इस पर सखी उसके नेत्रो की प्रशसा करके उसे समझाना चाहती है कि भविष्य मे वह नायक से ऐसी अनुचित वातें न कहे, जिसके कारण वाद मे पछताना पडे।

अलकार—लोकोक्ति।

प्रसग—नायिका ने नायक के साथ शय्या पर सोते हुए दूसरी ओर मुख फेर लिया। सखी उसे चतुरापूर्वक समझा रही है—

> मैं वरजी कै वार तू, इत कत लेति करौंट।
> पंखुरी लगे गुलाब की, परिहै गात खरौंट ॥४६१॥

वरजी=वर्जन किया, करौट=करवट। परिहै=पड जायगी खरौंट=खरौंच।

अर्थ—मैंने तुझे कितनी वार मना किया है ! तू इस ओर को करवट क्यो लेती है ? इस ओर करवट लेने से गुलाव की पँखुरियाँ लगेंगी और उससे तेरे शरीर पर खरौंच पड जायेगी।

अलकार—अतिशयोक्ति, काकुवक्रोक्ति।

प्रसग—मानवती नायिका को मनाने के लिए सखी कह रही है—

> निरदय नेह नयो निरखि, भयो जगत भयभीत।
> यह अवलौं न कहूँ सुनौ, मरि मारियै जु मीत ॥४६२॥

निरदय=निष्ठुर। अवलौ=अव तक। मरि=मर कर। मीत=मित्र।

अर्थ—हे निष्ठुर, यह तुम्हारा नया प्रेम देख कर सारा ससार भयभीत हो उठा है। अव तक तो यह वात कही नही सुनी थी कि स्वय मर कर अर्थात् कष्ट पाकर मित्र को अर्थात् प्रेमी को कष्ट दिया जाये।

भाव यह है कि मान करने के कारण नायिका स्वय भी दुखी है और उसके वियोग मे नायक भी दुखी हो रहा है। सखी नायिका से यह कहना

रूप-गुण-गर्विता

प्रसंग—नायिका के पति का दूसरा विवाह हो रहा है। साधारणतया सौत का आगमन दुःख और चिन्ता का विषय होना चाहिए, परन्तु अपने रूप और गुणों के कारण नायिका निश्चिन्त और उत्साह के साथ फिर रही है—

दुसह सौति सालैं सुहिय, गनति न नाह विवाह।
धरे रूप गुन को गरब, फिरे अछेह उछाह ॥४६५॥

दुसह=असह्य। सालैं=दुःख देगी। हिय=हृदय मे। नाह=पति। अछेह=अक्षय। उछाय=उत्साह, आनन्द।

अर्थ—सौत का दुःख हृदय मे बहुत अधिक गडता है, फिर भी वह अपने पति के दूसरे विवाह की कोई परवाह नही करती। अपने रूप और गुणों के गर्व मे वह अपार आनन्द से भरी सब ओर फिर रही है।

सपत्नी के आगमन से कष्ट होना स्वाभाविक है। परन्तु आत्म विश्वास के कारण वह निश्चिन्त है।

अलंकार—विभावना।

प्रसंग—नवविवाहित नायिका के भावो का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

सुघर सौति बस पिय सुनत, दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि, सगरब, सजल, सहास ॥४६६॥

सुघर=प्रवीण। दुलहिनि=नवविवाहित वधू। हुलास=उमग। तन दीठि करि=शरीर पर दृष्टि डाल कर। सगरब=सगर्व।

अर्थ—यह बात सुन कर कि नायक प्रवीण अथवा चतुर सौत के वश मे है, नई-नई दुलहिन को दुगना उत्साह अथवा आनन्द हुआ। उसने अपने शरीर पर दृष्टि डाल कर सखी की ओर गर्व के साथ, लज्जा के साथ और हास सहित देखा।

भाव यह है कि नायिका को अपने रूप और गुण पर बहुत भरोसा है और वह समझती है कि इनके द्वारा मैं नायक को अपने वश में कर लूँगी। 'सगर्व' से यह ध्वनित है कि वह सुन्दर है। 'सलज' से यह ध्वनित है कि वह

आनन्द, दुःख, क्रोध, विनोद, प्रसन्नता और झुंझलाहट भी हुई।

ये सब भाव क्यो हुए ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए भगवानदीन जी ने बताया है कि 'सुख' तो ईर्ष्या के कारण हुआ कि अच्छा हुआ कि सौत दुःखी हुई, 'दुःख' इसलिए हुआ कि एक सौत तो थी ही, अब यह एक और हो गई, 'क्रोध' इस कारण हुआ कि यदि नायक को सौत के यहाँ नही जाना था, तो मेरे यहाँ ही क्यो न आया ? 'विनोद' इस कारण कि देखो सौत नायक को अपने वश मे रख ही न पाई, 'प्रसन्नता' इस कारण हुई कि नायक सौत की बारी मे तो परस्त्री के पास गया, पर मेरी बारी मे कभी कही नही जाता और झुंझलाहट' इस कारण कि नायक को यह बुरी आदत जब पड गई है, तो सम्भवतः भविष्य मे मेरी बारी मे भी उसी के पास जाने लगे।

अलंकार—समुच्चय और हेतु।

प्रसग—राधा और कृष्ण ने एक दूसरे को देख कर जो चतुराई पूर्ण क्रियाएँ की, उनका वर्णन परस्पर सखियाँ कर रही है —

लखि गुरुजन विच कमल सो, ससी छुवायो स्याम।
हरि सम्मुख करि आरसी, हिये लगाई बाम ॥४६९॥

गुरुजन=बडी आयु के लोग। सनमुख=सामने। आरसी=दर्पण। ब म=स्त्री, राधा या नायिका।

अर्थ—गुरुजनो के बीच मे नायिका को देख कर श्याम अर्थात् कृष्ण ने कमल अपने सिर से छुवाया। जिससे यह ध्वनित था कि मैं अपना सिर तुम्हारे चरण कमलो पर रखता हूँ। इसके उत्तर मे राधा ने दर्पण को कृष्ण की ओर करके उसे अपने हृदय से लगा लिया जिससे यह अर्थ सूचित होता था कि तुम्हारे प्रतिबिम्ब को मैं अपने हृदय मे बसाती हूँ। नायिका क्रिया विदग्धा।

अलकार—सूक्ष्म।

सारे ससार की ओर से विमुख होकर केवल झरोखे की ओर वैठा रहता है।

अलकार—परिसख्या।

प्रसग—प्रस्तुत दोहे मे नायिका अपनी अन्तरग सखी से कह रही है—

> इन दुखिया अखियान कौ सुख सिरजोई नाहि।
> देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहि ॥४७२॥

सिरजोई=सिरजा ही, उत्पन्न किया है। अकुलाहि=व्याकुल।

अर्थ—मेरी इन दुखिया आंखो के लिए तो मानो विधाता ने सुख बनाया ही नही है। जब वह सामने दिखाई पडता है, तो सकोचवश उसे देखते नही बनता और जब वह सामने नही होता, तो ये आंखें उसे बिना देखे व्याकुल होती है।

अलकार—काव्यलिग, विशेषोक्ति और विरोधाभास।

प्रसग—विरह से व्याकुल नायिका अपनी सखी से कह रही है—

> कहत सबै कवि कमल से, मो मति नैन पखानु।
> नतरकु इन बिय लगत कत, उपजत बिरह कृसानु ॥४७३॥

मो मति=मेरे विचार से। पखानु=पत्थर। नतरकु=नही तो। बिय=दोनो। कृसानु=आग।

अर्थ—सब कवि नयनो को कमल जैसा बताते है। परन्तु मेरे विचार से तो नयन पत्थर के बने हुए है। यदि ऐसा न होता, तो इन दोनो नयनो के टकराने मे विरह की अग्नि कैसे उत्पन्न होती?

कमल जैसी कोमल वस्तु के नही, अपितु पत्थर जैसी कठोर वस्तुओ के टकराने से ही अग्नि उत्पन्न होती।

अलकार—अपह्नुति।

प्रसग—नायिका की दूती आकर नायक से कह रही है—

> चित तरसत मिलत न बनत, बसि परोस के बास।
> छाती फाटी जाति सुनि, टाटी ओट उसास ॥४७४॥

तरसत=तरसते है। बसि=रहकर। परोस=पडौस। बास=घर। टाटी=परदा, ओट। उसास=गहरी सांस।

नयन किसी अन्य मुख से जाकर नही लगते (अर्थात् अन्य किसी का रूप इस को भाता ही नही)।

अलंकार—अनुप्रास और परिसख्या।

प्रसग—दूती नायिका का विरह-वर्णन नायक के सम्मुख कर रही है—

तजत अठान न हठ पर्यौ, सठमति आठौं जाम।
भयो वाम वा वाम को, रहै काम वेकाम ॥४७७॥

अठान=दुराहग्रह। हठ पर्यौ=हठ किये हुए। सठ मति=दुष्ट। जाम=प्रहर, याम। वाम=(१) प्रतिकूल, दुखदायी (२) स्त्री। काम=कामदेव। वेकाम=अकारण।

अर्थ—कामदेव उस नायिका पर आठो पहर अकारण ही प्रतिकूल हुआ रहता है (अर्थात् उसे दुःख देता है)। वह दुष्ट अपने हठ पर अडा है और किसी भी प्रकार अपने दुराग्रह को छोडता नही।

अलकार—यमक और लाटानुप्रास।

प्रसग—नायिका या नायक का अपने किसी अन्तरग मित्र से कथन—

मैं हो जान्यो लोयननि, जुरत वाढिहै जोति।
को हो जानत डीठि को, डीठि किरकिटी होति ॥४७८॥

मैं हो जान्यो=मैंने समझा था। लोयननि=आँखो के। जुरत=मिलने से। जोति=ज्योति। डीठि=दृष्टि। किरकिटी=किरकिरी पैदा करने वाली हो जायेगी।

अर्थ—मैंने तो समझा था कि आँखो के मिलने से आँखो की ज्योति बढेगी। यह किसे विदित था कि दृष्टि के लिए दृष्टि ही किरकिरी पैदा करने वाली हो जायेगी।

भाव यह है कि आशा यह थी कि प्रिय के साथ आँखें मिलने से आनन्द होगा, परन्तु अव विरह के कारण वह आँखो का मिलना ही आँसुओ का कारण वन रहा है।

अलकार—विषम।

प्रसग—नायिका के विरह का वर्णन करती हुई दूती नायक से कह रही है—

> हरि हरि बरिबरि करि उठति, करि करि थकी उप
> वाको जुर वलि बैद जू, तो रस जाय तो

बरिबरि=बडबडाना। जुर=ज्वर। तौ=तुम्हारे। रस=(१) प्रेम (२) औषधि।

अर्थ—वह 'हरि, हरि' कह कर बडबडा उठती है। मैं तो उसे स्वस्थ करने के सारे उपाय करके थक गई। वैद्य जी मैं तुम्हारी बलि जाती हूँ, उसका ज्वर तुम्हारे रस (अर्थात् प्रेम अथवा औषध) से जाय तो जाय, अन्य किसी प्रकार नही जा सकता।

यहाँ वैद्य जी ही नायक है और नायिका का विरह-ज्वर उनके प्रेम-उपचार से ही शान्त हो सकता है।

अलकार—अनुप्रास, वीप्सा और सम्भावना।

प्रसग—दूती नायक से कह रही है—

> मैं लै दयो लयो सु कर, छुवत छनकि गो नीर।
> लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यो अबीर ॥४८२॥

दयो=दिया। लयो=लिया। छनकि गो=छनछना कर सूख गया। अरगजा=कपूर, कस्तूरी, चन्दन इत्यादि से बना हुआ ठडक पहुँचाने वाला लेप। अबीर=सूखा हुआ लाल रग।

अर्थ—हे लाल ! तुमने मेरे द्वारा उस नायिका के पास जो चदन इत्यादि का लेप भिजवाया था, वह मैंने उसे ले जा कर दे दिया और उसने ले लिया, परन्तु उसके हाथ छुवाते ही उस लेप का पानी छनछनाकर सूख गया। इसलिए तुम्हारा भेजा हुआ अरगजा (अर्थात् वही लेप) उसकी छाती पर अबीर बनकर लगा।

बिहारी यह कहना चाहते है कि नायिका का शरीर विरह-ताप से इतना जल रहा है कि अरगजा अँगुली से छूते ही उसका पानी छनछनाकर सूख गया, जैसे गर्म तवे पर गिरते ही पानी की बूँद सूख जाती है। बिहारी ने कल्पना के ऐसे खिलवाड़ अनेक स्थलो पर किये है।

अलकार—अत्युक्ति।

चूर=चूरा । उपै जाय=उड़ि जाय । जनि=मत, नहीं । छिन=क्षीण दुर्बल ।

अर्थ—लाल ! यह छबीली बाला क्षण-क्षण अति दुर्बल होती जा रही है । कहीं ऐसा न हो कि वह देखते-देखते ही कपूर के चूर्ण की भाँति उड़कर समाप्त हो जाये ।

नायिका की दुर्बलता इतनी बढ़ गई है कि और अधिक उपेक्षा करने से उसके प्राण चले जाने का भय है ।

अलकार—उपमा ।

प्रसग—विरह मे व्याकुल नायिका की दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

> प्रजर्‌यो आगि वियोग की, बह्यो बिलोचन नीर ।
> आठों जाम हियो रहै उड़्यो उसास समीर ॥४८६॥

प्रजर्‌यो रहै=जलता रहता है । बह्यो रहै=बहता रहता है । उड़्यो रहै=उड़ता रहता है । बिलोचन नीर=आँसुओं का पानी । आठों जाम=आठों पहर । उसास=उच्छ्वास ।

के लिए पकड लेते है, अर्थात् उन स्थानो पर जाकर आँखें कुछ देर के लिए टिक जाती है।

अलकार—स्मरण और विभावना। कारण न होने पर भी कार्य होने के कारण विभावना अलकार है।

प्रसग—नायिका अपनी सखी से कह रही है या यह भी समझा जा सकता है कि गोपियाँ कृष्ण द्वारा भेजे गये उद्धव से कह रही है—

जो न जुगुति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुख दीन।
जो लहिये सग सजन तौ, धरक नरक हू की न ॥४६०॥

जुगुति=युक्ति, उपाय। धूरि मुख दीन=मुँह मे धूल डाल दी, अर्थात् उसको ठुकरा दिया। सजन=प्रियतम। धरक=डर।

अर्थ—यदि प्रियतम से मिलने का उपाय मुक्ति मे न हो तो, ऐसी मुक्ति को भी हम ठुकराते है, और यदि प्रियतम के साथ रहना मिले, तो हमे नरक का भी भय नही है।

अलकार—काव्यलिंग।

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका

प्रसग—नायक के विदेश के लिए प्रस्थान करते समय नायिका की जो दशा हुई उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

ललन चलन सुनि चुप रही, बोली आपु न ईठि।
राख्यो गहि गाढे गरे, मनो गलगली डीठि ॥४६१॥

ललन=प्रियतम। ईठि=प्रेमपूर्वक। गाढे=मजबूती से। गरे=गले मे। गलगली=आँसुओ से भीगी हुई।

अर्थ—नायक के गमन की बात सुन कर वह नायिका चुप अर्थात् मूक ही रह गई। उसने अपनी ओर से प्रेम की बातें भी न कही। ऐसा लगा कि

होते समय उसे 'प्यारी' कह कर सम्बोधन कर रहा है। इस पर ना. कहती है—

वामा, भामा, कामिनी, कहि बोलो प्रानेस।
प्यारी कहत लजात नहिं, पावस चलत विदेस ॥४६४॥

वामा=स्त्री, कठोर वचन कहने वाली। भामा=क्रोधवती स्त्री। कामनी=कामयुक्त स्त्री। पावस=वर्षा ऋतु।

अर्थ—हे प्राणेश्वर मुझे 'वामा' अर्थात् कुटिला कहो, 'भामा' अर्थात् क्रोधवती कहो और 'कामिनी' कर बात करो। क्या इस वर्षा ऋतु मे परदेश के लिए प्रस्थान करते समय मुझे 'प्यारी' कह कर सम्बोधन करते हुए तुम्हे लज्जा नही आती ?

भाव यह है कि यदि मैं तुम्हे प्यारी होती तो वर्षा ऋतु में तुम यात्रा के लिए प्रस्थान न करते।

अलकार—परिकराकुर।

प्रसंग—नायक के प्रस्थान की बात सुनकर ही नायिका की आँखो मे आँसू आ गये, परन्तु उन्हे उसने जम्भाई लेने का बहाना करके छिपा लिया। इसी बात का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

ललन चलन सुनि पलन में, अंसुवा झलके आय।
भई लखाइ न सखिन हू, झूठे ही जमुहाय ॥४६५॥

ललन=प्रियतम। पलन मे=पलको मे। असुवा=आँसू। लखाइ न भई=दिखाई न पडी। जमुहाय=जम्हाई।

अर्थ—नायक के चलने की बात सुन कर उसकी पलको मे आँसू झलक आये। परन्तु यह बात सखियों को दिखाई न पड़ी, क्योंकि नायिका ने झूठे ही जम्हाई ली।

जम्हाई लेने मे आँखें मिच जाती है और मुंह कुछ ऊपर को उठ जाता है और जम्हाई लेने से भी आँखो मे पानी आ जाता है, जिसके कारण नायिका के आंसू छिप गये।

अलकार—युक्ति वृत्यनुप्रास।

प्रसग—नायक परदेश जा रहा है। उस समय नायक और नायिका की

अगोट=आड । चित धरी=विचार किया है । कल न=चैन नही पडती ।

अर्थ—हे सखी, ललन अर्थात् प्रिय ने विदेश-गमन का विचार किया है । अब यह बताओ कि मेरे ये चचल प्राण किस की आड मे रह पायेंगे ? क्योकि मेरी तो दशा यह है कि पल भर भी वे आँखो से परे हो, तो मुझे चैन ही नही पडती ।

अलंकार—अनुप्रास और स्वभावोक्ति ।

प्रसग—नायिका का किसी पडौसी से प्रेम है । नायिका का पति विदेश जा रहा है, इस कारण नायिका की आँखो मे आँसू भरे हुए हैं । परन्तु जब उसने सुना कि उसका पति उस पडौसी को ही अपने घर की देख-रेख सौपे जा रहा है, तो आनन्द के कारण नायिका के आँसू भरे नेत्रो मे भी हँसी झलक आई ।

चलत देत आभार सुनि, वही परोसिहि नाह ।
लसी तमासे की दृगनि, हाँसी आँसुन माँह ॥४९९॥

चलत=विदेश के लिए चलते समय । आभार=घर की देख-रेख का भार । नाह=पति । लसी=सुशोभित हुई । तमासे की=विलक्षण । आँसुन माँह=आँसुओ मे ।

अर्थ—पति के परदेश के लिए चलते समय यह सुनकर कि उसका पति उसी पडौसी को घर की देख-रेख का भार सौंप रहा है (जिससे नायिका का गुप्त प्रेम है) नायिका के नेत्रो मे आँसुओ के बीच मे तमासे की सी अर्थात् विचित्र ही हँसी सुशोभित हो उठी ।

अलकार—प्रहर्षण ।

प्रसग—नायक यात्रा के लिए प्रस्थान कर रहा है । उस समय का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

मिलि चलि, चलि मिलि मिलि चलत, आँगन अथयो भानु ।
भयो महूरत भोर के पौरिहि प्रथम मिलानु ॥५००॥

अथयो=अस्त हो गया । भानु=सूर्य । मिलानु=पडाव ।

अर्थ—मिल कर चलते हुए और चलने के बाद फिर मिलते अर्थात् भेंट

नये विरह वढ़ती विथा, खरि विकल जिय वाल।
बिलखी देखि परोसिन्यौं, हरषि हसी तिहिकाल ॥५०२॥

विथा=व्यथा, दु ख। खरी विकल=वहुत ही बेचैन। जीय=मन मे। वाल=वाला, स्त्री। बिलखी=दुखी। परोसिन्यो=पडौसिन को।

अर्थ—नये-नये विरह मे अपनी वढती हुई व्यथा के कारण वह वाला अथवा मुग्धा नायिका मन मे वहुत ही बेचैन थी। तभी उसने पडौसिन को वहुत व्याकुल देखा और उसे व्याकुल देख कर वह आनन्द के मारे उसी समय हँस पडी।

यहाँ पर व्यँजना यह है कि पडौसिन का भी नायक से गुप्त प्रेम है। पहले तो नायिका अपनी विरह-व्यथा से दुखी थी, परन्तु जव उसने पडौसिन को देखा, तो उसे हँसी आ गई। रत्नाकर जी ने यहाँ यह ध्वनि बताई है कि नायिका तो मुग्धा होने के कारण सन्देश भेज कर नायक को बुलवा नही सकती थी, परन्तु जब उसने पडौसिन को भी नायक के विरह में दुखी देखा, तो वह यह सोचकर प्रसन्न होकर हँस पडी कि यह पडौसिन प्रौढा है और किसी न किसी उपाय से नायक को बुलवा ही लेगी।

अलकार—अतिशयोक्ति और विभावना।

प्रसंग—नायक परदेश चला गया है। उसके जाने से पहले उसके नाखून से नायिका की छाती पर खरोंच लग गयी थी। अब उसकी स्मृति बनाये रखने के लिए वह उस खरोंच का खुरड वार-बार उतार कर उसे ताजा वनाये रखती है। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

तिय निज हिय जु लगी चलत, पिय नख-रेख-खरोंट।
सूखन देत न सरसई, खोंटि खोंटि खत खोंट ॥५०३॥

हिय=हृदय। जु लगी=जो लग गई थी। नख रेख खरोंट=नाखून की नोक से वनी हुई खरोंच। सरसई=ताजापन, गीलापन। खोंटि खोंटि=खुरच-खुरच कर। खत=क्षत, घाव। खोंट=खुरड।

अर्थ—नायक के परदेश जाने के दिनो मे जो नायिका की छाती पर नायक के नाखुन की जो खरोच लग गई थी, उस पर जमने वाले खुरड को खुरच-खुरच कर वह उसे सूखने नहीं देती, ताजा ही वनाये रखती है।

निकटता अनुभव करके किस प्रकार आनन्द अनुभव करती है, इसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

ध्यान आनि ढिग प्रानपति, मुदित रहति दिन राति ।
पल कंपति पुलकति पलक, पलक पसीजति जात ।।५०६।।

ध्यान=स्मरण । आनि=लाकर । ढिग=पास । मुदित=प्रसन्न । कम्पति=काँपती है । पुलकति=रोमांचित होती है । पसीजति जात=पसीने से तर हो जाती है ।

अर्थ—ध्यान द्वारा (कल्पना या स्मरण द्वारा) प्राणपति अर्थात् प्रियतम को अपने निकट लाकर वह दिन-रात प्रसन्न रहती है । कभी वह उसकी निकटता की कल्पना करके काँप उठती है, फिर अगले ही क्षण रोमांचित हो उठती है और क्षण भर मे पसीना-पसीना हो जाती है ।

भाव यह है कि प्रियतम के निकट न रहने पर भी वह कल्पना से ही उसकी निकटता का अनुभव करने लगती है और कम्प, रोमांच, स्वेद इत्यादि सात्विक प्रकट होने लगते है ।

अलंकार—कारकदीपक ।

प्रसग—नायक के परदेश चले जाने पर नायिका की विरह-दशा का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

दुसह बिरह दारुन दशा, रह्यौ न और उपाय ।
जात जात जिय राखिये, पिय की बात सुनाय ।।५०७।।

दुसह=असह्य । दारुन=विकट । जात जाय=जाता हुआ । जिय=जीव, प्राण ।

अर्थ—असह्य विरह के कारण नायिका की दशा बहुत ही विकट हो गई है । कोई अन्य उपाय शेष नही रहा । अब तो उसके शरीर को त्याग कर जाते हुए प्राणो को जैसे-तैसे उसके प्रियतम के आगमन की चर्चा करके ही रोक कर रखा जाता है ।

भाव यह है कि नायक के वियोग मे नायिका मरणासन्न है । सखियाँ यह कहती है कि तुम्हारे प्रियतम आ गये है, या यह कि आने वाले है । इस प्रकार की चर्चा द्वारा ही नायिका के प्राण उसके शरीर मे अटके रहते है ।

अरी परे न करै हियो, खरे जरे पर जार।
लावति घोरि गुलाब सो, मिले मलै घनसार ॥५१०॥

परे न करै=इसे हटाती क्यो नही। खरे=बहुत। जरे पर जार=जले को और जलाती है। घोलि=घोलकर। घनसार=कपूर। मलै=मलय, चन्दन।

अर्थ—अरी, तू इस दासी को परे क्यो नही हटाती ? यह गुलाब जल मे चन्दन और कपूर मिला कर मेरी छाती पर लगाती है, जिससे मेरे जलते हुए हृदय मे और भी अधिक जलन होती है।

वैसे चन्दन, कपूर और गुलाब जल का प्रयोग जलन को शान्त करने के लिए किया जाता है, परन्तु विरह मे नायिका को ये वस्तुएँ जलाने वाली प्रयीत होती है।

अलकार—विषम।

प्रसग—विरह-व्याकुल नायिका जो कुछ बोलती है, उस को उनका पिंजरे मे रखा हुआ तोता सुन-सुन कर याद कर लेता है। नायिका के वे उद्गार करुणाजनक है कि जब वह तोता उन बातो को फिर किसी अन्य व्यक्ति के सामने दोहरा देता है, तो सुनने वाले की आँखो मे आंसू आ जाते है।

कहै जु वचन वियोगिनी, विरह विकल विललाय।
किये न केहि अंसुवा सहित, सुवा सु बोल सुनाय ॥५११॥

वियोगिनी=विरहिणी। वचन=शब्द। विललाय=विलखते हुए। असुवा महित=अश्रु सहित। सुवा=तोता। बोल सुनाय=बातो को सुना कर।

अर्थ—वह वियोगिनी विरह से व्याकुल होकर बिलखते हुए जो वचन बोलती है, उन्ही को रट कर और दूसरो को सुना कर उसके तोते किन-किस को अश्रु सहित नही बना दिया ? (अर्थात् रुला नही दिया)।

वियोगिनी के विलाप को तोता सहज भाव से रट लेता है और उसके मुँह से उन्हें सुन कर सुनने वाले बिना रोये नही रह पाते।

अलकार—हेतु, अत्युक्ति और यमक।

स्थलो पर रसपूर्ण न होकर खिलवाड-सा हो गयी है। उसी का एक उदाहरण यह भी है।

प्रसग—नायिका की विरह की ज्वाला का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

आड़े दै आले बसन, जाडे हू की राति।
साहस कँकै नेह-बस, सखीं सबै ढिग जाति ॥५१४॥

आडे दै = सामने करके, ओट करके। आले = गीले। बसन = कपडे। हू = भी। कै कै = करके। नेहवस = प्रेम के कारण। ढिग = पास।

अर्थ—उस नायिका के विरह का ताप इतना प्रचड है कि जाडे की रात मे भी उसकी सखियाँ गीले कपडो की आड सामने करके, अत्यन्त साहस करके उससे अत्यधिक प्रेम होने के कारण ही उसके पास जाती हैं।

जाडे की रात मे भी गीले वस्त्रो की ओट करके ही उसके पास पहुँचना सभव हो पाता है और यह सब भी केवल उससे प्रेम होने के कारण किया जाता है।

अलंकार—अत्युक्ति।

प्रसग—नायक के परदेश चले जाने के कारण नायक की सभी पत्नियाँ दुखी हैं। परन्तु नायिका से उसकी विशेष प्रीति है। इस कारण नायिका को दु ख और अधिक हुआ है और उसकी दशा इतनी बुरी हो गई है कि सौतें अपनी ईर्ष्या को भूल कर उसके दु.ख से दुखी होने लगी है। इसी का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

प्रिय प्रानन की पाहरू, करति जतन अति आप।
जाकी दुसह दसा पर्यो, सौतिन हूं सताप ॥५१५॥

पाहरू = रक्षक। जतन = यत्न, देख-रेख। आप = स्वय। दुसह = असह्यय, यहाँ भाव है—बहुत खराब। सन्ताप=दु ख।

अर्थ—उस नायिका की दशा इतनी खराब हो गई है कि उसे देखकर उसकी सौतो को भी दु ख होने लगा है, और यह समझ कर कि प्रियजन के अर्थात् नायक के प्राणो की रक्षक यही है, वे उसे बचाने के लिए स्वय बहुत यत्न अर्थात् देख-रेख कर रही हैं।

है, तो हवा के खिंचाव से वह छः-सात हाथ आगे बढ़ जाती है और जब साँस छोड़ती है तो अपने ही साँस के धक्के से छः-सात हाथ पीछे हट जाती है। इस प्रकार वह अपने ही उच्छ्वासों के झूले पर झूल रही। कल्पना की उड़ान और सूझ तो प्रशंसनीय हैं, परन्तु इससे रस की व्यंजना तनिक भी नहीं होती। बिहारी व्यंजित करना चाहते हैं शृङ्गार और व्यंजित होता है अद्‌भुत रस।

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रसंग—विरह-व्याकुल नायिका के सम्बन्ध में कवि कह रहा है—

सोरठा—बिरह सुखाई देह, नेह कियो अति डहडहो।
जैसे बरसे मेह, जरै जवासी ज्यौ जमै ॥५१८॥

नेह=प्रेम। डहडहो=हरा-भरा। मेह=वर्षा। जवासा=एक पौधा। ज्यौ=जो, यहाँ धान से तात्पर्य है।

अर्थ—विरह ने इस नायिका के शरीर को तो सुखा दिया है (अर्थात् दुर्बल कर दिया है) परन्तु उसके प्रेम को खूब हरा-भरा कर दिया है। जिस प्रकार वर्षा होने पर जवासा तो जल जाता है, परन्तु धान हरे-भरे होकर फूट निकलते हैं।

भाव यह है कि जैसे वर्षा से ही जवासा जलता और धान उगते हैं, वैसे ही विरह से इसका शरीर क्षीण और प्रेम परिपुष्ट हो गया है।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है—

सोरठा—आठौ जाम अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत।
स्यौं बिजुरी जनु मेह, आनि यहाँ बिरहा धर्‌यो ॥५१९॥

जाम=याम, प्रहर। अछेह=अविराम। बरत=जलते रहते हैं। बरसत रहत=बरसते रहते हैं। स्यौं बिजुरी=बिजली समेत। मेह=मेघ। आनि=लाकर।

अर्थ—ये जो मेरी आँखें आठों पहर अविराम जलती और बरसती रहती हैं, उससे ऐसा लगता है कि विरह ने बिजली समेत मेघ लाकर यहाँ रख दिया है।

हुआ था, परन्तु उसकी लिखावट दिखाई नही पडती थी । अब विरह की आग मे तपने पर वह सेहुर के दूध से लिखे हुए लेख के समान प्रकट हो गया है ।

अलकार—उपमा ।

प्रसग—विरहिणी नायिका के सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

याके उर औरे कछु, लगी विरह की लाय ।
अजरै नीर गुलाब के, पिय की बात बुझाय ॥५२२॥

औरे कछू=कुछ विचित्र ही । लाय = आग । अजरै=जोर-जोर से जलती है, प्रज्वलित होती है । पिय की बात=(१) प्रिय की चर्चा से (२) प्रिय की चर्चा रूपी वायु से ।

अर्थ—इस नायिका के हृदय मे विरह की एक विचित्र प्रकार की आग लगी है । यह आग गुलाब जल डालने से तो और प्रज्वलित होती है और प्रिय की चर्चा रूपी वायु से बुझ जाती है ।

सामान्य आग पानी से बुझती है और वायु से प्रज्वलित होती है, पर विरह की आग ऐसी विचित्र है कि गुलाब-जल आदि शीतल उपचारो से बढती है और प्रियतम की चर्चा से बुझती है । यहाँ 'बात' शब्द मे श्लेष है, जिसका अर्थ है चर्चा और वायु ।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति, विभावना, श्लेष और विरोधाभास ।

प्रसग—नायिका के सम्बन्ध मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

मरी डरीकि टरी बिथा, कहा खरी चलि चाहि ।
रही कराहि कराहि अति, अब मुख आहि न आहि ॥५२३॥

डरी=पडी है । बिथा टरी = कष्ट मिट गया । चलि चाहि=चलकर देख । आहि न आहि = आह भी नही है ।

अर्थ—तू यहाँ इस तरह खडी क्यो है ? जरा चल कर देख तो कि कही वह मर ही तो नही गई है ? कही ऐसा तो नहीं कि उसकी सारी देह बिलकुल ही समाप्त हो गई हो ? पहले तो वह बहुत कराहती रहती थी, पर अब तो उसके मुख से आह भी नही निकल रही ।

अलकार—सन्देह, वीप्सा और यमक ।

चौसर = चार लड़ियो वाली माला। विपति पारत = मुसीबत डाल रहे हैं, कष्ट दे रहे है। मारुत = वायु।

अर्थ—पति के विना (अर्थात् उसके निकट न होने के कारण) अब ये चन्दन, चन्द्रमा और चार लडियो की माला कुछ और ही तरह के हो गय हैं। अब ये वहुत कष्ट दे रहे है और मन्द-मन्द चलने वाला समीर तो मानो मारे-सा डाल रहा है।

पति के निकट होने पर यही वस्तुएँ सुखदायक थी, वही अब दु खदायक हो गई हैं।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति, यमक और अनुप्रास।

प्रसग—विरहिणी नायिका अपने विरह के सम्वन्ध मे अपनी सखी से कह रही है—

नैकु न भुरसी बिरह-झर, नेह लता कुम्हिलात।
नित नित होति हरी हरी, खरी झलरती जाति ॥५२७॥

नेकु = जरा भी। झुरसी = झुलसी। झर = ज्वाला, लपट। नेह लता= प्रेम रूपी वेल। झलरती जाति = फैलती जाती है।

अर्थ—विरह की ज्वाला से झुलस जाने के वाद भी यह मेरी स्नेह रूपी वेल जरा भी कुम्हलाती नही है, वल्कि इसके विपरीत नित्यप्रति हरी-हरी होती जाती है और खूब फैलती जा रही है।

भाव यह है कि विरह के कारण प्रेम कम नही हुआ, अपितु और अधिक बढ गया है।

अलकार—विशेषोक्ति, रूपक और विभावना।

प्रसग—विरही लोगो को कोयल की कूक कैसी प्रतीत है ? इस सम्वन्ध मे कवि की कल्पना है कि—

वन-वाटनि पिक वटपरा, ताकि विरहिन मति मैन।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठत, करि करि राते नैन ॥५२८॥

वन वाटनि = वन के रास्तो पर। पिक = कोयल। वटपरा = वटमार डाकू। तकि = देखकर। मत मे न = होश मे नहीं, [illegible]। कुहौं-

हिये और सी ह्वै गई, टरी अवधि के नाम ।
दूजै करि डारी खरी, बौरी बौरे आम ॥५३०॥

हिये = हृदय मे । टरी अवधि के नाम = आने की अवधि टल गई है, यह जान कर । दूजै = दूसरे । खरी = बहुत ही । बौरी कर डारी = बावला बना दिया है । बौरे = बौर से लदे हुए ।

अर्थ—नायक के आने की अवधि टल गई है, यह जानकर ही उसका मन कुछ और ही हो गया था, (अर्थात् वह बहुत दुखी हो गई थी) दूसरे, इन बौरे हुए अर्थात् मजरित) आमो ने तो उसे बिल्कुल बावला ही बना दिया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—विरहिणी नायिका चैत्र मास की चाँदनी को देखते हुए अपनी सखी से कह रही है—

भौ यह ऐसोई समौ, जहा सुखद दुख देत ।
चैत चाँद की चाँदनी, डारत किये अचेत ॥५३१॥

समौ = समय । भौ = हो गया है ।

अर्थ—समय कुछ ऐसा ही हो गया है कि इसमे सुख देने वाली वस्तु भी दुःख देती है । देखो तो यह चैत मास की चाँदनी भी मुझे अचेत अर्थात् बेहोश किये डाल रही है ।

भाव यह है कि नायिका कहना चाहती है कि मेरा समय ही खराब आ गया है (अर्थात् भाग्य ही प्रतिकूल हो गया है), नही तो आनन्दित करने वाली वसन्त की ज्योत्सना उसे अचेत क्यो करती ?

अलकार—विभावना और अर्थान्तरन्यास ।

प्रसग—विरहिणी नायिका अपनी चरम व्यथा बताते हुए अपनी सखी से कह रही है—

गनती गनिवे तें रहै, छत हू अछत समान ।
अब अलि ये तिथि औम लौ, परे रहौं तन प्रान ॥५३२॥

गनिवे = गिनने । छत = होते हुए । अछत = न होते हुए । [illegible] । औम तिथि = अवम तिथि । यह वह तिथि होती है, जो गणना मे नहीं आती ।

मुझ मरी हुई को और मत मार, और घडी-घडी (अर्थात् बार-बार) गुलाब जल डाल-डाल कर मुझ जली हुई को और मत जला।

भाव यह है कि मैं तो विरह मे पहले ही जल रही हूँ, गुलाबजल का उपचार मेरी जलन को और बढाता है, इसलिए यह उपचार मत कर। गुलाब-जल से जलन बढना ध्यान देने योग्य है।

अलंकार—वीप्सा, विभावना और यमक।

प्रसग—विरहिणी नायिका अपनी सखी से कह रही है—

रह्यौ ऐंचि अत न लह्यौ, अवधि दुसासन बीर।
आली बाढत बिरह ज्यौं, पचाली को चीर ॥५३५॥

ऐंचि रह्यो=खींचता रहा। अन्त न लह्यो=अन्त नहीं मिला। अवधि दुसासन=प्रियतम के लौट आने की अवधि रूपी दु शासन, पचाली=द्रौपदी।

अर्थ—हे सखी, प्रियतम के लौट आने की अवधि रूपी दु शासन, विरह रूपी चीर को खींचता रहा, परन्तु किसी प्रकार उसका अन्त न पा सका। यह मेरा विरह तो द्रौपदी के चीर की भाँति बढता ही चला जाता है।

दु शासन ने द्रौपदी का चीर खींचना आरम्भ किया था और वह किसी प्रकार समाप्त ही नहीं होता था। इधर प्रियतम के आगमन की अवधि विरह को खींचकर समाप्त करना चाहती है, तो विरह द्रौपदी के चीर के समान बढता ही जाता है, अर्थात् आगमन की अवधि बहुत दूर प्रतीत होती है।

अलंकार—रूपक और उपमा।

कि पानी उस व्यक्ति को स्पर्श न कर सके।

अर्थ—हे लाल, तुम मेरे हृदय मे निवास करते हो और फिर भी विरह-व्यथा रूपी जल से अछूते रह जाते हो। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्योधन की भांति तुम भी कोई जलस्तम्भ विद्या जानते हो, जिसके कारण मेरे हृदय की व्यथा रूपी जल का अनुभव तुम्हे नही होता।

अलकार—रूपक और उपमा।

प्रसग—एक दूसरे के विरह मे नायक और नायिका की क्या दशा हो गई उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

विरह विकल विनही लिखी, पात दई पठाय।
आंक विहीनीयौ सुचित, सूनै बांचत जाय ॥५४०॥

पाती=पत्र। पठाय दई=भेज दई। आंक बिहीनीयो=अक्षरो से रहित को भी। सुचित=सावधानी से। सूने=शून्य (स्तब्ध)। वांचत जात=पढता जाता है।

अर्थ—विरह से व्याकुल नायिका ने विना लिखा हुआ अर्थात् खाली कागज ही पत्र के रूप मे भेज दिया। उधर नायक विरह से इतना व्याकुल था कि वह उस अक्षरो से रहित पत्र को भी शून्य (स्तब्ध होकर) इस प्रकार पढने लगा कि मानो वह पूरा पत्र ही लिखा हुआ है।

यहा 'सुचित' अर्थात् सचेत शब्द व्यग्य मे प्रयुक्त किया गया है, जिसका अर्थ उल्टा हो जायेगा अर्थात् ऐसा व्यक्ति जिसका मन स्वस्थ नही है।

अलकार—विभावना।

प्रसग—विरह-व्याकुल नायिका की दशा का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

रंगराती राते हियै, प्रीतम लिखी वनाय।
पाती काती विरह की, छाती रही लगाय ॥५४१॥

रगराती = लाल रग की। राते हिये=प्रेम भरे हृदय से। वनाय=यत्न पूर्वक। काती=काटने वाली तलवार।

अर्थ—प्रियतम ने प्रेम पूर्ण हृदय से लाल रग का पत्र अत्यन्त यत्नपूर्वक

अर्थ—नायिका प्रियतम के पत्र को पाकर उसे अपने हाथो मे लेती है, फिर उसे चूमती है, फिर उसे सिर से लगाती है, फिर छाती से लगा कर उसे अपनी बाँहो मे समेट लेती है, फिर उसे पढती है, फिर उसे मोड कर सभाल कर रख देती है।

अलंकार—कारकदीपक और स्वभावोक्ति।

प्रसंग—विरहिणी नायिका की दूती नायक से कह रही है—

यह विनसत नग राखिकै, जगत बडौ जस लेहु।
जरी विषम जुर ज्याइयै, आय सुदरसन देहु ॥४४५॥

विनसत=नष्ट होता हुआ। नग = रत्न। जस = यश। विपम जुर = एक दिन छोड कर आने वाला बुखार। सुदरसन = (१) अच्छा दर्शन (२) एक चूर्ण, जो ज्वर के रोगी को दिया जाता है।

अर्थ—आप इस नष्ट होते हुए स्त्री रूपी रत्न की रक्षा कीजिये और इस प्रकार ससार मे अत्यन्त यश प्राप्त कीजिये। विपम ज्वर अर्थात् विरह के विकट ज्वर से जलती हुई इस नायिका को आप आकर अपने दर्शन रूपी सुदर्शन चूर्ण देकर इसे जिलाइये अर्थात् इसकी जान बचाइये।

भाव यह है कि नायिका विरह-ज्वर मे तडप रही है, यदि उसे नायक के दर्शन न हुए तो वह मर जायेगी। यदि नायक उसके पास जा कर उसे दर्शन दे दे, तो उसके प्राण बच जायेंगे और नायक को यश मिलेगा कि उनने ऐसे स्त्री-रत्न की रक्षा की है।

अलंकार—श्लेष।

प्रसंग—विरहिणी नायिका की दूती नायक से कह रही है—

करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छाडत नीचु।
दीने हू चसमा चखिन, चाहे लहै न मीचु ॥५४५॥

तऊ = फिर भी। गैल = साथ। चस्मा = ऐनक। चाहे = देख कर। मीचु=मृत्यु।

अर्थ—यद्यपि विरह ने उसको इतना दुर्बल कर दिया है कि मृत्यु उसे आँखो पर ऐनक लगाकर भी देख नही पाती। फिर भी यह नीच विरह उसका साथ छोड नही रहा।

'शीत-कर' (अर्थात शीतल किरणो वाला) बताते है ?

विरहिणी को चन्द्रमा की किरणे जलाने वाली लगती है, इसलिए उसे चन्द्रमा का 'शीत-कर' नाम विचित्र जान पडता है।

अलंकार—सदेह।

प्रसग—विरहिणी नायिका अपनी दशा का वर्णन सखी के सामने कर रही है—

सोवत जागत सपन बस, रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसराये बिसरै न ॥५४९॥

सपन बस = स्वप्न के आधीन, अर्थात् सपना देखते हुए। रस = प्रेम। रिस = क्रोध। कुचैन = बेचैनी। सुरति = (१) शक्ल, (२) स्मृति।

अर्थ—मेरी दशा तो वह हो गई है कि क्या तो सोते समय, क्या जागते समय, क्या सपना देखते समय, क्या प्रेम मे, क्या क्रोध मे, क्या सुख मे और क्या बेकली मे, उस घनश्याम के रूप की स्मृति मुझे किसी प्रकार भुलाये नहीं भूलती।

भाव यह है कि प्रतिक्षण विरहिणी को घनश्याम कृष्ण अथवा नायक की स्मृति बनी रहती है।

अलकार—यमक और विशेषोक्ति।

प्रसग—नायिका की सखी नायक से कह रही है—

लाल तिहारे बिरह की, अग्नि अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हू, मिटै न झरहू झार ॥५५०॥

तिहारे = तुम्हारे। अनूप = अद्भुत। सरसै = और बढती है। झार = झडी। झार = ज्वाला।

अर्थ—हे लाल, अर्थात् नायक तुम्हारे विरह की आग बडी विचित्र है और अपार है। इसकी विचित्रता यह है कि यह पानी के बरसने मे और बढती है और झडी लग जाने पर भी इसकी ज्वाला मिटती नहीं।

यहाँ नीर और झडी का प्रयोग आँसुओ के लिए किया गया है।

अलंकार—विभावना और विशेषोक्ति।

जिहि = जिसमे । निदाघ = ग्रीष्म । माघ की राति = माघ मास की अर्थात् बहुत ठडी रात । उसीर=खस । रावटी=बगला, कुटिया । खरी – बहुत अधिक । आवटी जाति=औटी जा रही हूँ, उबल रही हूँ ।

अर्थ—जिस खस की कुटिया मे ग्रीष्म ऋतु की दुपहरी मे भी माघ मास की रात हो जाती थी, अर्थात् सर्दी लगने लगती थी, उसमे रहते हुए भी मैं औटी जा रही हूँ (अर्थात् उबल सी रही हूँ)।

नायिका का विरह-ताप इतना अधिक है कि ग्रीष्म की दुपहरी मे भी माघ की सर्दी का अनुभव करा देने वाली खस की कुटिया भी उसे तनिक शान्ति नही दे रही है ।

अलकार—विभावना ।

प्रसग—विरह से व्याकुल नायिका को आँसू बहाते देख कर एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

तच्यौ आंच अति बिरह की, रह्यौ प्रेमरस भीजि ।
नैनन के मग जल बहैं, हियौ पसीजि पसीजि ॥५५४॥

तच्यो=तपा हुआ । आँच=आग । भीजि=भीगा हुआ । मग=रास्ता । पसीजि पसीजि=पसीज-पसीज कर ।

अर्थ—इस नायिका का हृदय प्रेम के रस से भीगा हुआ था । वह अब विरह की आग मे बहुत अधिक तप गया है । अब उसका हृदय पसीज-पसीज कर उनकी आँखो के रास्ते से पानी बन कर बह रहा है ।

यहाँ अर्क निकालने के भपारे का रूपक बाँधा गया है । जिस वस्तु का अर्क निकालना होता है, उसे पानी मे भिगो कर उबालते हैं और उठने वाली भाप को दूसरी ओर ठडा करके टपका लेते है । कवि यह व्यजित करना चाहता है कि विरहिणी की आँखो से टपकते हुए आँसू मानो उसके हृदय का अर्क है ।

अलंकार—समासोक्ति ।

प्रसग—कृष्ण मथुरा चले गये । राधा कृष्ण को याद करती है । उन्ही का दर्शन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

चल कर अभी ढाक की इस डाली पर चढ कर जल जायें, क्योकि फिर मरने पर इस तरह के अँगारे, जिनसे कि धुआँ ही न उठता हो, नही मिलेंगे।

अलंकार—व्यतिरेक।

प्रसंग—नायिका ने नायक के नाम यह प्रेम सन्देश भेजा है—

तो हो निरमोही लग्यो, मोही यहै सुभाव।
अनआये आवै नहीं, आये आवत आव ॥५५८॥

निरमोही = निष्ठुर। मो ही = मेरा हृदय।

अर्थ—हे निष्ठुर, मेरा हृदय सहज भाव से तुझ निर्मोही से इस ढग से लग गया है कि तेरे न आने से वह मेरे पास नही आता है और तेरे आने से आता है। इसलिए तू आ जा।

भाव यह है कि नायिका का हृदय नायक मे लगा है। नायक नायिका के पास नही आता, तो नायिका का हृदय भी मानो उसके अपने पास नही रहता। इसलिए वह नायक से आने का अनुरोध कर रही है।

अलंकार—यमक और पर्यायोक्ति।

प्रसंग—प्रोषितपतिका नायिका वर्षा की झडी को देख कर अपनी सखी से कह रही है—

पावक-झप तें मेह-झर, दाहक दुसह विशेष।
दहै देह वाके परस, याहि दृगन की देख ॥५५९॥

पावक झर = आग की लपट। मेह झर = वर्षा की झडी। दाहक = जलाने वाली। परस = स्पर्श।

अर्थ—वर्षा की झडी आग की लपट से भी कही अधिक असह्य रूप से जलाने वाली है, क्योकि उसके (अर्थात् आग की लपट के) तो स्पर्श से शरीर जलता है, परन्तु यह वर्षा की झड़ी ऐसी है कि इसे आँखो से देख कर ही शरीर जलने लगता है।

अलकार—यमक और व्यतिरेक।

प्रसग—कोई विरही व्यक्ति वर्षा काल के सम्बन्ध मे कह रहा है—

बे ई चिरजीवी अमर, निधरक फिरौ कहाय।
छिब विछुरे जिनको नय हिं, पावस आयु सिराय ॥५६०॥

कि तन और वसन के बीच कोई व्यवधान नही रहता ।

अलकार—उपमा ।

प्रसग—सखी ने विरहिणी नायिका को याद दिलाया है कि अब तो नायक के आने मे थोडे से ही दिन बाकी है । इस पर नायिका कहती है—

फिरि सुधि दै सुधि धाय प्यौ, यह निरदई निराश ।
नई नई बहुरौ दई, दई उसास उसास ॥५६३॥

सुधि=होश । सुधि = याद । द्याय=दिला कर । निर्दयी=निष्ठुर । बहुरौ=और भी अधिक । दई=देव, बादल । उसास=उच्छ्वास । उसास दई=बढा दी । निरास=(१) आशा रहित (२) नीराश, जल पीकर जीवित रहने वाला पपीहा ।

अर्थ—मैं अचेत पडी थी, परन्तु इस निर्दय पपीहे ने बोल कर मुझे होश मे ला दिया और 'पी पी' कह कर प्रियतम की याद दिला दी । पर अब मैं निराश ही हूँ और इस बादल ने फिर मेरी छाती मे नया उच्छ्वास बढा दिया है ।

पपीहे की ध्वनि सुन कर अचेत पडी नायिका सचेत हो गई और बादल को देख कर उसकी छाती से गहरा सांस निकल पडा ।

अलकार—यमक ।

प्रसंग—नायिका अपने पिता के घर जाने लगी है । उसकी उस दशा का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी से कह रही है—

पिय-बिछुरन को दुसह दु ख, हरष जात प्यौसाल ।
दुरजोधन लौं देखियत, तजत प्रान यह बाल ॥५६४॥

दुसह=असह्य । प्यौसाल=पितृगृह । बाल=बाला, युवती ।

अर्थ—एक ओर तो इस नायिका को अपने प्रियतम से अलग होने का असह्य कष्ट हो रहा है, और दूसरी ओर पितृगृह जाने का आनन्द भी हो रहा है । मुझे तो ऐसा लगता है कि यह सुन्दरी दुर्योधन की भाँति अब अपने प्राण ही त्याग देगी ।

दुर्योधन को ऐसा शाप मिला हुआ था कि उसकी मृत्यु तब होगी, जबकि उसे हर्ष और शोक दोनो एक साथ होगे । जब अश्वत्थामा ने उसके सामने

बाम बाहु फरकत मिलें, जो हरि जीवन-मूरि।
तो तोहि सो भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि ॥५६६॥

वाम=बायाँ। हरि=कृष्ण अथवा नायक। जीवन मूरि=जीवन का आधार। भेंटिहौं=आलिगन करूँगी।

अर्थ—हे मेरी बायी बाँह, तू फडक रही है। यदि तेरे फडकने के फल-स्वरूप मुझे मेरे जीवन के मूल कृष्ण आ मिले, तो मैं दाहिनी भुजा को दूर रख कर तुझसे ही उनका आलिगन करूँगी।

अलंकार—सम्भावना।

प्रसग—नायक से प्रेम करने वाली दो परकीया प्रेमिकाएँ है। परन्तु वे दोनो इस बात को निश्चय से नही जानती कि उन दोनो का प्रेम पात्र एक वही नायक है। वे दोनो पास बैठी बातें कर रही थी तभी किसी ने आकर उनमे से एक को सूचना दी कि नायक आ गया है। उसे सुनकर उन दोनो की जो दशा हुई, उसका वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

आयो मीत बिदेस तें, काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि हुलसी बिहंसी हँसी, दोऊ दुहुनि निहारि ॥५६७॥

मीत=मित्र। काहू = किसी ने। हुलसी=प्रसन्न हुई। विहँसी=मुस्कराई। दुहुनि=दोनो को।

अर्थ—किसी व्यक्ति ने पुकार कर यह कहा कि मित्र विदेश से वापस लौट आया है। इस बात को सुनकर वे दोनो प्रसन्न हुई और एक दूसरे को देख कर मुस्कराई और हँस पडी।

मुस्कराने और हँसने से दोनो को यह पक्का पता चल गया कि वे दोनो एक ही व्यक्ति से प्रेम करती है।

अलकार—युक्ति।

प्रसग—नायक के लौट आने पर नायिका के शरीर मे क्या रूपान्तर हो गया, उसका वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

मलिन देह वेई बसन, मलिन बिरह के रूप।
पिय आगम औरे चढ़ी, आनन ओप अनूप ॥५६८॥

विधाता की घडी, अर्थात् ब्रह्मा के हिसाब से एक घडा, जो लाखो करोडों वर्षो का होता है।

अर्थ—प्राणो के स्वामी नायक तो परदेश से लौट कर बरौठे मे अन्य लोगो से मिलने लगे। उनके मिलन मे घर अन्दर तक आते-आते जो एक घडी वीती, नायिका के लिए वही मानो विधाता की घडी हो गई।

भाव यह है कि उतना थोडा सा समय ही नायिका को सैकडो हजारो वर्ष जितना लम्बा जान पडा।

अलकार—उपमा, लाटानुप्रास, अतिशयोक्ति और उपमा।

प्रसग—नायिका का पति परदेश से लौट कर आया है, परन्तु घर मे अन्य सव गुरुजनो के रहते वह उससे तुरन्त मिल नही सकती। उसकी दशा का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कर रही है—

भेंटत बनत न भावतो, चित तरसत अति प्यार।
धरति लगाय लगाय उर, भूषण बसन हथ्यार ॥५७१॥

भावतो=प्रियतम। तरसत=तरसता है। उर=छाती। बसन=वस्त्र।

अर्थ—सब लोगो के सम्मुख प्रियतम से भेंट करते नही बनती, परन्तु नायिका का चित्त बहुत प्रेम के कारण मिलन के लिए तरस रहा है। इसलिए वह नायक के आभूषणो को, वस्त्रो को तथा शस्त्रास्त्रो को अपनी छाती से लगा-लगा कर सभाल कर रखती है।

नायक के न मिलने तक नायक के अस्त्रो और वस्त्रो को हृदय से लगा रही है।

अलंकार—प्रत्यनीक।

प्रसग—नायक के परदेश से लौटने पर नायिका के साथ उसके मिलन का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

बिछुरैं जिय सकोच यह, बोलत बनै न बैन।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौहैं नैन ॥५७२॥

बिछुरैं=बिछुड जाने पर। सकोच=लज्जा। निचौहैं=नीचे।

अर्थ—नायक और नायिका दोनो के मन मे इस बात का सकोच अर्थात् लज्जा थी कि वे एक-दूसरे से बिछुड जाने पर भी जीते रहे, अर्थात् विरह मे

घोडा बहुत तीव्र था, मार्ग बहुत थोडा था, फिर भी उत्कठा के कारण वह हजार कोस लम्बा जान पडा ।

अलकार—विशेषोक्ति और निदर्शना ।

ऋतु वर्णन

वसन्त

प्रसग—कवि वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कह रहा है—

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध ।
ठौर ठौर झूमत झपत, भौंर झौंर मधु अंध ।।५७५।।

छकि = तृप्त होकर । रसाल = आम । माधवी = एक बेल का नाम, जिसे वासन्ती बेल भी कहा जाता है । झौर = समूह ।

अर्थ—आम के बौर की सुगन्ध से तृप्त हुए और मधुर वासन्ती लता की गन्ध से सने हुए भ्रमरो के समूह फूलो के पराग से अन्धे होकर स्थान-स्थान झूमते हुए उड रहे है ।

अलकार—स्वभावोक्ति ।

प्रसग—कवि दक्षिण वायु का वर्णन करते हुए कह रहा है—

चुवत सेद मकरन्द कन, तरु तरु तर बिरमाय ।
आवत दक्षिण देस ते, थक्यो बटोही बाय ।।५७६।।

चुवत = टपकाता हुआ । सेद = पसीना । मकरन्द = पुष्परस । तर = नीचे । विरमाय = विश्राम करता हुआ अथवा रुकता हुआ । बटोही = पथिक । वाय = वायु ।

अर्थ—दक्षिण देश से वायु रूपी पथिक थका हुआ, फूलो के रस की बूँद रूपी पसीना टपकाता हुआ, प्रत्येक वृक्ष के नीचे विश्राम करता हुआ चला आ रहा है ।

पथिक पसीने से तर होता है और थकान के कारण रुक-रुक कर धीरे-धीरे चलता है । यह दक्षिण पवन मकरन्द विन्दुओ से तर है और रुक-रुक कर धीरे-धीरे चल रहा है । बिहारी ने इस दोहे मे 'वाय' शब्द का प्रयोग पुल्लिग

बहुत मनोहारी नही बन पडा।

अलकार—रूपक।

प्रसंग—वसन्त के पुष्पित पलाशो का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

फिरि घरको नूतन पथिक, चले चकित चित भागि।
फूल्यौ देखि पलास बन, समुहे समुझि दवागि ॥५७९॥

नूतन = नये-नये अर्थात् जो पहली बार यात्रा के लिए चले थे। चकित चित = विस्मित होकर। पलाश = ढाक। दवागि = दावानल। समुहे = सामने।

अर्थ—नये-नये पथिक (अर्थात् पहली वार यात्रा के लिए निकले पथिक) थोडी दूर जाकर ही विस्मित होकर वापस घर की ओर भाग खडे हुए। उन्होने सामने ढाक के खिले हुए जगल को देखा और समझा कि जँगल मे आग लगी हुई है, इसलिए वे भयभीत होकर घर लौट गये।

अलंकार—भ्रान्ति

प्रसग—कवि वसन्त की वायु की तुलना नव-विवाहिता स्त्री से करते हुए कह रहा है—

लपटी पुहुप-पराग पट, सनी सेद मकरन्द।
आवति नारि नवौढ़ लौं, सुखद वाय गति मद ॥५८०॥

लपटी = लिपटी हुई। पुहुप=पुष्प। सेद = पसीना। नवोढ = नव-विवाहिता। वाय = वायु।

अर्थ—पुष्पो के पराग रूपी कपडो मे लिपटी हुई और पुष्परस रूपी पसीने से तर सुखद वायु मन्द-मन्द गति से नव-विवाहिता स्त्री के समान चली आ रही है।

अलकार—पूर्णोपमा और रूपक।

ग्रीष्म

प्रसंग—ग्रीष्म के सम्बन्ध मे कवि कह रहा है—

नाहिन ये पावक प्रबल, लुवैं चलत चहूँपास।
मानहु विरह वसन्त के, ग्रीषम लेत उसास ॥५८१॥

कर वृक्षो और प्राणियो के नीचे ही आ गई है।

अलकार—अत्युक्ति।

प्रसग—ग्रीष्म ऋतु मे मध्य रात्रि के उपरान्त चलने वाली वायु के सम्बन्ध मे कवि कह रहा है—

रही रुकी क्यो हूं सुचलि, अधिक राति पधारि।
हरति ताप सब द्यौस को, उर लगि यारि बयारि॥५८४॥

सु=वह। चलि=चल कर। आधिक=लगभग आधी। द्यौस=दिन। यारि=प्रियतम, यार का स्त्रीलिंग। बयारि=वायु।

अर्थ—सारे दिन चाहे किसी लिए भी क्यो न रुकी रही हो, परन्तु लगभग आधी रात के समय आकर प्रियतम रूपी वायु हृदय ने लग कर दिन का सारा ताप अर्थात् गरमी को दूर को देती है।

प्रियतमा और वायु दोनो ही हृदय से लग कर ताप का हरण करती हैं।

अलकार—रूपक और लाटानुप्रास।

वर्षा

प्रसग—वर्षा ऋतु बरसने वाले बादलो के सम्बन्ध मे कवि कह रहा है—

तिय तरसौंहैं मन किये, करि सरसौंहैं नेह।
धर परसौंहैं ह्वै रहे, झर बरसौंहैं नेह॥५८५॥

तिय=स्त्री। तरसौंहैं=ललायित। सरसौंहै=प्रेम से पूर्ण। परसौंहैं=छूते हुए। झर=झडी।

अर्थ—इस समय ये झडी लगा कर वर्षा करने वाले बादल इतने नीचे झुक आये हैं कि ऐसा लगता है कि जैसे ये धरा अर्थात् पृथ्वी को ही छू लेंगे। इस वर्षा काल ने पुरुषो के मन को प्रेम से रसपूर्ण करके स्त्रियो के लिये लालायित बना दिया है।

अलकार—अनुप्रास।

प्रसग—वर्षा ऋतु के अन्धकार का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

पावस निसि अंधियार में, रह्यो भेद नहिं आन।
राति द्यौस जान्यो परत, लखि चकई चकवान॥५८६॥

प्रसग—विरहिणी नायिका चाँदनी रात के सम्बन्ध मे अपनी सखी से कह रही है—

जौन्ह नहीं यह तम वहै, किये जु जगत निकेत।
होत उदय ससिके भयो, मानो ससहरि सेत ॥५८८॥

जोन्ह=चाँदनी। तम=अँधेरा। जगत=ससार। निकेत=घर। ससि हरि=डर कर। सेत=सफेद।

अर्थ—यह चाँदनी नही है, अपितु यह तो वही अँधेरा है, जिसने सारे ससार को अपना घर बनाया हुआ है (अर्थात् जो सारे ससार मे छाया हुआ है), अन्तर केवल इतना है कि इस समय चन्द्रमा के निकल आने के कारण यह अँधेरा डर के मारे सफेद पड गया है।

अत्यधिक भय लगने पर चेहरा रक्तहीन या सफेद हो जाता है।

अलकार—उत्प्रेक्षा और अपह्नुति।

प्रसंग—अगहन मास का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

कियो सबै जग काम-बस, जीते जिते अजेय।
कुसुमसरहि सर-धनुष कर अगहन गहन न देय ॥५८९॥

काम वस=काम के वशीभूत। जिते = जो-जो। कुसुमसरहि = कामदेव को। सर धनुष = धनुप वाण। गहन न देय = लेने नही देता।

अर्थ—अगहन महीना ऐसा है कि हमने सारे ससार को कामदेव के वश कर दिया है और इस प्रकार जो-जो भी लोग अजेय थे, उन सबको जीत लिया है। यह मास कामदेव को अपना धनुप वाण उठाने का अवसर ही नही देता।

भाव यह है कि अगहन मास मे लोगो मे काम-भावना वैसे ही इतनी बढ जाती है कि कामदेव को अपना धनुप वाण उठाने की ही आवश्यकता नही पडती।

अलकार—निरुक्ति, यमक और काव्यलिंग।

हेमन्त

प्रसग—हेमन्त ऋतु मे सूर्य का तेज कम हो जाता है। इसी के सम्बन्ध कवि उत्प्रेक्षा करते हुए कहता है—

अर्थ—ज्यो-ज्यो हेमन्त मे रात बडी होती है, त्यो-त्यो घर-घर मे सब लोगो का सुख बढता है; केवल चकवा-चकवी का दुःख अधिक होता है।

सर्दियो मे सब लोग सुखी होते है, परन्तु क्योकि चकवा-चकवी रात्रि मे एक दूसरे से वियुक्त रहते है, इसलिए राते लम्बी होने के कारण उनका दुःख अधिक हो जाता है।

अलकार—दीपक।

प्रसग—हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

मिलि विहरत बिछुरत मरत, दम्पति अति रसलीन।
नूतन बिधि हेमन्त ऋतु, जगत जुराफा कीन ॥५६३॥

मिलि = साथ मिल कर। विहरत विहार करते है। दम्पति = पति-पत्नी। रसलीन = प्रेम के आनन्द मे मग्न। नूतन विधि = नये विधाता। जुराफा = एक पशु का नाम, जो अफ्रीका मे होता है। ऊँट जैसा होता है और कहा जाता है कि यह सदा जोड़े मे रहता है। जोडे के साथी से वियोग हो जाने पर दूसरा साथी भी मर जाता है। कुछ टीकाकार ने जुराफा को जोडे मे रहने वाला एक पक्षी भी बताया है।

अर्थ—इस हेमन्त ऋतु मे पति-पत्नी प्रेम के आनन्द मे मग्न होकर विहार करते हैं और एक दूसरे से विछुडते ही मरने को हो जाते है (अर्थात् बहुत कष्ट पाते हैं)। हेमन्त रूपी इस नये विधाता अर्थात् ब्रह्मा ने सारे ससार को जुराफा बना दिया है।

अलकार—श्लेष और रूपक।

शिशिर

प्रसग—शिशिर ऋतु के सम्बन्ध मे कवि कह रहा है—

रहि न सकी सब जगत में, सिसिर सीत के त्रास।
गरमी भजि गढवै भई, तिय-कुच अचल मवास ॥५६४॥

सिसिर सीत = शिशिर ऋतु की सर्दी। त्रास = डर। भजि = भाग कर। गढवै भई—दुर्ग मे स्थित हो गई। तिय कुच = स्त्रियों के उरोज। अचल = पर्वत। मवास = दुर्गम स्थान।

अर्थ—उधर दृष्टि लगा कर देखो। दूज के चन्द्रमा की कला कैसी सुन्दर दिखाई पड़ती है ? मानो आकाश रूपी अगस्त्य के वृक्ष पर एक ही कली खिली हुई हो।

अलकार—उत्प्रेक्षा। कोई-कोई इस दोहे का अर्थ उस नायिका की ओर भी लगाते है जो दूज के चन्द्रमा के समान नयी और सुन्दर है। उनकी दृष्टि से इसमे पर्यायोक्ति अलकार भी है।

ग्रामीणाओं का वर्णन

प्रसग—कोई दूती नायक से किसी ग्रामीणा नायिका का वर्णन करते हुए कह रही है—

पहुला हार हिये लसै, सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरी खरी, खरे उरोजनि बाल॥५६७॥

पहुला = एक फूल, कुमुद। खरी खरी = खडी हुई। खरे उरोजनि = जिसके उरोज खूब उभरे हुए है।

अर्थ—वह खूब उभरे हुए उरोजो वाली बाला खडी हुई अपना खेत रखा (रखवाली कर) रही है। कुसुम के फूलो का हार उसके हृदय पर शोभायमान है और सन के के फूलो की बिन्दी उसने अपने माथे पर लगाई हुई है।

अलकार—देहरी दीपक और स्वभावोक्ति।

प्रसग—कातने वाली स्त्री का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

ज्यो कर त्यो चुहुँटी चलै, ज्यौं चुहुँटी त्यो नारि।
छवि सौं गति सी लै चलै, चातुरि कातनिहारि॥५६८॥

चुहुँटी = चुटकी, पूनियो को पकडने वाली उगलियाँ। नारि = गर्दन, नाड। छवि सौं = अपने सौदर्य के द्वारा। चातुरी = प्रवीण।

अर्थ—जिस रीति से इस कातने वाली का हाथ चल रहा है, उसी रीति से उसकी चुटकी भी चल रही है और जिस क्रम से उसकी चुटकी चलती है,

देवर-भाभी

प्रसंग—नायिका के शरीर पर कुछ ददोरे से पड गये है। उनका रहस्य बताते हुए एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

देवर फूल हने जु हठि, उठे हरषि अग फूल ।
हँसी, करत औषधि सखिनु देह-ददोरन भूलि ॥६०१॥

हने=मारे। हठि=हठपूर्वक। हरषि=हर्षित होकर। हसि = हँस पडी। देह ददोरन भूलि=देह पर पडे हुए ददोरो के भ्रम मे।

अर्थ—देवर ने हठपूर्वक भाभी को फूल फेक-फेंक कर मारे है। उसके कारण आनन्द से भाभी के अग-प्रत्यग फूल उठे है। सखियाँ यह समझ कर कि उसकी देह पर ददोरे पड गये है उसकी चिकित्सा करने लगी, तो भाभी हँस पडी।

यहाँ देवर और भाभी मे गुप्त प्रेम है। शरीर पर चोट लगने या किसी कीडे के काटने पर जो सूजन आ जाती है, उसे ददोरे पडना कहते है।

अलकार—भ्रम।

प्रसंग—देवर से गुप्त प्रेम करने वाली नायिका से कोई उसकी वटी आयु की सखी पूछ रही है—

और सबै हरखि फिरै, गावत भरी उछाह ।
तुही बहू बिलखी फिरै, क्यो देवर के व्याह ॥६०२॥

हरखी=प्रसन्न। उछाह भरी = उत्साह से युक्त। बिलखी फिरै = व्याकुल होकर फिर रही है।

अर्थ—क्यो री बहू, क्या बात है ? तेरे देवर के व्याह मे और सब स्त्रियाँ तो खूब प्रसन्न हो कर फिर रही है और उत्साह के साथ गीत गाती है, फिर एक तू ही इस व्याह मे क्यो दुखी हो रही है ?

अलंकार—उल्लास।

प्रसग—देवर ने अपनी भाभी से प्रेम याचना की है। उसी का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी कह रही है—

कहति न देवर की कुबत, कुलतिय कलह डराति ।
पजरगत मजार ढिग, सुक लौं सूकत जाति ॥६०३॥

अलकार—लेश ।

प्रसग—एक वैद्य जी जो स्वय पुंस्त्व शक्ति से रहित थे, किसी दूसरे धनी रोगी को वाजीकरण की औषधि दे रहे थे । उस समय वैद्य जी की पत्नी उन्हे देख कर भेदभरी हँसी हँसने लगी । इसी का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

बहु धन लै अहिसान कै, पारो देत सराहि ।
बैद-बधू हँसि भेद सो, रही नाह-मुख चाहि ॥६०५॥

अहिसान कै=अहसान जताते हुए । पारो=पारद, वाजीकरण औषधियों मे पारे का प्रयोग होता है । सराहि=प्रशसा कर । भेद सो = मर्मयुक्त । चाहि=देख कर ।

अर्थ—वैद्य जी बहुत-सा धन ले कर और बहुत अहसान जताते हुए दवाई की बहुत प्रशसा करके किसी रोगी को पारद की भस्म दे रहे थे । तब वैद्य जी की पत्नी पति के मुख को देख कर मर्मभरी हँसी हँसने लगी ।

मर्मभरी हँसी इस कारण कि वैद्य जी दूसरे को तो दवाई देते हुए उस दवाई की प्रशसा कर रहे है और स्वय वही दवाई खाकर पुंस्त्व शक्ति प्राप्त नही कर लेते ।

अलकार—सूक्ष्म ।

प्रसग—कोई कथा सुनाने वाले मिश्र जी कथा सुनाते हुए परस्त्रीगमन के दोष बता रहे थे । उस समय का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

परतिय दोष पुरान सुनि, लखी मुलकि सुखदानि ।
कसकरि राखी मिश्र हू, मुँह आई मुसकानि ॥६०६॥

पर तिय=पर स्त्री । मुलकि=हँस कर । सुखदानि=सुख देने वाली । कस करि राखी=दबा कर रखी । मिश्र=कथा सुनाने वाले पडित, व्यास । मुह आई=मुँह तक आई हुई अर्थात् प्रकट ही होने वाली ।

अर्थ—कथा सुनाने वाले मिश्र जी को पुराण की कथा मे परस्त्रीगमन के दोष बताते हुए सुन कर उनको सुख देने वाली परकीया नायिका ने मुस्करा कर उनकी ओर देखा । उसे मुस्कराते देख कर मिश्र जी के मुँह पर भी मुस्कान आने तो हुई, परन्तु उन्होने उसे यत्नपूर्वक दबा कर रखा ।

जोडेगी तो उनके उरोज नगे होकर दीखने लगेंगे। कृष्ण की इस शरारत को समझ कर गोपियो का क्रोध हँसी मे परिवर्तित हो गया।

अलकार—पर्याय।

प्रसग—सखी नायिका को सान्त्वना देते हुए कह रही है—

सन सूको बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौं, घर धरहरि हिय नारि ॥६०६॥

सूको=सूख गया। बनौ=कपास का खेत। ऊखौ=गन्ना। अरहरि=अरहर। धरहरि=धीरज।

अर्थ—यह ठीक है कि सन सूख चुका है। यह भी ठीक है कि कपास का खेत भी कट चुका है और गन्ना भी उखाड़ लिया गया है। परन्तु तू मन मे धीरज रख क्योकि अभी भी अरहर तो हरी ही खडी हुई है।

सन, कपास और ऊख के खेत उस ग्रामीण प्रदेश मे नायक और नायिका के प्रेम मिलन के स्थल थे। उनके कट जाने पर नायिका को यह चिन्ता हुई कि वे अब कहाँ मिल सकेंगे। सखी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि अरहर के खेत तो अभी बाकी हैं वे मिलन के लिए उपयुक्त स्थल रहेगे।

अलंकार—काव्यलिंग।

भक्ति के दोहे

प्रसग—यह दोहा शृ गार और शान्त दोनो रसो मे ठीक अर्थ देता है एक अर्थ मे नायिका नायक के सम्बन्ध मे सखी से कह रही है और दूसरी ओर भक्त भगवान के सम्बन्ध मे कह रहा है। यह श्लेष मुख्यतया 'श्याम' शब्द के कारण हुआ है जिसका अर्थ है कृष्ण। एक ओर कृष्ण भक्ति के पात्र है, दूसरी ओर वह रीति काल मे शृ गार के आश्रय या आलम्बन भी मान लिये गये है—

अर्थ (भक्तिपरक)—हे मन तू! कृष्ण से प्रेम कर। उनकी मेघ के समान श्यामल छवि को देखा कर। उन्ही कुंजो मे विहार करने काले कृष्ण के साथ विहार किया कर और जिन्होने गोवर्धन पर्वत को धारण किया था, उन कृष्ण को अपने हृदय मे धारण कर।

अर्थ (शृंगारपरक)—सखी नायिका से कहती है —हे नायिका, उन काले बादलो को देख और अब मन मोहन अर्थात् नायक से प्रेम कर। वह कुंजो मे विहार करने वाला है; तू उसके साथ विहार कर और पर्वत के समान उरोजो को धारण करने वाले अपने वक्षस्थल पर उसे धारण कर।

अलकार—परिकरांकुर और श्लेष।

प्रसग—इस दोहे का अर्थ भक्ति और शृंगार दोनो ओर लगाया जा सकता है। सखी नायिका से कह रही है—

दियो सो सीस चढाय लै, आछी भाँति अएरि।
जापै सुख चाहत लियो, ताके दुखहिं न फेरि ॥६१३॥

अएरि=अंगीकार कर, स्वीकार कर।

अर्थ—उस नायक ने सुख या दुख जो भी कुछ तुझे दिया है, उसे भली-भाँति स्वीकार कर। जिससे तू सुख लेना चाहती है, उसके दिये हुए इस विरह दुख को अस्वीकार मत कर।

इसका भक्तिपरक अर्थ यह होगा कि कोई व्यक्ति किसी कष्ट मे पडे हुए व्यक्ति को धीरज बँधाते हुए कहता है —भगवान के दिये हुए सुख या दुख को भली-भाँति स्वीकार कर। जिस परमात्मा से तू सुख लेना चाहता है, उसके दिये हुए दुख को बुरा मान कर वापस मत लौटा।

अलकार—विचित्र।

प्रसग—ससार के माया जाल मे फसे हुए मनुष्य रूपी हिरन को लक्ष्य करके कवि कह रहा है—

को छूट्यो यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यो सुरझि भज्यो चहत, त्यो त्यो उरझत जात ॥६१४॥

जाल=पाश। कुरग=हिरन। सुरझि=सुलझ कर। उरझत जात= और उलझता जाता है। भज्यो चहत = भागना चाहता है।

हुआ है, हरि अर्थात् भगवान मे अपना मन लगा। अब भी तू विषयो की लालसा को त्याग दे और नरहरि अर्थात् नृसिंह रूप धारी विष्णु के गुणो का गान कर।

यहाँ चमत्कार यह है कि यमराज हाथी है। उससे बचने के लिए हरि अर्थात् सिंह का ध्यान करना लाभदायक हो सकता है।

अलंकार—रूपक और श्लेष।

प्रसग—कवि की विचारात्मक उक्ति है—

जगत जनायौ जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहि।
ज्यो आखिन सब देखिये, आखि न देखि जाहि ॥६१७॥

जनायो=ज्ञान कराया। जान्यो=जाना।

अर्थ—जिस हरि अर्थात् परमात्मा ने हमे सारे जगत का ज्ञान कराया, उसी को हम नही जान पाये। जैसे आँखो से सारे ससार को देखा जाता है, परन्तु मनुष्य स्वय अपनी आँख को नही देख सकता—

अलंकार—उदाहरण।

प्रसंग—बाहरी पाखड वृथा है। भगवान भाव से प्रसन्न होता है, पाखड से नही। इस आशय को कवि इस दोहे मे व्यक्त करता है—

जप, माला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काचे नाचै वृथा, साचे राचे राम ॥६१८॥

छापा=वैष्णव लोग शरीर पर तरह-तरह की छाप लगा लेते है, अथवा ऐसे वस्त्र पहनते है, जिन पर 'राम राम' इत्यादि छपा रहता है। सरै=पूरा होता निभता। काचे=कच्चे। राचे=प्रसन्न होते हैं।

अर्थ—जप करना, माला पहनना, छापा और तिलक लगाना उन सबने तेरा एक काम भी पूरा नही होगा। जब तक तेरा मन कच्चा है (भक्ति के लिए परिपक्व नही हुआ) तब तक तेरा यह सारा नाच अर्थात् पाखड व्यर्थ है। क्योंकि राम अर्थात् भगवान् तो सच्ची भावना से रीझते हैं।

अलकार—परिसख्या और अनुप्रास।

प्रसंग—वेदान्त के सिद्धान्त को बिहारी ने इस सोरठे मे रखा है—

रहते उसमे आगन्तुक प्रवेश कैसे कर सकता है ?

अलकार—रूपक और अनुप्रास ।

प्रसग—मोक्ष प्राप्ति मे स्त्री को बाधा बताते हुए कवि कह रहा है—

या भव पारावार को, उलघि पार को जाय ।
तिय-छबि-छाया-ग्राहनी, गहै बीच ही जाय ॥६२२॥

भव=ससार । पारावार=समुद्र । उलघि=लाँघ कर । तिय छवि=नारी का सौन्दर्य । छाया ग्राहनी=एक राक्षसी, जो आकाश मे उडने वाले पक्षियो की समुद्र पर पडने वाली छाया को पकड उन्हें अपने वश मे कर लेती थी । 'राम-चरितमानस' मे तुलसीदास ने लिखा है कि इस राक्षसी ने हनुमान को उस समय पकडने की कोशिश की थी, जब वह आकाश मार्ग से लका जा रहा था ।

अर्थ—इस ससार रूपी सागर को लाँघ कर कोई पार कैसे पहुँच सकता है, क्योकि स्त्री की छवि रूपी छाया ग्राहिणी राक्षसी उसे आकर बीच मे ही पकड लेती है ।

भाव यह है कि यदि कोई मनुष्य वैराग्य और साधना द्वारा ससार से मुक्ति पाने का यत्न करने लगता है, तो स्त्रियो के सौन्दर्य का आकर्षण उसे अपनी ओर खीचता है और उसकी साधना को विफल कर देता है ।

अलंकार—रूपक ।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

भजन कह्यौ जासो भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार ।
दूर भजन जासौं कह्यौ, सो तू भज्यौ गँवार ॥६२३॥

भजन = जप करना, ध्यान करना । भजन = भागना

अर्थ—अरे गवार, तुझसे जिसका भजन करने को कहा था, उससे तो तू दूर भाग लिया और उसका भजन तूने एक बार भी नही किया, और जिससे दूर भागने के लिए कहा था, उसका तू निरन्तर भजन अर्थात् सेवन करता रहा ।

ईश्वर का भजन करने को कहा था, वह तो किया नही, विषयो से दूर भागने को कहा था, तो उनका सेवन करता रहा ।

पाहन नाव = पत्थर की नाव। पयोधि = समुद्र।

अर्थ—अब किसी अन्य उपाय को करने का समय नही है। अब तो तू किसी प्रकार उस नाविक को ढूँढ, जिसने लोगो को पत्थर की नाव पर चढा कर समुद्र के पार पहुँचा दिया था।

वानर सेना को लका ले जाने के लिए रामचन्द्र ने पानी पर तैरने वाले पत्थरो का जो पुल बनाया था, उसी की ओर सकेत है।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

प्रसग—ईश्वर दम्भ से दूर भागता है और विनय से वशीभूत होता है। इस आशय की बिहारी की यह उक्ति है—

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन काल।
प्रकटत निगुन निकट ह्वै, चंग रग गोपाल ॥६२७॥

भजत = भागता है। पीठि दे = मुँह मोड कर। गुन = (१) डोरी (२) अच्छाइयाँ। विस्तारन = फैलाना या बढाना। चग रग = पतग की भाँति।

अर्थ—गोपाल अर्थात् कृष्ण अर्थात् भगवान पतग के समान है। जब कोई अपने गुण बढा-चढा कर बताने लगता है, तब वह भगवान उसी प्रकार मुँह मोडकर दूर भाग जाता है जैसे डोरी बढाने से पतग दूर चली जाती है। जब कोई अपने आपको विनयपूर्वक गुणहीन बताने लगता है, तब प्रभु उसी प्रकार निकट आ जाता है, जैसे निर्गुण होने पर अर्थात् डोरी को समेट लेने पर पतग पास आ जाती है।

अलकार—श्लेष और रूपक।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

ब्रजवासिन को उचित धन, जो धन रुचि तन कोय।
सु चित न आयो सुचितई कहौ कहाँ ते होय ॥६२८॥

उचित = श्रेष्ठ। घन रुचि = मेघ के समान कान्ति वाला। सु = वह। सुचितई = सुचित्तता, मन की शान्ति।

अर्थ—जिसका शरीर मेघ की कान्ति वाला (अर्थात् साँवला है), वह ब्रजवासियो का श्रेष्ठ धन जब तक चित्त मे नही आया (अर्थात् उसका ध्यान

वह दूसरों की नकल क्यो करेगा ?

अलकार—लोकोक्ति और उत्प्रेक्षा ।

प्रसग—भक्त की भगवान के प्रति उक्ति है—

कौन भाँति रहि है विरद, अव देखिबी मुरारि ।
बीधे मों सो आन कै, गीधे गीधहिं तारि ॥६३१॥

विरद=गौरव या यश । देखिवी=देखूँगा । मुरारि = कृष्ण । बीधे= उलझे हो । गीधे = ललचाये हुए । गीधहिं = गिद्ध को, जटायु से आशय है ।

अर्थ—हे कृष्ण, मैं अव देखूँगा कि तुम्हारा यश किस भाँति वना रह पाता है । तुम गिद्ध अर्थात् जटायु का उद्धार करके लालच मे आ गये हो (अर्थात् तुमने उद्धार करना वहुत सरल समझ लिया है) । अव तुम मुझसे आकर उलझे हो । अव मैं देखूँगा कि तुम मेरा उद्धार किस प्रकार कर पाते हो ?

भाव यह है कि गिद्ध यद्यपि वडा घृणित प्राणी है, पर उसका उद्धार करना फिर भी सरल था । मेरा उद्धार कर पाना बहुत कठिन है । अगर मेरा उद्धार करलो तो जानूँ ।

अलकार—अनुप्रास और काकुवक्रोक्ति ।

प्रसग—भक्त की भगवान के प्रति उक्ति है—

बधु भये का दीन के, को तार्‌यौ रघुराय ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे विरद बुलाय ॥६३२॥

रघुराय=रामचन्द्र । तूठे=प्रसन्न । विरद=यश । बुलाय=कहलवा कर ।

अर्थ—हे रामचन्द्र जी, तुम अव तक किस दीन के वन्धु वने ? और तुमने अव तक किसका उद्धार किया ? तुम यो ही अपनी झूठी वडाइयाँ करवा कर खुश फिर रहे हो ।

भाव यह है कि मैं तो वहुत दीन हूँ और दुखी हूँ । मैं घोर दुर्दशा मे पडा हुआ हूँ । जव तक मेरा उद्धार नही होता, तव तक मैं तो यही समझूँगा कि तुम्हारा सारा विरद मिथ्या है । मेरा उद्धार कर दो, तो मैं तुम्हारे यश को सच्चा समझूँ ।

अलंकार—वीप्सा और काकुवक्रोक्ति।

प्रसंग—भगवान के प्रति भक्त की उक्ति है—

थोरे ई गुन रीझते, बिसराई यह बानि।

तुम हू कान्ह मनो भये, आज कालि के दानि ॥६३३॥

रीझते = प्रसन्न होते थे। बिसराई = भुला दी। बानि = आदत। आज कालि के दानि — आज कल के दानी।

अर्थ—हे कृष्ण, पहले तुम भक्तों के थोड़े से ही गुणों पर रीझ जाते थे। लगता है कि अब तुमने अपनी वह आदत भुला दी है। अब तो तुम भी आज कल के से दानी बन गये हो।

आजकल के दानियों की विशेषता बताते हुए लाला भगवानदीन जी ने लिखा है "वे पहले तो कठिनता से रीझते हैं, और यदि रीझें भी तो 'वाह-वाह' से ही रीझ जाते हैं, और यदि कुछ देना ही पड़े तो बरसों टाल-मटोल करते हैं।"

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—भक्त भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहा है—

कीजै चित सोई तरौं, जिहिं पतितन के साथ।

मेरे गुन अवगुन-गनन, गनौ गोपीनाथ ॥६३४॥

कीजै चित = मन में धारण कीजिये। तरौं = तर जाऊँ। जिहिं = जिससे। अवगुन-गनन = अवगुणों का समूह। न गनौ — गणिये नहीं, ध्यान न दीजिये।

अर्थ—हे गोपीनाथ अर्थात् कृष्ण, मेरे प्रति मन में वही बात [illegible] मेरे गुणों और अवगुणों के समूह [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जो अनेक पतितन दियो, मोहूँ दिजै मोष।
तौ बांधौ अपने गुनन, जो बांधे ही तोष ॥६३५॥

मोष=मोक्ष, ससार के कष्टो से छुटकारा। तोष=सन्तोष, खुशी। गुनन=(१) गुणो द्वारा (२) रस्सी द्वारा।

अर्थ—आप मुझे वही मोक्ष प्रदान कीजिये, जो आपने अनेक पतितो को प्रदान किया है। और यदि आपको इसी बात में सन्तोष है कि आप मुझे बन्धन मे रखें, तो अपने गुण-कीर्तन की रस्सी द्वारा बाँध कर रखिये।

यदि आप मुझे बन्धन मे रखना चाहते हैं तो ऐसा कीजिये कि मैं आपके गुण-कीर्तन के बन्धन मे पडा रहूँ और बन्धन मे नही रखना चाहते तो जैसे अनगिनत पतितो पर कृपा करके आपने उन्हे मोक्ष दिया, उस तरह मुझे भी भव-बन्धन से मुक्ति दिलाइये।

अलंकार—श्लेष और आक्षेप।

प्रसंग—भक्त कृष्ण के प्रति अनन्य श्रद्धा प्रकट करते हुए कहता है—

कोऊ कोटिक सग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सपति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार ॥६३६॥

कोटिक=करोड़ो। सग्रहौ = इकठ्ठा करे। यदुपति = कृष्ण। विपति विदारन हार=कष्ट को नष्ट करने वाले।

अर्थ—चाहे कोई करोडो रुपया इकट्ठा करे, चाहे कोई लाख रुपया इकट्ठा करे और चाहे कोई हजारो रुपये जमा करे, मेरी तो सम्पत्ति केवल कृष्ण है जो सर्वदा सब कष्टो को नष्ट करते है।

अलकार—हेतु। परन्तु इस दोहे मे पतत्प्रकर्ष दोष है। पहले करोड कह कर फिर लाख और फिर हजार कहना जँचता नही।

प्रसग—भक्त भगवान के सम्मुख हठ और विनय करते हुए कह रहा है—

ज्यौं ह्वै हो त्यौं होहुँगो, हा हरि अपनी चाल।
हठ न करो, अति कठिन है, मो तारिबो गुपाल ॥६३७॥

चाल=रग-ढग। हठ=जिद। तारिबो=उद्धार करना।

अर्थ—हे हरि अर्थात् कृष्ण, मैं तो जैसा हूँ, वैसा ही रहूँगा। मैं अपनी

बडप्पन की लज्जा रखनी ही होगी।

भाव यह है कि मेरा तो बडप्पन या बुराई जो भी है, वह यह है कि मैं इतना बुरा हूँ कि मेरा उद्धार कोई कर नही सकता, और तुम्हारा यश इस बात के लिए है कि तुम बडे से बडे पतित का भी उद्धार कर देते हो। अब देखना यह है कि हम दोनों मे से कौन अपनी लाज बचा पाता है।

इस प्रकार भक्त भगवान को उकसा कर अपना उद्धार करवा लेना चाहता है।

अलंकार—सम।

प्रसंग—भक्त भगवान से कह रहा है—

> निज करनी सकुचौंहि कत, सकुचावत यहि चाल।
> मोहूँ से अति विमुख त्यो, सनमुख रहि गोपाल॥६४०॥

करनी=करतूत। सकुचौंहि=लज्जित हूँ। सकुचावत=लज्जित करते हो। यहि चाल=इस ढग से। विमुख=जो दूसरी ओर मुँह किये हुए है। सम्मुख=सामने।

अर्थ—हे गोपाल अर्थात् कृष्ण! मैं तो अपनी करतूतो से अर्थात् कारनामो मे पहले ही बहुत लज्जित हूँ, अब तुम मुझे इस रीति से और अधिक क्यो लज्जित करते हो कि मैं जो तुमसे सदा विमुख रहता हूँ, उसके भी तुम सम्मुख बने रहते हो।

भगवान सर्वव्यापी हैं। फिर जो उससे विमुख है, उन पर भी करुणा करके वह उनके सम्मुख रहता है, जिससे वे उसकी ओर झुक सकें। यहाँ भक्त इतना निर्लज्ज नही हुआ है कि भगवान को अपने सम्मुख देख कर भी अपनी बुरी करतूतो पर लज्जित न हो।

अलकार—विषम।

प्रसग—सम्पत्ति की तुलना मे आत्म-सम्मान को अधिक महत्व देते हुए कवि कह रहा है—

> तो अनेक अवगुन भरी, चाहै याहि बलाय।
> जौ पति सम्पत्ति हू बिना, जदुपति राखे जाय॥६४१॥

करतूतों पर भली-भांति (अच्छे और बुरे का निर्णय वाली दृष्टि) दृष्टि डाल ली, तब तो मेरी हालत बहुत ही भली बनेगी (अर्थात् बहुत ही बुरी होगी)।

भाव यह है कि मैंने बहुत बुरे काम किये है। यदि उनका अच्छे बुरे का निर्णय करके मुझे फल मिलना हो, तो मेरी बहुत दुर्दशा होगी। मेरा उद्धार तो तभी हो सकता है जबकि तुम मेरी करतूतो को बहुत ध्यान से न देखो, यो ही सरसरी नजर से देख कर मुझ पर कृपा कर दो।

अलकार—वक्रोक्ति और अनुप्रास।

प्रसग—भगवान को ताना देते हुए भक्त कह रहा है—

समै पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरुण करुनाकरो, यहि कुपूत कलिकाल ॥६४४॥

समै=समय। प्रकृति=स्वभाव। चाल=रग-ढग। कपूत=दुष्ट। करुणाकरो=करुणामय भगवान भी।

अर्थ—जब समय बदलता है, तब सब वस्तुओ का स्वभाव भी पलट जाता है। ऐसा कौन है, जो उस काल मे अपना रग-ढग बदल ले? यह दुष्ट कलिकाल ऐसा आया है कि इसमे करुणा करने वाला भगवान भी अकरुण (अर्थात् निर्दय) हो गया है।

कवि का सकेत यह है कि यदि भगवान निष्ठुर न होते, तो वह मेरा उद्धार अवश्य कर देता।

अलकार—अर्थान्तरन्यास और विभावना।

प्रसग—विभिन्न मत-मतान्तरो के लोग परस्पर व्यर्थ ही विवाद करते है। वस्तुत सबका उपास्य भगवान एक ही है। इस समन्वयवादी विचार को व्यक्त करते हुए कवि कहता है—

अपने अपने मत लगे, बाद मचावत सौर।
ज्यों ज्यो सबही सेइबो, एकै नन्दकिशोर ॥६४५॥

मत = सम्प्रदाय। बाद = विवाद। सोर = कोलाहल। सेईबो = सेवा करनी है।

अर्थ—अपने-अपने सम्प्रदाय का समर्थन करने मे लगे हुए लोग व्यर्थ ही परस्पर विवाद करके कोलाहल करते है। वस्तुत. सब लोगो को जैसे-तैसे

अर्थात् अनर्थ नही करती ? इसमे बहुत से भीग जाते है, बहुत से दलदल मे फँस जाते है, बहुत से डूब जाते है और हजारो बह जाते है।

नदी के पक्ष मे तो भीगना, दलदल मे फसना, डूब जाना और बह जाना स्पष्ट ही है, परन्तु चढती हुई आयु के पक्ष मे इनका अर्थ विषय-विलास मे भीगना, उसमे फस जाना, उसमे डूब जाना या पूरी तरह उसमे बह जाना होगा।

अलंकार—दीपक।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

सोहत संग समान को, इह कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बने, काजर नैनन जोग ॥६४८॥

सग=साथ। जोगु=मेल, योग।

अर्थ—प्रत्येक वस्तु अपने साथ की वस्तुओ के साथ मिलकर ही शोभा देती है। सब लोग यही बात बताते है। देखिये, पान पीक से ओठो का मेल है और आँखो से काजल का मेल है।

भाव यह है कि अस्थान मे रखी गई वस्तु शोभा नही देती। लाल ओठ पान की पीक से सुशोभित होते है और काली आँखें काजल से।

अलकार—सम।

प्रसग—किसी अपात्र व्यक्ति के उच्च पद पर पहुँच जाने के सम्बन्ध मे कवि की अन्योक्ति है—

पाय तरुनि कुच उच्च पद, चिरमि ठग्यो सब गाँव।
छुटे ठौर रहिहै वहै, जु है मोल छबि नाव ॥६४९॥

तरुनि=तरुणी। कुच = उरोज। चिरमि=रत्ती, गुजी। ठौर=जगह। नाँव=नाम।

अर्थ—हे घुघची (रत्ती), तूने इस सुन्दरि के ऊँचे उरोजो पर स्थान पाकर सारे नगर को ठगा हुआ है (अर्थात् तूने भ्रम मे डाला हुआ है), परन्तु जब तेरा यह स्थान तुझसे छूट जायेगा (अर्थात् तू पदभ्रष्ट हो जायेगी) तब तेरा केवल उतना ही मूल्य, उतनी ही छवि और उतना ही नाम (अर्थात् यश) रह जायेगा, जिसकी कि तू वास्तव मे अधिकारिणी है।

आचरण करने मे ही बुद्धिमता है।

अलंकार—विकल्प।

प्रसग—प्रेम की चौगान खेल से तुलना करते हुए कवि कहता है—

सरस सुमिल चित तुरग की, करि करि अमित उठान।
गोय निबाहे जीतिये, प्रेम खेल चौगान ॥६५२॥

सरस = रसीला अथवा हृष्ट-पुष्ट। सुमिल=(१) प्रेममय (२) दूसरो के साथ मिल कर चलने वाला। तुरग=घोडा। उठान=(१) उमग (२) धावा। गोय = छिपा कर। गोय निबाहे=गेंद को निश्चित सीमा तक ले जाने से। चौगान=एक प्रकार का खेल, जो घोडो पर चढकर आजकल के पोलो की भाँति खेला जाता था।

अर्थ—प्रेम रूपी चौगान की खेल मे प्रेममय और मिलनसार चित्त रूपी घोडे द्वारा बहुत धावे करके प्रेम को गुप्त रख कर उसी प्रकार जीता जाता है, जैसे कि चौगान खेल मे गेंद को निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाया जाता है।

भाव यह है कि जिस प्रकार चौगान खेल मे गेंद को छिपाये रख कर पुष्ट घोडे पर चढ कर धावा करने से गेंद को निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाया जाता है, उसी प्रकार अनुरागी चित्त की अमित उमगो द्वारा प्रेम को गुप्त रख कर निबाहा जाता है और अन्त मे सफलता प्राप्त की जाती है।

अलकार—श्लेष और रूपक।

प्रसग—अपनी मिथ्या प्रशसा सुनकर प्रसन्न होने वाले सम्पन्न व्यक्ति के प्रति कवि की उक्ति है—

बहकि बडाई आपनी, कत राचति मतिभूल। 1573
बिन मधु मधुकर के हिये, गुडँ न गुडहर फूल ॥६५३॥

बहकि = भूल कर। राचति = प्रसन्न होता है। मति भूल=इस बात को भूल मत अथवा मूर्ख। गुडहर = जपा, एक फूल का नाम। हिये गुडँ न= मन को रुचता नही है।

अर्थ—अरे मतिभूल अर्थात् मूर्ख, तू अपनी प्रशसा के बहकावे मे आकर क्यो प्रसन्न हो रहा है? इस बात को समझले कि गुडहर (अर्थात् जपा) का फूल मधु न होने के कारण भ्रमर के मन को नही रुचता।

अर्थ—इस गवार लोगो के गाँव मे सुसस्कार या चतुराई का नाम सुन कर तो सब लोग ताली बजा-बजा कर हसते है। यहाँ आकर बसने वाले मुझ गुणी व्यक्ति का तो अपने गुणो का सारा अभिमान गल कर समाप्त हो गया।

भाव यह है कि गुणो का मान वही होता है, जहाँ गुणग्राहक लोग हो।

अलकार—हेतु।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

> वे न यहाँ नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
> फूल्यो अनफूल्यो भयो, गवई गाव गुलाब ॥६५७॥

नागर=गुण ग्राहक, नगर निवासी। आब=आभा, चमक। गवई= छोटा-सा गाँव।

अर्थ—अरे गुलाब, यहाँ वे बडे-बडे गुणग्राहक नगर निवासी नही है, जो तेरी आभा का आदर कर सकते है। यहाँ इस छोटे से गाँव मे तो तेरा खिलना न खिलने जैसा हो गया है।

किसी गुणी व्यक्ति का अगुण ग्राहक समाज मे आदर न होने की ओर सकेत है।

अलकार—अन्योक्ति।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

> कर ले, सूँघि, सराहि कँ, रहे सबँ गहि मौन।
> गंधी गघ गुलाब को, गवई गाहक कौन ॥६५८॥

सराहि कँ=प्रशसा करके। गहि मौन=चुप्पी साध कर। गधी=इत्र का व्यापारी। गन्ध=इत्र।

अर्थ—अरे गन्ध के व्यापारी, यहाँ इस छोटे से गाँव मे तो गाँव लोग इत्र को हाथ मे लेकर सूँघते है, उसकी प्रशसा करते है और फिर चुप्पी साध कर रह जाते है (अर्थात् खरीदने की बात नही करते)। भला इस गवई मे गुलाब के इतर का गाहक कौन होगा?

सकेत यह है कि ये लोग गुणी को गुणी जानते हुए भी उसका यथेष्ठ सत्कार नही करते।

किसी स्वामी के प्रति कवि की उक्ति है—

नहि पावस ऋतुराज यह, सुनि तरवर मति भूल।
अपत भये बिनु पाइहै, क्यों नव दल फल भूल ॥६६१॥

पावस=वर्षा ऋतु। ऋतुराज= वसन्त। अपत=(१) पत्तो से रहित, (२) अपमानित। दल=पत्ते।

अर्थ—अरे श्रेष्ठ वृक्ष, सुन। इस बात को भूल मत कि यह वर्षा ऋतु नही है, अपितु यह तो ऋतुओ का राजा वसन्त है। इसमे पत्र रहित हुए बिना (अथवा लज्जा उतरे बिना) तुम नयें पत्ते, फल और फूल कैसे प्राप्त कर सकते हो ?

वर्षा ऋतु मे तो वृक्ष यो ही हरे-भरे रहते है, परन्तु वसन्त ऋतु मे उनमे नये पत्ते और फूल निकलते है, परन्तु इससे पहले उनके सब पत्ते झड जाते है और वे नग्न से दिखाई पडने लगते है। कोई-कोई दानी अथवा राजा ऐसे होते है, जिनके यहाँ धन तो मिलता है, परन्तु उसके लिए पहले काफी अपमानित होना पडता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

प्रसग—यदि गुण को न समझने वाले लोग गुणी का आदर न करे, तो उससे गुणी की महत्ता कम नही होती। इस सम्बन्ध मे कवि की ,उक्ति है—

सीतलता रु सुगन्ध की महिमा घटि न मूर।
पीन सवारे जो तज्यौ, सोरा जानि कपूर ॥६६२॥

रु=और, अरु। महिमा=महत्व। मूर= मोल। पीनस वारे = वह रोगी, जिसे सुगन्ध या दुर्गन्ध का पता नही चलता। सोरा = शोरा।

अर्थ—यदि कोई पीनस का रोगी, जिसे गन्ध का पता नही चलता, कपूर को शोरा समझ कर छोड दे, तो उससे न तो कपूर की शीतलता और सुगन्ध का महत्व कम होगा और न उसका मोल ही कम होगा।

अलकार—अन्योक्ति।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

गर्मी । मतीरन सोधि=तरबूजो को ढूँढ कर । अमित=असीम । अगाध=गहरा । मारौ=मरने दो, परे करो । पयोधि=समुद्र ।

अर्थ—तुम ज्येष्ठ मास की अपनी तीव्र प्यास को तरबूज ढूँढ-ढूँढ कर मिटा लो । असीम, अपार और अथाह जल वाले मूर्ख समुद्र को मरने दो ।

भाव यह है कि तरबूज से प्यास बुझ जायेगी और समुद्र से नही बुझेगी । छोटे आदमी की सहायता से बहुत से काम बन जाते है, जबकि बडे आदमी से कोई काम नही निकल पाता ।

अलकार—अन्योक्ति ।

प्रसग—निरादर सह कर ऊँचे पदो पर रहने वाले लोगो के प्रति कवि की उक्ति है—

गहै न नैको गुन गरब, हँसै सकल संसार ।
कुच उचपद लालच रहै, गले परेहू हार ॥६६६॥

गहै=धारण करता । नैको=तनिक भी । उच पद=ऊँचे पद के । गले परेहू=गले पड कर भी ।

अर्थ—उसे अपने गुणो पर तनिक भी गर्व नही होता और सारा ससार उसकी हँसी उडाता है, फिर भी हार उरोज रूपी ऊँचे पद के लोभ मे गले पड़ कर भी रहता ही है ।

सारा ससार हँसी उडाता है, इसका कारण यह है कि उसका नाम ही हार है । हार पराजय का पर्याय है । जो ऊँचे पद पर बने रहना चाहते है, वे सब प्रकार का अपमान सहकर भी उच्च पद को छोडते नही ।

अलंकार—अन्योक्ति ।

प्रसग—गुणी और गुणहीन व्यक्ति किस प्रकार यथोचित स्थान प्राप्त करते है, इस सम्बन्ध मे कवि उक्ति है—

मूँड चढ़ाये हू रहैं, परौ पीठि कच भार ।
रहैं गरे परि राखिये, तऊ हिये पर हार ॥६६७॥

मूँड=सिर । कच भार=बालो का समूह अर्थात् वेणी । गरे परि रहैं=गले पड कर अर्थात् स्वामी के न चाहते हुए भी । हिये पर=छाती पर ।

अर्थ—बालो को चाहे सिर पर धारण किया जाये, परन्तु वे पीठ पर ही

वह ऊँचा स्थान नही पा सकता। उसका नीच स्वभाव छूटता नही और सद्-गुणी व्यक्ति बिना आडम्बर के भी उच्च पद प्राप्त करता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

प्रसंग—सबसे उपेक्षित रह कर भी फलने-फूलने वाले आक के पौधे को लेकर कवि अन्योक्ति करता है—

जाके एकौ एकहू, जग व्यवसाय न कोय।
सो निदाघ फूले फले, आक डहडहो होय ॥६७०॥

व्यवसाय=परिश्रम। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। डहडहो = हरा भरा।

अर्थ—जिस आक के पौधे के लिए सारे जगत मे एक भी व्यक्ति कुछ भी परिश्रम नही करता (अर्थात् जिसकी देख-रेख कोई नहीं करता), वह आक का पौधा भी ग्रीष्म ऋतु मे खूब फलता-फूलता है और हरा-भरा रहता है।

अन्य पौधो के लिए तो लोग लगाने, सीचने आदि का परिश्रम करते है और फिर भी वे पौधे ग्रीष्म में बहुत हरे-भरे नही रहते। जिसका कोई सहारा नही, उसकी नैया भी किसी न किसी तरह पार लग ही जाती है।

अलंकार—अन्योक्ति।

प्रसंग—कवि काव्य और सगीत के सम्बन्ध मे कह रहा है—

तंत्रीनाद कवित्तसर, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े, बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अग ॥६७१॥

तन्त्री नाद = वीणा का स्वर। कवित्त रस = काव्य का आनन्द। सरस राग=मधुर सगीत। रति रग = स्त्री के साथ प्रेम। अनबूडे = जो नही डूबे। बूडे = डूबे हुए। तिरे = तर गये।

अर्थ—मधुर वीणा वादन, काव्य के आनन्द, मधुर सगीत और स्त्री के प्रेम मे जो लोग भली-भाँति नही डूबे, वे तो समझो कि भवसागर मे डूब गये और जो इनमे अग-प्रत्यग समेत डूब गये, मानो ससार के कष्टो से तर गये।

अलंकार—विरोधाभास।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

अर्थ—बाल और उच्च कुल के व्यक्ति सम्पत्तिशाली होने पर एक ढग से ही नम्र होते हैं। इसके विपरीत उरोज और नीच पुरुष सम्पत्ति आने पर तो तन जाते हैं (अर्थात् उद्दड हो जाते हैं) और ऐश्वर्य क्षीण हो जाने पर नरम हो जाते है (अर्थात् ढीले पड जाते है)।

बाल कितने लम्बे होते है, उतने नीचे झुकते हैं। कुच अर्थात् उरोज यौवन काल मे तने रहते है और जब उनका वैभव का काल बीत जाता है, तब वे शिथिल पड जाते है।

अलकार—दीपक।

प्रसग—नायिका सखी से कह रही है—

> दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
> परति गाठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥६७५॥

उरझत=उलझते हैं। कुटुम टूटत=परिवार टूट जाते है या कुल की मर्यादा टूट जाती है। चतुर=रसिक। हिये=हृदय मे। दई=दैव।

अर्थ—हे भगवान, यह कैसी विचित्र रीति है कि आपस मे उलझते तो है नेत्र और टूटते है कुटुम्ब। इसी तरह इधर तो चतुरो (रसिको अर्थात् नायक-नायिका) के चित्त प्रीति के कारण परस्पर जुडते हैं और गाँठ दुर्जनो के हृदय मे पड जाती है।

भाव यह है कि जो चीज परस्पर टकराये, वही टूटनी चाहिए। इसी प्रकार जो वस्तुएँ परस्पर जुडे, उन्ही मे गाँठ पडनी चाहिए। परन्तु यहाँ वैचित्र्य यह है कि उलझने और जुडने का परिणाम कही अन्यत्र दिखाई पडता है।

अलकार—असगति।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

> न ये बिससिये लखि नये, दुर्जन दुसह सुभाय।
> आँटे परि प्रानन हरैं, काँटे लौं लगि पाय ॥६७६॥

बिससिये=विश्वास कीजिये। दुस्सह=असह्य। सुभाय=स्वभाव। आँटे=दबाव। लौं=समान। नये=नम्र, झुके हुए।

अर्थ—इन दुष्ट स्वभाव वाले दुर्जनों को नम्र देख कर इन पर विश्वास

ओछे=तुच्छ। कबहू न=कभी नही। सरत=पूरे होते है, निभते है। दमामो=दमामा, नगाडा। कहिं=कही।

अर्थ—छोटे व्यक्तियो से बडे लोगो के काम कभी निभ नही सकते। कही चूहे के चमडे से नगाडा मढा जा सकता है ?

अलकार—अर्थान्तरन्यास और वक्रोक्ति।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

कोटि जतन कोऊ करो, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊचौ चढ़ै, तऊ नीच को नीच ॥६८०॥

प्रकृतिहिं=स्वभाव में। बीच=अन्तर, फर्क।

अर्थ=कोई करोड यत्न क्यो न कर ले, किन्तु व्यक्ति के स्वभाव मे अन्तर नही पडता, जैसे नल के बल से पानी ऊपर तो चढ जाता है, परन्तु स्वभाव का नीच होने के कारण फिर नीचे की ओर ही बहने लगता है।

अलकार—अर्थान्तरन्यास।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

दुसह दुराज प्रजानि को, क्यों न बढ़ै अति दंद।
अधिक अँधेरो जग करै, मिलि मावस रवि चद ॥६८१॥

दुसह=प्रचड, बलवान। दुराज=दो राजाओ का राज्य। दन्द=कष्ट। मावस=अमावस्या।

अर्थ—एक ही स्थान पर दो बलवान राजाओ का राज्य हो जाने पर प्रजाओ का कष्ट क्यो न बढे ? (अर्थात् बढ ही जायेगा), क्योकि जब आकाश मे अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक साथ एक राशि मे आ जाते है, तब ससार मे बहुत ही अधेरा हो जाता है।

अलकार—दृष्टान्त।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोडिये, खोटे ग्रह जप दान ॥६८२॥

तन=शरीर। सनमान=आदर।

अर्थ—जिसके शरीर में बुराई का निवास होता है, अर्थात् जो बुरा होता है संसार में उसी का आदर होता है। भले ग्रह को तो लोग भला कह कर छोड़ देते हैं, परन्तु खोटे ग्रह की शान्ति के निमित्त लोग जप करते हैं और दान देते हैं।

भाव यह है कि खोटे ग्रह के निमित्त तो जप और दान किया जाता है, किन्तु भले ग्रहों के निमित्त कुछ नहीं किया जाता।

अलंकार—दृष्टान्त।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

> कहैं इहै सब स्रुति सुमृति, इहै सयाने लोग।
> तीन दबावत निसक हीं, पातक, राजा, रोग ॥६८३॥

शब्दार्थ—स्रुति=वेद। सुमृति=स्मृतियाँ। सयाने लोग=ज्ञानी व्यक्ति। निसक=असमर्थ, दुर्बल। पातक=पाप।

अर्थ—सब वेद और स्मृतियाँ और ज्ञानी लोग एक यही बात बताते हैं कि राजा, रोग और पाप ये तीनों दुर्बल को ही दबाते हैं।

भाव यह है कि दुर्बलता सबसे बड़ा पाप है। यदि कोई बलवान व्यक्ति पाप भी करता है, तो वह पाप नहीं माना जाता। इसी प्रकार राजा और रोग भी दुर्बल को ही दबाते हैं, बलवान को कोई नहीं दबा पाता।

अलंकार—[illegible]।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

> बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बडाई पाय।
> कहत धतूरे को कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥६८४॥

शब्दार्थ—[illegible]। कनक=सोना और धतूरा।

अर्थ—[illegible]

[illegible]

अलंकार—[illegible]

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

गुनी गुनी सब कोउ कहै, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यो कहूं तरु अर्क ते, अर्क समान उदोत ॥६८५॥

निगुनी = गुणहीन। गुणी = गुणवान। अर्क = (१) सूर्य, (२) आक का पौधा, मदार। उदोत = प्रकाश।

अर्थ—गुणहीन व्यक्ति को चाहे सब लोग गुणी कहने लगे, फिर भी वह गुणवान नही हो सकता। कही आक के पौधे से किसी ने सूर्य के समान प्रकाश निकलते देखा है ?

आक का नाम अर्क है, जो सूर्य का नाम भी है। आक को सब लोग अर्क कहते है, परन्तु इतने से ही उसमे से सूर्य के समाने प्रकाश नही निकलने लगता।

अलकार—अर्थान्तरन्यास और वक्रोक्ति।

प्रसग—सन्तोष की महिमा वताते हुए कवि कहता है—

जात जात वित होय है, ज्यो जिय में सतोष।
होत होत त्यो होय तौ, होय घरी में मोष ॥६८६॥

वित = धन। मोष = मोक्ष।

अर्थ—ज्यो-ज्यो धन हाथ से जाता है, तब जिस प्रकार मनुष्य मन को मार सन्तोष करता है, यदि वैसा ही सन्तोष वह उन समय कर सके जबकि धन वढ रहा होता है, तो उसे घडी भर मे ही मोक्ष मिल जाये।

जव धन जाता है, तो आदमी यह सोच कर सन्तोष करता है कि अपना क्या बस है, भगवान की शायद यही इच्छा थी। पर जव धन वढ रहा होता है, तब मनुष्य को सन्तोष नही रहता। उसे और अधिक धन पाने की 'हाय-हाय' लगी रहती है।

अलकार—सम्भावना।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होत सुगंध ॥६८८॥

सगति = साथ अथवा सत्सगति। सुमति = सुबुद्धि। धन्ध = चक्कर, धन्धा। मेलि = मिला कर।

जो चाहो चटक न घटे, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥६६०॥

चटक = चमक। मित्त मैलो न होय = मित्रता मे मलिनता न आये। राजस = रौब, हुकुम। रज = धूल। नेह = प्रेम।

अर्थ—यदि आप यह चाहते है कि मित्र के साथ मन मैला न हो और चमक कम न हो, तो स्नेह से चिकने चित पर रौब रूपी धूल का स्पर्श न होने दीजिए।

चिकनी वस्तु पर धूल छूने से उसकी चमक मारी जाती है और वह मैली हो जाती है। इसी प्रकार स्नेह युक्त हृदय के साथ जब हुकूमत या रौब छू जाता है, तो मन मे मलिनता आ जाती है (अर्थात् प्रेम जाता रहता है)।

अलकार—रूपक।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

अति अगाध अति औथरे, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाकि प्यास बुझाय ॥६६१॥

अगाध = गहरे। औथरे = उथले। सर = सरोवर। बाय = बावडियाँ।

अर्थ—वैसे तो इस जगत मे गहरे और उथले सभी प्रकार के कुएँ, सरोवर, नदियाँ और बावडिया है। परन्तु जिसकी प्यास जहाँ बुझ जाये, उसके लिए तो वही समुद्र है।

भाव यह है कि ससार मे छोटे-बडे सब तरह के दानी है। जिनकी आवश्यकता जहाँ पूरी हो जाये, उसके लिए वही सबसे बडा दानी है।

अलकार—अन्योक्ति।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

को कहि सकै बडेन सो, लखे बडी हू भूल।
दीने दई गुलाब को, इन डारन ये फूल ॥६६२॥

बडेन सो = बडे लोगो से। हू = भी। दई = दैव, विधाता।

अर्थ—बडे लोगो से यदि कोई बहुत बडी गलती भी हो जाये तो उसे देख कर कोई उनसे कुछ कह नही सकता। नही तो विधाता ने गुलाब की

प्रसग—खाने-पीने मे कमी करके अर्थात् पेट काट कर धन-सचय करने के सम्बन्ध मे कवि की उक्ति है—

मीत न नीति गलीत ह्वै, जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि ॥६९५॥

गलीत=दुर्दशाग्रस्त। जोरि=जोड कर, जमा करके। करोरि=करोडो रुपये।

अर्थ—अरे मित्र, यह नीति नही है कि अपने आपको दुर्दशाग्रस्त रख कर धन का सचय किया जाये। हाँ, ठीक ढँग से खाने, पहनने और आवश्यक खर्च करने के बाद भी यदि बच रहे, तो करोडो रुपया भी जमा करो, तो उसमे दोष नही है।

अलकार—सम्भावना।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

बुरो बुराई जो तजे, तो चित खरो सकात।
ज्यौं निकलंक मयक लखि, गनें लोग उतपात ॥६९६॥

खरौ=बहुत। सकात=शकित होता है। निकलक=कलक रहित। मयक=चन्द्रमा। गनै = मानते है, गिनते है।

अर्थ—यदि कोई बुरा व्यक्ति बुराई को छोड दे (अर्थात् भला काम करने लगे) तो उससे चित्त मे और भी अधिक शका (अर्थात् डर) उत्पन्न होता है, जैसे यदि चन्द्रमा कलक रहित दिखाई पडे तो लोग उसे उत्पातकार या अनिष्ट का सूचक मानते है।

ऐसा माना जाता है कि यदि चन्द्रमा मे दीखने वाले काले धब्बे दिखाई पडने बन्द हो जायें, तो यह इस बात की सूचना है कि सारी पृथ्वी पर भयकर हिमपात होगा।

अलकार—उदाहरण।

प्रसग—कवि की उक्ति है—

भाँवरि अनभाँवरि भरी, करौ कोटि बकवाद।
अपनी अपनी भाँति की, छुटै न सहज सवाद ॥६९७॥

भावरि = पसन्द। अनभाँवरि = नापसन्द। बकवाद = आलोचना

चिपटा रहता है कि जब वसन्त ऋतु आयेगी, तो इस गुलाब की डालियों पर फिर वे ही फूल खिल जायेंगे।

'वे ही' से सकेत उन फूलो अर्थात् सुखो की ओर है, जिनका आनन्द वह पहले ले चुका है।

अलकार—अन्योक्ति।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

सरस कुसुम मडरात अलि, झुकि न झपटि लपटात।
दरसत अति सुकुमारता, परसत मन न पत्यात ॥७००॥

सरस=ताजा। लपटात=चिपटता है। दरसत=दीखती है। परसत=स्पर्श करने को। मन न पत्यात=मन तैयार नही होता।

अर्थ—भौंरा नये ताजे फूल को देख कर उस पर मडराता तो है, परन्तु एक दम झपट कर नीचे उतर कर उससे चिपट नही जाता। इसका कारण यह है कि उस फूल मे इतनी कोमलता दिखाई पडती है कि उसे छूने को सहसा मन तैयार नही होता।

मन तैयार न होने का कारण यह आशका होती है कि कही स्पर्श मे यह सुकुमार फूल नष्ट ही न हो जाये।

अलंकार—अन्योक्ति।

प्रसग—याचक की मनोवृत्ति का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

घर घर डौलत दीन ह्वै, जन जन जाँचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु हू बड़ो लखाय ॥७०१॥

दीन = दरिद्र। जाँचत = माँगता हुआ। लोभ चस्मा = लालच रूपी ऐनक। हू = भी।

अर्थ—याचक व्यक्ति घर-घर दीन बन कर चक्कर काटता है और प्रत्येक व्यक्ति से याचना करता है। उसकी आँखो पर लालच की ऐनक चढी होती है, इस कारण उसे छोटा व्यक्ति भी बडा दिखाई पडता है।

भाव यह है कि जो व्यक्ति लोभी और याचक होता है, वह माँगते हुए यह विचार नही करता कि किससे माँगने से भिक्षा मिलेगी और किससे नही। अपने लोभ के कारण उसे छोटे लोग भी बडे प्रतीत होते है।

अलंकार—स्वरूप और असंगति।

प्रसंग—कवि की उक्ति है—

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेति जितै, तित तेती रुचि होय॥७०२॥

समै = समय। रुचि = पसन्द। जेती = जितनी। जितै = जिधर। रुचि = सुन्दर।

अर्थ—समय-समय पर सभी वस्तुएँ सुन्दर प्रतीत होने लगती हैं। वस्तुतः कोई भी वस्तु सुन्दर या कुरूप नहीं है। जब जिस वस्तु के प्रति जितनी रुचि होती है तब वह उतनी ही सुन्दर दिखाई पड़ने लगती है।

अलंकार—काव्यलिंग।

प्रसंग—बाज को लक्ष्य करके कवि स्वामी के हित के लिए प्रजा पर अत्याचार करने वाले सेवकों के सम्बन्ध में कह रहा है। यह भी कहा जाता है कि बिहारी ने लड़ाई के लिए गये हुए राजा जयसिंह के प्रति बिहारी ने यह उक्ति कही थी, क्योंकि वह औरंगजेब के आदेश से लड़ने गये थे—

स्वारथ सुकृत न स्रम बृथा, देखु बिहग बिचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पच्छीहि न मारि॥७०३॥

[illegible] = पुण्य। स्रम = परिश्रम। पानि = हाथ। पच्छीहि = पक्षियों को। [illegible]

अर्थ—[illegible]

[illegible]

अलंकार—[illegible]

आश्रयदाता राजा जयसिंह की स्तुति

प्रसंग—राजा जयसिंह अथवा ईश्वर को लक्ष्य करके कवि की उक्ति है—

> लट्टुवा लौं प्रभु कर गहैं, निगुनी गुन लपटाय।
> वहै गुनी कर तें छुटे, निगुनीयै ह्वै जाय ॥७०४॥

लट्टुवा लौं=लट्टू के समान। प्रभु=स्वामी। निगुनी=(१) डोरी रहित (२) गुण रहित। गुन=(१) डोरी (२) अच्छाइयाँ।

अर्थ—लट्टू के समान जब किसी व्यक्ति को स्वामी अपने हाथ में ले लेता है (अर्थात् शरण दे देता है) तब निर्गुण व्यक्ति भी गुणों से युक्त हो जाता है, और जब वही गुणी स्वामी के हाथ से छूट जाता है) तो वह फिर निर्गुण हो जाता है, जैसे लट्टू चलाने वाला जब लट्टू को हाथ में लेता है, तो उस पर डोर लिपट जाती है और लट्टू को छोड़ते ही उसकी डोर फिर पृथक् हो जाती है।

स्वामी का आश्रय मिलने पर व्यक्ति गुणी हो जाता है और आश्रय छूटते ही वह गुणहीन समझा जाने लगता है।

अलंकार—श्लेष और उपमा।

प्रसंग—राजा जयसिंह के सम्बन्ध में कवि कह रहा है—

> चलत पाय निगुनी गुनी, धन, मनि, मुकुता माल।
> भेंट होत जयसाह सौं, भाग चाहियत भाल ॥७०५॥

निगुनी=गुणहीन। पाय=पाकर। मुकुता = मोती। भाल = माथा।

अर्थ—मनुष्य के माथे में केवल भाग्य हुआ चाहिए, फिर तो राजा जयसिंह से भेंट होते ही क्या निर्गुण और क्या गुणी, सब लोग बहुत-सा धन, रत्न और मोतियों की मालाएँ लेकर ही वापस लौटते हैं।

यदि भाग्यवश जयसिंह से भेंट न हो सके, तो कुछ किया ही नहीं जा सकता, पर यदि मनुष्य का भाग्य है, तो जयसिंह से भेंट होते ही उसका सब दुःख-दारिद्रय दूर हो जाता है।

अलंकार—तुल्योगिता।

प्रसंग—राजा जयसिंह की प्रशंसा करते हुए कवि कह रहा है—

> प्रतिबिम्बित जयसाह-दुति, दीपति दर्पण-धाम।
> सब जग जीतन कौं कियौ, काय व्यूह मनु काम ॥७०६॥

दुति=कान्ति, छवि। दीपति = चमका देती है। दर्पण धाम = शीशे

का बना हुआ महल। मनु=मानो। काय व्यूह कियो=अपने शरीरों से ही व्यूह बना लिया है।

अर्थ—शीशे के बने हुए महल में राजा जयसाह की छवि अगणित दर्पणों में प्रतिबिम्बित होकर इस प्रकार चमकती है कि ऐसा लगता है कि मानो कामदेव ने सारे जगत् को जीतने के लिए अपने शरीरों का ही व्यूह बना कर खड़ा कर लिया हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रसंग—राजा जयसिंह की प्रशंसा में कवि कह रहा है—

> रौं दल काढे बलख तैं, तैं जयसाह भुवाल।
> उदर अघासुर कै परै, ज्यौं हरि गाय गुवाल॥७०७॥

दल=सेना। बलख=एक जगह का नाम है। भुवाल=भूपाल, राजा। उदर=पेट। अघासुर=एक असुर का नाम है, जिसने गोपों और ग्वालों को खा लिया था, फिर उन्हें श्री कृष्ण ने उसके पेट में से निकाला था।

अर्थ—हे राजा जयसाह, तुमने बलख से सारी सेना को अपनी वीरता से इस प्रकार निकाल लिया जैसे अघासुर के पेट में पड़े हुए ग्वालों और गोपों को श्रीकृष्ण ने निकाल लिया था।

अलंकार—उदाहरण।

प्रसंग—राजा जयसिंह की स्तुति में कवि कह रहा है—

> अनी बड़ी उमड़ी लखैं, असिवाहक भट भूप।
> मंगल करि मान्यौ हियैं, भो मुँह मंगलरूप॥७०८॥

अनी=सेना। असिवाहक=[illegible]। भट=योद्धा। [illegible] मंगल [illegible] मंगलरूप [illegible] मुँह भी लाल हुआ।

अर्थ—[illegible] योद्धाओं की [illegible] हुआ [illegible] मंगल [illegible]।

[illegible] नाना [illegible]।

अलंकार—[illegible]।

प्रसंग—[illegible] कवि कह रहा है—

रहति न रन जयसाह मुख लखि लाखन की फौज।
जाँचि निराखर हू चलै, लै लाखन की मौज ॥७०९॥

रन=युद्ध। लाखन की फौज=लाखो सैनिको की सेना। निराखर=निरक्षर, अनपढ। मौज = मन की उमग मे दिया हुआ दान। जाँचि = माँगने पर।

अर्थ—युद्ध मे जयशाह का मुँह देख कर लाखो सैनिको की सेना भी टिक नही पाती (अर्थात् भयभीत होकर भाग जाती है) और माँगने पर अनपढ लोग भी लाखो रुपयो का दान लेकर वापस लौटते है।

इससे युद्ध वीरता और दान वीरता प्रकट की गई है।

अलकार—अत्युक्ति और लाटानुप्रास।

प्रसग—राजा जयसिह की स्तुति मे कवि की उक्ति है—

सामा सेन सयान सुख, सबै साह के साथ।
बाहुबली जयशाह जू, फतै तिहारे हाथ ॥७१०॥

सामा=(१) सामान (२) एक पक्षी। सेन=(१) सेना (२) बाज। सयान=(१) कुशलता (२) एक पक्षी, जिसे सचान या बहरी भी कहते हैं। सबै=सब। यहाँ बै का अर्थ बया पक्षी है। साह=(१) बादशाह (२) एक प्रकार का बाज। फते=(१) विजय (२) फतहबाज नाम का एक विशेष पक्षी।

अर्थ—हे राजा जयशाह, यद्यपि सामान, सेना, नीति कौशल आदि सब बाते बादशाह के पास भी हैं, परन्तु बादशाह की विजय तुम्हारे हाथ ही है (अर्थात् युद्ध मे जो मुगल बादशाह की जीत होती है उसके कारण तुम ही हो)।

इस दोहे मे मुद्रा अलकार है। इसमे शब्दो का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि उनसे विभिन्न पक्षियो के नाम इस दोहे मे आ गये है।

अलकार—मुद्रा।

प्रसग—इस अन्तिम दोहे मे बिहारी यह बताते है कि उन्होने इस सतसई का निर्माण कृष्ण और राधा की कृपा से और राजा जयसिह के आदेश से किया—

हुकुम पाय जयशाह को, हरि-राधिका-प्रसाद ॥
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥७११॥

हुकुम=आदेश। हरि राधिका प्रसाद=कृष्ण और राधा की कृपा से। अनेक सवाद भरी=अनेक रसो से भरी हुई।

शब्द-कोष

अ

अएरि=अंगीकार कर, स्वीकार कर
अकस=विरोधी
अटनि=अटारियो पर
अठान=दुराग्रह
अथयो=अस्त हो गया
अथाइन ते=गोष्ठियो से
अदोखिल=दोषरहित
अनखाय=क्रुद्ध होकर
अनखाहटौ=रोप, क्रोध
अनत=अन्यत्र
अनभाँवरि=नापसन्द।
अनरस=दु ख
अनवट=पैर के अगूठे मे पहनने का आभूषण
अनाकनी=बात को अनसुना करना
अनियारे=नुकीले
अनी=सेना
अनुहारि=समान
अनगवति=कामाविष्ट
अपत=पत्तो से रहित, निर्लज्ज
अपौढ=अप्रौढा कच्ची, उमर की
अबोलो गह्यो=चुप्पी साध ली
अमिल=अपरिचित
अयान=मूर्ख
अर=हठ
अरगजा=कपूर- कस्तूरी, चन्दन आदि का शीतल लेप
अरगट=आड या परदा
अलख=अलक्ष्य
असोस=अशोष्य

आ

आक विहानीयो=अक्षरो से रहित को भी
आटे=दबाव
आगम=आगमन
आघु=मूल्य
आन=अन्य, दूसरे, हठ
आभिर=शासक
आषत=चावल, अक्षत

इ

इक आक=निश्चय से या बिल्कुल
इक बानि=एक समान
इजाफा=पदवृद्धि

ई

ईछन=चितवन

ख

खए = कन्धे

खत = क्षत, घाव

खरी = बड़ी या भारी

खलित = स्खलित

खिलत = प्रसन्न होते हैं

खिसि = लज्जा

खोटि खोटि = खुरच खुरच कर

खोट = खुरण्ड

खोरि = दोष

खौरि = माथे पर लगाया जाने वाला टेढ़ा तिलक

खजन गजन = सजनो का मान भग करने वाले

ग

गदकारी = गुदगुदे मांस वाली

गलगली = आंसुओ से भीगी हुई

गहकि = उमग कर

गहवर आये = गद्गद हुए

गहिली = बावली

गाड = वैमनस्य

गीधे = ललचाये

गुन = डोरी, अच्छाइयाँ

गुनही = अपराधी

गुर डरी = गुड की डली

गुजन = रत्तियो से

गैल = रास्ता

गोधन = गोबर से बनी गोवर्धन की मूर्ति जिसकी पूजा की जाती है

गोल = मुख्य सेना।

ग्रसित = वश मे करती है

ग्वेडो = घर के आस-पास की भूमि

घ

घनरुचि = मेघ के समान कान्ति वाला

घनश्याम = कृष्ण, काले बादल

घरियक = एक घड़ी, कुछ देर

घाय = घाव

घेरु = निन्दा

च

चटपटी = चाह, ललक

चपि = दबकर

चवायनि = लोकनिन्दा से

चहले परे = दलदल मे फस गये

चाला = गौना

चाहि = देखकर

चित चाय = हार्दिक इच्छा

चिरमि = रत्ती या गुजा

चिहुटियो = अनुराग युक्त हो गया है

चुचान लगे = चूने लगे

चुनी = चुन्नियाँ, रत्नो के टुकडे

चुपरी = माड लगाई हुई

चुभकी = डुबकी

चुहटनी = रत्ती, गुजा

चूरन = कडो से

चेपु = चेंपा या लासा, पक्षियो या मछलियो को पकडने के लिए दिया जाने वाला प्रलोभन।

टाक = लिखावट
टीको = एक आभूषण, जो माथे पर पहना जाता है, टीका
टुनहाई = टोना करने वाली
टेरि=पुकारा
टोने=जादू
टोल = मुहल्ला, समूह

ठ

ठकठक = आनाकानी, बनाव-सजाव
ठठकि कै = रुक कर
ठाम = स्थान
ठौर = स्थान

ड

डगकु=एक कदम
डटत = शोभा देता हुआ
डटि=डट कर, हिम्मत के साथ
डबकौहैं=डबडबाये हुए
डरो रहौं=पड़ा रहूँ
डहडही=हरी-भरी
डाढी=जली हुई, दग्धा
डारि=डाल
डिगत=विचलित होता हुआ
डिगुलात=डगमगाता हुआ
डीठि=दृष्टि
डोरन=डोरि
डौंडी दे=ढिंढोरा पीटकर

ढ

ढरि=गिर कर
ढरे=लुढके, रीझे
ढरकि=धीरे से
ढार=तरीके
ढिक=पास
ढीठ्यो देय=ढिठाई प्रकट करती है
ढूका देना=छिपकर कोई बात सुनना
ढोरि=लत, बान

त

तचे=तपाये जाने पर
तन=ओर, तरफ
तन तौरि=अंगड़ाई लेकर
तनफूल=स्तनों का फूल उठना
तपनि=जलन
तरहरि=तले
तरनि=सूर्य
तरल= चंचल
तरफरत=छटपटाते हैं
तरिवन=तारक या कर्णफूल से
तरसौंहैं=लालायित
तरुन=ताजे
तर्योना=कर्णफूल
तरौंस=तट के निकट
ताफ्ता=एक प्रकार का रेशमी कपड़ा
तिय=स्त्री
तिलोंछे=स्नेह रहित
तीछन=तीक्ष्ण
तुठे=प्रसन्न
तूल तुलाई=रुई की रजाई

निसक = अशक्त, दुर्बल
निसाक = निःशक, निर्भय
निहोरो = अहसान
निसान = झंडा
नीके = अच्छे
नीठि नीठि = कठिनाई से
नीदन जोना = निन्दा करने योग्य
नेजा = भाला
नै जात = झुक जाते है
नौलसिरी = नवल शोभा

प

पगार = उथला
पचतोरिया = पांच तोले भार की वारीक रेशमी साडी
पठ्यो = भेज दिया
पत्याय = भरोसा कर
पत्रा = पचाग
पनच = धनुष
पनहो = गुप्तचर
परहथ = दूसरे के हाथ मे
परिमल = पराग
परिवेश = घेरा या मडल
परिहरि = छोड़कर
परेई = कबूतरी
परेखो = परीक्षा
पल = पलक
पलटे = बदले मे
पषानु = पत्थर
पहुला = एक फूल, कुमुद
पाके = पक्का हो जाने पर
पातुरराय = नर्तकियो की शिरोमणि
पायक = पदाति, पैदल
पायन्दाज = पावदान
पारि = बाँध, पाड मर्यादा
पावकझर = अग्नि की ज्वाला
पियूख = पीयूष, अमृत
पुतरी = पुतली, आँखो की पुतली
पूस पसेव = पौष मास का पसीना
पैज = प्रतिज्ञा, प्रण
पौरि = देहली, दरवाजा
प्रजर्‌यौ रहै = जलता रहता है
प्यौ = प्रियतम
प्योसाल = पितृगृह

फ

फगुवा = फाग या होली खेलने के लिए दिया जाने वालापुरस्कार
फते = विजय
फरी = ढाल
फुदकत = उछलते हैं
फुरहरि ले = कापती हुई
फेरु = बहाना

ब

बगर = घर
बटा = बकरी
बटाऊ = पथिक
बड़वागी = बडवानल

बन्दि=घेरा

भ

भखु=भोजन
भटभेरा=टक्कर
भरु=भार
भाने=तोडे
भावक=थोड-घोडा
भावरि=पसद
भीति=दीवार
भुजमूल=पाखौरा
भुवाल=भूपाल, राजा
भृंगी कीट=एक प्रकार का कीडा
भेदीसार=बढई का बरमा
भेव भानति=भेद खोलती है
भोडर=अभ्रक
भोर तरैया=प्रभात की तारिकाए
भौ=बन गया

म

मकर=मगर मच्छ या मछली
मकु=सम्भवत
मचक=झटका
मधु नीर=मकरन्द की बून्दे
मन्दिर=घर
मगरजे=मलिन या मुसा हुआ
मरोर=रोष पूर्ण मुद्रा
मलार=मल्हार
मलै=मलय, चन्दन
मवास=डेरा या गढ
मिति=आकार या विस्तार
मीना=एक लुटेरी जाति
मुकुर होउगे=इन्कार करोगे
मुखान=गिट्टो मे
मुरासा=कर्णफूल
मुलकत=मुस्कराता है
मुन्दरी=अगूठी
मु हजोर=बहुत बलवान
मुका=दीवार मे बना हुआ छेद
मृदौ=मृदु होने पर भी
मैन=कामदेव, मदन
कोरचा=जग
मोष=मोक्ष
मौरि=सिर
मजनु=स्नान
मजार=मार्जार, बिडाल
मजीर=बिछुआ

र

रचौहैं=प्रेमपूर्ण
रति=समागम या नायक के साथ मिलन
रतियो=रत्ती भर भी
रदछद=होठ, दात का क्षत
रमत=खेल करते हैं
रली=विहार, विनोद
राका=पूर्णिमा की रात
राखे=रक्षा की
राग्यो = अलापा

रच्यौ=रंगा हुआ
राजन=रौब, हुकूमत
राते=लाल
रावटी=बंगला
रावरे=तुम्हारे
रिझवारि=रीझने वाली
रितयो=रिक्त कर दिया
रिसौहैं=रोषयुक्त
रुख=चेष्टा
रुनित=गुंजार करते हुए
रोचन=गोरोचना
रोज=रोना-पीटना
रोहाल=घोड़ा
रहचटे=लोभ के कारण
रहटघरी=रहट की छोटी छोटी मट-
किया

ल

लखाइ=दिखाई
लगनि=प्रेम
लगनिया=लगन या धुन
लगालगी=उपद्रव
लगि=लगी
लचि=लचक कर
लजौंही=लज्जाभरी
लदाय=लदाव
लफति=लचकती हुई
लरिकई = लड़कपन
ललचौंहैं = लालसा भरे
लसत = शोभा देता है
लहाछेहु=नृत्य की एक गति
लाई = लगाई हुई
लाग = निकट
लाछ=दाग
लाय=लाग, नेह
लाल = कृष्ण
लाव = रस्सी
लिलार=माथा
लीक=रेखा
लुठन=लोटते हुए
लोट = बिजली
लोयन = लावण्य, सुन्दरता, लोचन,
नेत्र
लंगर=ढीठ

व

वन तन = वन की ओर
वय=अवस्था
वरन = जाति, नाम के अक्षर
वरुनी=पलक
विगसत = खिलते हुए
विचच्छनी = चतुर
विधि=ब्रह्मा, विधाता
विधिमैन=कामदेव रूपी ब्रह्मा
विभावरी=रात्रि
विषम=असाधारण, टेढ़े
विषमजुर=एक दिन छोड़कर आने
वाला ज्वर

बै=आयु

बैस सन्धि = वयः सन्धि, बचपन और जवानी मिलने का समय

वृषभानुजा = वृषभानु की बेटी या वृषभ की अनुजा अर्थात् बैल की बहिन

वृषादित=वृष राशि का आदित्य, अर्थात् ज्येष्ठ मास की गर्मी

ब्यौरो = रहस्य

ब्यौरनि = बाल सवारने का ढग

स

सकाय = शकित होता है

सकुचि=शरमाकर

सगुनो=गुण सहित

सजन=प्रियतम

सटक=सटी

सटपटाति=लज्जा या लोकापवाद के भय से घबराई हुई

सटकारे=लम्बे

सठ मति=दुष्ट

सतर=तनी हुई

सतरौहैं=क्रोधयुक्त, कठोर

सतार=तारो से युक्त

सद=आदत, ताजा

सफरी=मछली

सबार=सवेरे

सबिहि=चित्र या छवि को

सबील=उपाय

समर=स्मर, कामदेव

समरस=बराबर

समुहाति=सम्मुख होती है, सामना करती है

समौं=समय

सयान=चतुराइयाँ

सर=तीर

सरत=पूरे होते है

सराध पख=श्राद्ध पक्ष

सराहि=प्रशसा करके

सरि=बराबरी, समानता

सरोट=सलवट

सवाद=लोभ

सवादिली=स्वादुता

ससिहर=भयभीत

ससिसेखर=महादेव

सायक=सन्ध्याकाल

सालति=पीड़ा देती है

सामा=सामान, एक पक्षी

सिराय=बीत जाती है

सिलसिले=तर, चिकने

सिसक=सीत्कार

सिहाति = ईर्ष्या करती है

सीपहरा = मोती का हार

सीबी=सी-सी की ध्वनि

सीन्ही=भरी हुई

सुगथ=पूजी

सुचित्ति = दुविधापूर्वक

सुदरसन = अच्छा दर्शन, एक चूर्ण
सुदेश=उच्च कुल के
सुधा=दीधिति—चन्द्रमा
सुनखिरवा=भमीरी नाम का कीड़ा
सुमार=जोर की चोट
सुमिल=प्रेम मय
सुरझि = सुलझ कर ।
सुरस=प्रेम, जल
सुरकि=तिलक का वह नोकीला भाग, जो नाक को छूता है
सुरति = शकल, स्मृति
सुरग = प्रेम, बारूद की सुरग
सुवासना=सुगन्ध
सूधे=सीधे, स्थिर
सूमति=कजूसी
सूर=सूर्य
सूरन=जिमीकन्द
सेत=सफेद
सैन=इशारे
सैन = शयन
सैल=सैर
सोनजुही=पीली चमेली
सौक = सैकड़ो
संक=शका या डर
संकट=सकष्ट चतुर्थी का व्रत
संक्रांति = संक्रान्ति
साटि = सौदा
साठा=गन्ना
साँधे = सुगन्ध
सौंह = शपथ
सौंहे = सामने
स्यामलीला= गोदने का नीला निशान

ह

हई = भय या आश्चर्य
हथलेवा = पाणिग्रहण
हथाहथी=हाथापाई
हते = मार
हरकी =हटाया, रोका
हरे=धीरे से
हरौल=हरावल, फौज का अग्रिम दास्ता
हलधर के वीर=हलधर, बलराम के भाई या हलधर बैल के भाई
हवाल=हालत, अवस्था
हायल=लालायित
हुलसी = प्रसन्न होकर
हूठ्यौ दै=कमर को झटका कर ।
हूल = बरछी या तलवार की घोप
हेरि = देख कर
होमति=आग मे डालती है
हौसे = हवास
हंसौ = हस अथवा आत्मा